संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 93वाँ पुष्प

अध्यापक शिक्षा का बदलता परिदृश्य

सम्पादक

प्रो. नागेन्द्र झा

पूर्व संकाय प्रमुख एवं पूर्व विभागाध्यक्ष

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली - 110016





संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 93वाँ पुष्प

अध्यापक शिक्षा का बदलता परिदृश्य

शिक्षा शास्त्र विभाग द्वारा आयोजित

संगोष्ठी कार्यवृत्त

(Seminar Proceedings)

15-17 फरवरी 2012

प्रधान सम्पादक

प्रो. भास्कर मिश्र

कुलपति (प्रभारी) एवं संकायाध्यक्ष

सम्पादक

प्रो. नागेन्द्र झा

पूर्व संकाय प्रमुख एवं पूर्व विभागाध्यक्ष

सह-सम्पादक

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक

डॉ. रचना वर्मा मोहन

डॉ. अमिता पाण्डेय भारद्वाज

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली-110016

प्रकाशकः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
कुतुब सांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

आई.एस.बी.एन : 81-87987-68-5

प्रकाशन वर्ष - 2014

मूल्यम् : ₹ 350/-

मुद्रकः
अमरप्रिंटिंगप्रैसः
8/25 विजयनगरम्, देहली-११०००९
दूरभाषः : 9871699565, 8802451208

शुभाशंसा

मानव जिस साधन प्रणाली से ज्ञान उपार्जित करता है वह हमारी शिक्षा का एक अंग है। व्यक्ति बिना सिखाये भी वातावरण से, परिस्थिति से, अनुभव से, देखकर और सुनकर भी काफी कुछ सीख लेता है। ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन से मन मस्तिष्क में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना ही शिक्षा का अभीष्ट है- ''नास्ति विद्या समं चक्षु'' अर्थात् विद्या के समान दूसरा नेत्र नहीं है। शिक्षा यदि संस्कारित नहीं करती है तो वह शिक्षा अपने आप में अपूर्ण है। यह एक सुव्यवस्थित सम्प्रेषण प्रक्रिया है, जो सीखने और बनने की प्रेरणा देती है। सीखने की चाह वाले के लिए बाह्य कारक बिखरे पड़े है। सिखाने वाले कारकों में शिक्षक का प्रमुख स्थान है। वह एक माली की तरह शिक्षार्थी को संस्कारित करके संवारता है। मानव के व्यक्तित्व निर्माण में गुरू (अध्यापक) का महत्त्व सर्वकालिक है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के समक्ष माना गया है-

गुरू ब्र्रह्मा गुरूर्विष्णुर्गुरू र्देवो महेश्वरः,
गुरू र्प्रकृतिरीशाद्या गुरूश्यानलो रविः।
गुरूर्वायुश्च वरूणो गुरूर्माता पिता सुहृत्
गुरूदेव परं ब्रह्म नास्ति पूज्यो गुरोः परम्।।

इसी कारण गुरू को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतिरूप माना गया है जो अपने स्व से दूसरे के स्व को प्रकाशित कर आत्मानन्दित होता है। वह स्वयं ज्ञानमूर्ति है। वह तो ऊंच-नीच, धनी-निर्धन के द्वन्द्वों से परे है। शिक्षा की निष्पत्ति एक समग्र व्यक्तित्व का निर्माण है और अध्यापक को इस उद्देश्य की प्राप्ति

हेतु पूर्ण सक्षम होना ही है। अध्यापक तो राह में रखे दीपक की भाँति है, जो मार्ग को प्रकाशित तो करता है पर चलने को बाध्य नहीं करता। वह विद्यार्थी को बाध्य नहीं करता। वह विद्यार्थी को बांधता नहीं, मुक्त करता है।

आज हम जिस युग में जी रहे हैं जीवन अनेक संकटों से आबद्ध हो गया है। सब ओर जीवन मूल्यों की गिरावट है, इसी वातावरण में अध्यापक भी जी रहा है। वह इस गिरावट से अछूता नहीं है ऐसी अवस्था में अध्यापक को फरिश्ता नहीं माना जा सकता। अतः वर्तमान आर्थिक संकट और जीवन मूल्यों के ह्रास से सम्पूरित-प्रभावित वातावरण के मध्य समर्पित अध्यापक की अपेक्षा करना व्यावहारिक नहीं है।

अध्यापक शिक्षा के बदलते परिदृश्य में उसे अपने पुरातन मूल्यों और संस्कारों को वर्तमान परिदृश्य में आत्मशोधन करने की आवश्यकता होगी। वह स्वार्थरहित होकर, कर्त्तव्यपरायण होकर ही ज्ञानार्जन में उत्कृष्टता ला पायेगा, जिससे वह पूजनीय बन सकेगा।

सत्य ही कहा गया है- **'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'**

आज अध्यापक को आत्मलोचन की जरूरत है। समाज को वह क्या दे रहा है, जिससे समाज उसका सम्मान करे। समाज सदा उसी का सम्मान करता है, जिस व्यक्ति से उसे कोई न कोई अवदान मिलता है। यह सत्य है कि इस नवनिर्माण का अभिकर्त्ता शिक्षक ही बन सकता है। परन्तु यह सहज नहीं हैं, क्योंकि इसमें शिक्षक के स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्माण का प्रश्न नहीं है वरन इससे संलग्न सम्पूर्ण श्रृंखला का पुनर्निर्माण आवश्यक है।

इक्कीसवीं सदी नालेज सोसाइटी से युक्त हो रही है लेकिन इसके लिए सबसे पहले उस स्तर के अध्यापक बनाने होंगे जो 'ज्ञान और सूचना' के मध्य के फर्क को स्पष्ट कर सकें। वास्तविकता यह

है कि आज समाज में सूचनाओं की अधिकता हो गई है, ज्ञान की नहीं। अध्यापक इस समाज से अलग तो नहीं है। वे रटने की बात करते हैं सीखने की नहीं। कितने अध्यापक कक्षा में जाने से पहले अध्ययन करते हैं? अपनी तैयारी सुनिश्चित करते हैं और पुस्तकीय ज्ञान से अलग व्यावहारिक नजरिया अपनाते हैं? ये यक्ष प्रश्न है जिन पर विचार मंथन की जरूरत है।

आज के अध्यापकों को प्रशंसा, पुरस्कार और प्रमाण–पत्रों से अधिक कार्य करने की जरूरत है। यदि व्यवस्था इस दिशा में दृढ़ता से बढ़े तभी हमारा प्रयास सार्थक होगा। शिक्षक समाज का शिल्पी है वही भावी पीढ़ी का निर्माता है, जिन हाथों से वह भोले–भाले विद्यार्थियों को लिखना–पढ़ना सिखाता है, उन हाथों को पवित्र होना आवश्यक है। भले ही आज की विषम सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों ने तथा दावाग्नि की तरह फैलते उपभोगवाद ने अध्यापक को भी व्यावसायिक बनने को बाध्य कर दिया है लेकिन बदलते परिदृश्य में वह दोस्त, दार्शनिक, मार्गदर्शक तो है ही। साथ ही व्यक्तित्व निर्माता अध्यापक था, है और रहेगा। इन्हीं विचार बिन्दुओं को लेकर **अध्यापक शिक्षा का बदलता परिदृश्य** विषय पर शिक्षाशास्त्र विभाग द्वारा संगोष्ठी का अयोजन किया गया। निःसंदेह इस संगोष्ठी के माध्यम से प्रस्तुत विचार के रूप में संकलित ज्ञान, आचरण और व्यवहार की त्रिवेणी में निष्णात शिक्षकों को समाज में उनकी भूमिकाओं को जीवन्त करने में सहायक हो सकेंगे तथा पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे।

श्रावणी पूर्णिमा
10 अगस्त, 2014

प्रो. भास्कर मिश्र
कुलपति (प्रभारी) एवं संकायाध्यक्ष
आधुनिक ज्ञान विज्ञान संकाय
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

सम्पादकीयम्

अध्यापक-शिक्षायाः परिवर्त्तन-परिदृश्यम्

अध्यापक-शिक्षा नाम अध्यापकस्य तादृशीशिक्षा यया ते दर्शन एवं मनोविज्ञानविधेः परिपूर्णता पुरःसरं ज्ञानार्जनम्। येन प्रायोगिक सैद्धान्तिक विषयेयु निष्णातोभूत्वा छात्रेभ्यः ज्ञाननैपुण्यप्रदानम्। अद्यतनीय अध्यापकशिक्षायाः यादृशं स्वरूपमवलोक्यते, तेन केवलं व्यवसाय रुपात्मिका शिक्षैव परिदृश्यते। उपर्युक्तेषु पाश्चात्य दार्शनिकानां मनोवैज्ञानिकानां योगदानं प्रशंसनीयमेवाऽस्ति।

परञ्च-भारतीयदार्शनिकानां चिन्तनमत्यन्तविलक्षणमेवाऽस्ति। अत्र दार्शनिकशिरोमणयोदयनाचार्याः यन्मतमुपस्थापिताः सन्ति तदस्ति–

वयमिहपदविद्यां तर्कमान्विक्षिकीं वा।
यदि पथिविपथेवा वर्त्तयामः स पन्था॥

उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैवपूर्वा।
न हि तरुणिरुदिते दिक् पराधीन वृत्तिः॥

अर्थात् प्राचीन काले तादृक अध्यापक शिक्षाऽऽसीत् यत्र अध्यापकः पन्थानिर्माता शास्त्रज्ञान-परकाष्ठापरिपूर्णा सामाजिकानां आदर्शभूताऽध्यापकाः भवन्ति स्म। तेन प्रतिपादिताः यद् सूर्यस्योदयः पूर्वदिशायामेव भवति सा दिशाऽपि पूर्वा गण्यते। तादृशाऽध्यापकाः भवन्ति स्म। छान्दोग्योपनिषदि बहुशः ज्ञानराशि सम्मता-शिक्षायाः वर्णनं प्राप्यते। तत्रापि अध्यापकशिक्षायाः भागद्वयं कर्तुं शक्यते–

1. भारतीय परिप्रेक्ष्ये अध्यापकाशिक्षा

2. पाश्चात्य परिप्रेक्ष्ये अध्यापकशिक्षा

तत्रापि कालक्रमेण अध्यापक शिक्षायां परिवर्तनानि आवश्यकानि भवन्त्येव। येन देश काल-परिस्थिति वशात् आवश्यकावश्यकतायाः पूर्त्तये परिवर्तनानि आवश्यकानि सन्ति।

अत एवास्मिन परिवर्त्तमाने संसारे सर्वाणि वस्तुनि परिवर्त्त-मानानिसन्ति नैव शंका। शिक्षाशास्त्र विभागेन "अध्यापक शिक्षायाः परिवर्त्तन परिदृश्यम्" इत्यस्मिन विषये त्रिदिवसीया-राष्ट्रियसंगोष्ठ्याः आयोजनमाचरितम्। अस्याः संगोष्ठ्याः प्रारम्भः फरवरी मासस्य 15 दिनाङ्के 2012 तमे ख्रैस्ताब्दे सार्धदश वादने वाचस्पति सभामण्डपे अस्य विद्यापीठस्य कुलाधिपतयः माननीयाः न्यायमूर्त्तयः श्री मुकुन्दकाम शर्माणः मुख्यातिथित्वेन अस्मान् कृतार्थी कृतवन्तः। तत्र संगोष्ठ्याः अध्यक्षपदमलंकुर्वाणाः परमपूज्याः काशीविद्यापीठस्य-कुलपतिचराः प्रो. कामता प्रसाद पाण्डेय महोदयाः त्रिदिवसीयां संगोष्ठयां विचार्यमाण-विषयेषु वैदुष्यपूर्णं मार्गदर्शनं कारितवन्तः। तत्र प्रभारी कुलपतित्वेन प्रो. उषा रानी कपूर महोदयाया उपस्थितिस्मान् प्रेरिताः। संकायप्रमुखत्वेन विभागाध्यक्षत्वेन स्व सहयोगिविदुषां सहयोगेन च प्रो. नागेन्द्र झा शर्माणः सर्वेषां स्वागतं कारितवन्तः।

अत्र विदुषां प्रवचनं ये तत्र तस्मिन् विषये लेखाः पठिताः तेषां समेषां लेखाः संकलय्य प्रकाशनं भविष्यतीति।

सम्पादकाः
प्रो. नागेन्द्रझाः
संकायप्रमुखविभागाध्यक्षचराश्च

प्रतिवेदन

अध्यापक शिक्षा का बदलता परिदृश्य

"अध्यापक शिक्षा का बदलता परिदृश्य" विषय पर शिक्षाशास्त्र विभाग द्वारा त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन कुल 12 सत्रों में किया गया। इस संगोष्ठी का शुभारम्भ दिनांक 15 फरवरी, 2012 को 10.30 बजे विद्यापीठ के मुख्य सम्मेलन कक्ष में उद्घाटन सत्र द्वारा हुआ जिसमें **मुख्य अतिथि** विद्यापीठ के **माननीय कुलाधिपति न्यायमूर्ति श्री मुकुन्दकाम शर्मा जी, सारस्वत अतिथि प्रो. के. पी. पाण्डेय** (पूर्व कुलपति, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी), तथा **अध्यक्ष** के रूप में विद्यापीठ की **प्रभारी कुलपति प्रो. उषा रानी कपूर** थी। सम्माननीय अतिथियों का स्वागत शिक्षाशास्त्र संकाय के संकायप्रमुख एवं विभागाध्यक्ष **प्रो. नागेन्द्र झा** ने अपने स्वागत भाषण से किया। **प्रो. पाण्डेय जी** ने अपने सारस्वत सम्बोधन में अध्यापक शिक्षा एवं शिक्षण की अपेक्षा अधिगम तथा शिक्षक की अपेक्षा अधिगमकर्ता पर केन्द्रित शिक्षा एवं शिक्षण की उभरती व्यवस्था के बारे में विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला। साथ ही उन्होंने परीक्षा केद्रित व्यवस्था के सापेक्ष सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा पर बल देते हुए पूरी अधिगम व्यवस्था में अधिगमकर्त्ताओं की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं आकर्षणों को रेखांकित किया। उन्होंने पूरी शिक्षण अधिगम व्यवस्था को विद्यार्थी की दृष्टि से उपयोगी, सार्थक एवं गतिमान बनाने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए शिक्षा के अभिकरणों को पुनः व्यवस्थित एवं संरचित करने की आवश्यकताओं पर बल दिया। **माननीय कुलाधिपति न्यायमूर्ति मुकुन्दकाम शर्मा जी** ने अपने अभिभाषण में कहा कि ज्ञान एक शक्ति है जो समय के साथ वृद्धिशील होती रहती है। जिसके पास

ज्ञान होता है वह समय, स्थान एवं भौगोलिक परिस्थितियों से उठकर सर्वत्र अपने आभामण्डल से समाज को प्रभावित करता है। उन्होंने अध्यापक को त्रिदेव के रूप में व्याख्यायित करते हुए कहा कि ब्रह्मा की भूमिका में अध्यापक, समाज एवं विद्यार्थी को नया आकार देता है, विष्णु की भूमिका में उसका पोषण एवं संवर्द्धन करता है तथा महेश्वर की भूमिका में उसकी कमियों के क्षरण में सहायक होता है। भारतीय दृष्टि के सन्दर्भ में विद्या से विनयशीलता आती है। **(‘विद्या ददाति विनयम्’)** चारों पुरूषार्थों की चर्चा करते हुए **‘धर्म’ और ‘मोक्ष’** की ओर प्रवृत्त होने में **‘अर्थ’** और **‘काम’** को साधन मात्र बताया। वैश्वीकरण के युग में जहाँ पूरा वैश्विक सन्दर्भ सिमट कर एक विश्व ग्राम बन गया है तथा बाजारीकरण एवं व्यापारीकरण की प्रवृत्तियाँ उग्र बनती जा रही हैं वहीं मूल्यों के क्षरण की प्रक्रिया भी बढ़ती जा रही है जिसे शिक्षा एवं शिक्षक को अपने बहुआयामी प्रयासों के माध्यम से बचाने एवं पर्यावरण की गुणवत्ता को कुप्रभावित करने वाली स्थितियों की चर्चा की। साथ ही यह बताया कि भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में आम आदमी एवं महिलायें अत्यन्त सकारात्मक भूमिका निभाते रहे हैं जिससे प्रकृति एवं मनुष्य में परस्पर सम्बन्ध एक दूसरे को ताकत देने की प्रक्रिया में रूपान्तरित हो गये हैं। अध्यापक शिक्षा में एक अच्छे शिक्षक को तैयार करने की दृष्टि से उन्होंने मूल्यों के साथ-साथ कौशलों के विकास एवं विद्यार्थियों और शिक्षकों के सशक्तिकरण, उनकी मानसिकता, परिवेश को जानने व समझने के ढ़गों में बदलाव को विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण बताया। अपने **अध्यक्षीय सम्बोधन** में **माननीया प्रभारी कुलपति प्रो. उषा रानी कपूर** ने अध्यापक शिक्षा में मूल्यों को सही परिप्रेक्ष्य प्रदान करने, सजग एवं जागरूक शिक्षक तैयार करने तथा उनकी दिनचर्या में स्वाध्याय को प्राथमिकता देने पर बल दिया। वर्तमान सन्दर्भ में उन्होंने ज्ञान के बढ़ते दायरे से अध्यापकों को जोड़ने तथा ज्ञान की साझेदारी एवं शिक्षक में तत्परता विकसित करने की पहल पर बल दिया। उन्होंने बताया कि शिक्षा एवं शिक्षण की प्रक्रिया में विद्यार्थी का परीक्षण एक बार या

सर्वाधिक रूप में कई बार हो सकता है लेकिन अध्यापक की परीक्षा तो रोज़ ही उसके शिक्षण के क्रम में हुआ करती है। इस दृष्टि से उन्होंने शिक्षण एवं अधिगम की व्यवस्था को प्रभावी, छात्रोपयोगी एवं समाज की अपेक्षाओं के अनुरूप बनाने के महत्त्व को रेखांकित किया। उद्घाटन सत्र का समापन विभाग के उपाचार्य डा. के. भारतभूषण के धन्यवाद ज्ञापन से हुआ।

संगोष्ठी के प्रारम्भिक **प्लेनरी सत्र (1)** को सम्बोधित करते हुए बीज वक्तव्य के रूप में **प्रो. के. पी. पाण्डेय** ने अध्यापक शिक्षा से जुड़ी दो महत्वपूर्ण चुनौतियों का उल्लेख किया जिसमें उन्होंने अध्यापक शिक्षा की संस्थाओं की बढ़ती हुई संख्या एवं उनके माध्यम से तैयार किये जाने वाले प्रशिक्षुओं से जुड़ी समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता के आयाम को विस्तारपूर्वक सन्दर्भित किया। गुणवत्ता सुनिश्चित करने की दृष्टि से शैक्षिक नीतियों एवं नवीन शैक्षिक अभिकल्पों का अन्वेषण, शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों के सशक्तिकरण की व्यवस्थाएँ, अध्यापक शिक्षा में सुधार लाने की दृष्टि से उत्पाद की बजाय प्रक्रिया पक्ष को सापेक्षतः अधिक महत्त्व देना, मूल्यांकन की नवीन प्रविधियों को अपनाये जाने पर ज़ोर, गुणात्मक शोध के माध्यम से शिक्षा एवं शिक्षण से जुड़ी परिस्थितियों के यथार्थ का चित्रण, पाठ्यक्रम निर्माण प्रक्रिया को सतत् अभिनव कलेवर देते रहना जिससे सूचना एवं ज्ञान की अद्यतन प्रविष्टियों को सहज रूप से पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना, नवाचारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा, संसाधनों के सृजन एवं विस्तार के प्रति संवेदनशीलता, सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा को आत्मसात् करना, शिक्षक, विद्यार्थी एवं समुदाय के अन्य विशेषज्ञों से प्रतिभाग के आधार पर भागीदारी सुनिश्चित करना आदि पर बल दिया। इस सत्र के **अध्यक्षीय भाषण में प्रो. श्रीधर वशिष्ठ** (पूर्व कुलपति, श्री. ला. ब. शा. रा. सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली) ने आत्मा के परिष्करण को शिक्षा का मुख्य प्रयोजन मानते हुए इस दृष्टि से शिक्षकों में सूचना के साथ-साथ ज्ञान एवं आचरण की उत्कृष्टता को

महत्त्वपूर्ण बताया। **प्लेनरी सत्र (2)** के अन्तर्गत मुख्य वक्ता **प्रो. श्रीधर वशिष्ठ** जी ने अध्यापक शिक्षा में परिष्कार को विशेष रूप से महत्त्व देने की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अध्यापक की भूमिका में आने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने अध्यापक शिक्षा में पाश्चात्य प्रतिमानों की अपेक्षा भारतीय चिन्तन एवं भारतीय दृष्टि को अपनाये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया। इसके साथ समाज की विसंगतियों को दूर करने के लिये शिक्षक की भूमिका को रेखांकित किया तथा अध्यापक शिक्षा में उदीयमान भारतीय समाज की अपेक्षा उदीयमान अभिनव शिक्षा की पद्धतियों को विकसित करने को महत्त्वपूर्ण माना। इस क्रम में **डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** ने 'ई-अधिगम द्वारा अध्यापक शिक्षकों का सशक्तिकरण' पत्रक के माध्यम से आठ उपाय कौशलों (टेक्नोलॉजी के प्रति मानसिक सोच में बदलाव, कम्प्यूटर प्रयोग को शैक्षिक गतिविधियों से अनुकूलित करना, ई-अधिगम का आधारभूत ज्ञान, प्राविधिक कौशलों को प्रोन्नत करना, ई-अधिगम को पाठ्यक्रम का अविच्छिन्न अंग बनाना, ई पाठ्यवस्तु एवं ई- मंच के निर्माण) का उल्लेख किया। इसी सत्र में तीन शोध छात्रों- **मायाराम उनियाल, चेतन बेदिया** तथा **विकास** द्वारा पत्र प्रस्तुत किये गये। अपने **अध्यक्षीय भाषण** में **प्रो. सुरक्षापाल** (विभागाध्यक्ष, मेरठ विश्वविद्यालय) ने ई-अधिगम तथा शैक्षिक तकनीकी के उपयोग को प्रभावी परिपूरक के रूप में बढ़ावा देने की संस्तुति की तथा यह बताया कि शिक्षण में प्रभाव शीलता एवं गुणवत्ता के मुद्दों को संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से शैक्षिक तकनीकी विशेषतौर से ई-अधिगम के आयामों को अपनाये जाने की आवश्यकता है। **तकनीकी सत्र (1)** में **डा. सदन सिंह** ने अध्यापक शिक्षा के बदलते परिदृश्य में अध्यापकों की गुणवत्ता को बढ़ाने के सन्दर्भ में विचार प्रस्तुत किये। इसी सत्र में **डा. दयाशंकर मिश्र** (नई दिल्ली), **नवीता कुमारी** (नई दिल्ली), **गीता** (नई दिल्ली), **देवेन्द्र**, **नरेन्द्र** (मेरठ), **शोधछात्र हर्षवर्धन** एवं **सुभाष चन्द्र** ने अपने पत्रक प्रस्तुत किये-इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे प्रो. हरिकेश सिंह (बी.एच.यू., वाराणसी) ने अपने

अध्यक्षीय भाषण में सभी प्रशिक्षण संस्थाओं को एक ही साये में गठित करने की दृष्टि से व्यापक महाविद्यालयों की अवधारणा पर चर्चा की तथा सतत् अधिगम एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया को एक साथ जोड़ने पर बल दिया। संगोष्ठी के **द्वितीय दिवस 16 फरवरी, 2012** के **प्लेनरी सत्र (3)** के मुख्य वक्ता के रूप में **प्रो. हरिकेश सिंह** ने मूल्य आधारित शिक्षा में अपनी परम्पराओं को किस प्रकार से सुरक्षित रखा जाए इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा की। उन्होंने ज्ञानयोग, आत्मयोग एवं कर्मयोग के समन्वित प्रयोग द्वारा अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम को समाकलित आधार प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसी क्रम में उन्होंने शिक्षणाभ्यास में समग्रता तथा उसके साथ समुदाय आधारित अनुभवों को जोड़ने पर बल दिया जो कि छात्राध्यापकों को वास्तविक परिस्थितियों की अनुभूति प्रदान करने में सहायता प्रदान करेंगे। इस सत्र के दूसरे मुख्य वक्ता **प्रो. सोहन वीर चौधरी** (इग्नू, नई दिल्ली) ने अध्यापक शिक्षा की सामयिक चुनौतियों का विस्तारपूर्वक उल्लेख सर्व शिक्षा अभियान के सन्दर्भ में किया। सत्र के संयोजक **प्रो. भास्कर मिश्र** ने अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला। इसी क्रम में विभाग से **डा. रचना वर्मा मोहन** ने 'शिक्षणशास्त्र में नवाचार में सहयोगात्मक अधिगम' पत्रक द्वारा सहयोगात्मक अधिगम को सुगम बनाने हेतु सकारात्मक परनिर्भरता, व्यक्तिगत दायित्व, सामाजिक कौशलों तथा समूह प्रक्रिया को महत्वपूर्ण बताते हुए उदाहरण के माध्यम से इस विधि के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत किया। **अध्यक्षीय भाषण** में **प्रो. के. पी. पाण्डेय** ने कहा कि आज अध्यापक प्रशिक्षक (Teacher Trainer/ Education) को एक क्रियायोगी की भूमिका निभानी होगी जिसके लिए उसमें तपस्या, स्वाध्याय एवं ईश्वर परिधान परमावश्यक है जो कि उसके आभामण्डल को गतिमान बनाएगा और पूरी व्यवस्था को नया आयाम व दिशा प्रदान कर सकेगा। **प्लेनरी सत्र (4)** में मुख्य वक्ता **प्रो. चन्द्रहास शर्मा** (पूर्व विभागाध्यक्ष श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ) ने अपने वक्तव्य में व्यावसायिकता में मूल्यों के ह्रास, अर्थोपार्जन की अंधी

दौड़, मानवीय सम्बन्धों में दरारें आदि मुद्दों एवं चुनौतियों के रूप में प्रकट अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता एवं प्रभावी प्रबन्धन को किस प्रकार प्रभावित करें, इन बिन्दुओं को उल्लेखित किया। दूसरे मुख्य वक्ता के रूप में **प्रो. सुरक्षापाल** ने अध्यापक शिक्षा की व्यवस्थाओं के स्वरूप में बदलाव, पाठ्यक्रम, शिक्षणविधियों, गुणवत्ता, संख्या आदि मुद्दों को चिन्हित किया तथा उन्हें किस प्रकार हम बदलते परिदृश्य में क्रियान्वित करें इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा की। इसी क्रम में विभाग के **डा. आर. पी. पाठक** ने परिवर्तित परिदृश्य के भावी उपागम एवं अध्यापक की परिवर्तित भूमिका पर प्रकाश डाला। **भोजन उपरान्त प्लेनरी सत्र (5)** में मुख्य वक्ता **प्रो. गोपीनाथ शर्मा** (जयपुर) ने अपने मुख्य वक्तव्य में अध्यापक शिक्षा के वर्तमान में बदलते सन्दर्भ, भूमण्डलीकरण, औद्योगीकरण, तंत्र व्यवस्था, सामूहिक उपागम, ई-अधिगम, शैक्षिक स्वायत्तता, निजीकरण आदि चुनौतियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की। इस सत्र के दूसरे वक्ता के रूप में **प्रो. शशिप्रभा जैन** (पूर्व कुलपति एवं पूर्व विभागाध्यक्ष शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला. ब. शा. रा. सं. विद्यापीठ) ने इस परिवर्तित परिदृश्य में अध्यापक शिक्षकों को ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, वफादारी, कर्त्तव्यपरायणता, क्षमाशीलता, धैर्य जैसे गुणों से अपने व्यक्तित्व को और समृद्ध करने पर बल दिया। उन्होंने शिक्षकों में सम्प्रेषण कला, शिक्षण के समय आनन्दानुभूति, समुदाय प्रतिभाग, ICT का समावेश आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाला। इस क्रम में विभाग से **डा. मीनाक्षी मिश्र** ने भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार प्रस्तुत किए। इसके साथ शोध छात्र **प्रशान्त नन्दा** व **सरिता** ने अपने पत्रक प्रस्तुत किये। **तकनीकी सत्र (2)** के अन्तर्गत सात शोध छात्रों-**शानू जैन, रेनू, विनीता, धर्मसिंह राठौर, कर्मपाल, नीता वर्मा** एवं **ऋषिराज** ने अपने पत्रों का सार प्रस्तुत किया।

इस संगोष्ठी के **तृतीय दिवस 17 फरवरी, 2012** के **प्रथम प्लेनरी सत्र (6)** में मुख्य वक्ता **डा. गिरिश नाथ झा** (जे. एन. यू.) ने संस्कृत में ई-अधिगम के प्रयोग, ई-अधिगम पाठ्यवस्तु

के मुख्य स्त्रोत, अच्छे ई–अन्तर्क्रियात्मक विषयवस्तु की विशेषताऐं तथा इन सबके व्यावहारिक पक्ष पर विस्तारपूर्वक चर्चा एवं पावर प्वाइन्ट प्रस्तुति की। इसी सत्र में विभाग से **डा. के. भारतभूषण** ने ज्ञान युग में अध्यापक शिक्षा की समस्याएँ एवं उसके समाधानों पर प्रकाश डाला। सत्र की अध्यक्षता करते हुए **प्रो. के. पी. पाण्डेय** ने अध्यापक शिक्षा के बदलते परिदृश्य में अभिक्रमित अधिगम आधारित स्व–अनुदेशनात्मक सामग्री के निर्माण पर बल दिया। **द्वितीय सत्र–प्लेनरी सत्र (7)** में **प्रो. डी. आर. विज** (जालन्धर) ने परिवर्तन एवं सीखने के प्रति तत्परता पर बल देते हुए कहा कि शिक्षकों के अशाब्दिक व्यवहार को भी शाब्दिक व्यवहार के समतुल्य और महत्त्वपूर्ण मानते हुए अध्यापक को अपनी व्यावसायिक दक्षता में अभिवृद्धि करने हेतु सतत् प्रयास करना चाहिए। इस सत्र में विभाग से **डॉ. विमलेश शर्मा** ने अध्यापक शिक्षा में उत्पाद, प्रक्रिया, संस्था, नेतृत्व व प्रतिबद्धता को गुणवत्ता के पाँच स्तम्भों के रूप में विवेचित किया। **डॉ. कुसुम यदुलाल** ने अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता के प्रबन्धकीय परिप्रेक्ष्य में तथा **डॉ. मनीषा तनेजा पाहुजा** ने अध्यापक शिक्षा में व्यावसायिक आचार विषय पर प्रकाश डाला। इसके साथ–साथ शोध छात्र **विचारी लाल मीणा, राजेश कुमार** एवं **स्नेहलता मिश्र** ने अपने पत्र प्रस्तुत किये। संगोष्ठी के **अन्तिम तकनीकी सत्र (3)** में विभाग से **डा. रजनी जोशी चौधरी** ने अध्यापक शिक्षा में चुनौतियाँ व **डा. एम. जयकृष्णन्** ने शान्ति शिक्षा की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। इस अन्तिम सत्र में **डा. रजनी कोटनाला** (गुड़गाँव), **डा. हरिओम भारद्वाज** (नोएडा), **निधि कक्क्ड़** (भिवानी), **श्याम बिहारी चौधरी, विवेक तिवारी, अुतल गर्ग, पद्मिनी श्रीधर, जोगेन्द्र** एवं **विजय** (शोध छात्र), **नितिन भाल एवं दीपा** (विशिष्टाचार्य) तथा **नीतू राजपूत, कविता, मंजू, मुकेश** एवं **अमिता** (शिक्षाचार्य) ने अपने पत्रकों को सार रूप में प्रस्तुत किया। अध्यक्षीय भाषण में **प्रो. शशि प्रभा जैन** ने सर्वप्रथम अपने में सुधार एवं प्रबन्धन की आवश्यकता पर बल दिया।

संगोष्ठी के **समापन सत्र** के मुख्य अतिथि **प्रो. आर. देवनाथन** (कुलपति, जगद्गुरू रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर) सारस्वत अतिथि प्रो. श्रीधर वशिष्ठ और अध्यक्ष प्रभारी कुलपति प्रो. उषा रानी कपूर थीं। इस सत्र में उपस्थित सभी सम्माननीय अतिथियों का स्वागत संकाय प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष **प्रो. नागेन्द्र झा** के स्वागत भाषण से हुआ। संगोष्ठी के तीनों दिवसों के सत्रों के अन्तर्गत हुए विचार-मंथन की विस्तृत रिपोर्ट **डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** द्वारा प्रस्तुत की गई। समापन अभिभाषण में **प्रो. के. पी. पाण्डेय जी** ने इस बदलते परिदृश्य में अध्यापक शिक्षा की संरचना, पाठ्यक्रम एवं शोध में परिवर्तन की आवश्यकता की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। सारस्वत अतिथि के रूप में **प्रो. श्रीधर वशिष्ठ** ने अध्यापक शिक्षा के बदलते परिदृश्य में भारतीय संस्कृति को न भूलते हुए देश की परम्पराओं को आगे बढ़ाने का आह्वान किया। इस सत्र के मुख्य अतिथि **प्रो. आर. देवनाथन जी** ने अपने सम्बोधन में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करने में सरकार की नीतियों की ओर ध्यानाकर्षण किया तथा विभिन्न संवैधानिक नीतियों (यथा-सर्वशिक्षा अभियान, शिक्षा का अधिकार नियम) तथा मानव संसाधनों की कमियों पर चर्चा की। विद्यापीठ की प्रभारी **कुलपति महोदया प्रो. उषा रानी कपूर** ने अपने अध्यक्षीय भाषण में विभाग की गतिशीलता की सराहना करते हुए अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता बनाए रखने के लिये प्रयत्नशील रहने पर बल दिया। अन्त में संगोष्ठी के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने हेतु सभी अतिथि-गण, विभाग के सभी सदस्यों, विद्यार्थियों एवं कर्मचारियों को धन्यवाद ज्ञापन विभाग के प्राध्यापक **डा. आर. पी. पाठक** ने किया।

संगोष्ठी का निष्कर्ष:-

- अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में निश्चित अन्तरालों पर आशोधन एवं परिवर्द्धन।
- पाठ्यक्रम की क्रियान्वयन विधियों एवं युक्तियों में सुधार की आवश्यकता।

- अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों में ई-अधिगम का समावेश परमावश्यक।
- विद्यालयीय शिक्षा की अपेक्षाओं के अनुरूप अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम एवं अध्यापन विधियों में बदलाव।
- अन्य संस्थाओं से साझेदारी एवं सहयोग पर बल।
- समुदाय-आधारित गतिविधियों को पाठ्यक्रम का अविच्छिन्न अंग बनाना।
- मूल्यांकन में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन को उपयुक्त स्थान।
- मात्रात्मक के बजाय गुणात्मक शोध पर बल।
- अध्यापक शिक्षा को आवश्यकता एवं कौशल आधारित बनाना।
- भारतीय शिक्षा में अन्तर्निहित ज्ञान के सन्दर्भों को अध्यापक शिक्षा के विषयों से जोड़ना।
- शिक्षणशास्त्र में अध्यापक प्रशिक्षक के व्यावहारिक पक्ष पर बल देना।
- शिक्षणाभ्यास को Internship या School attachment कार्यक्रम के रूप में करना।
- शिक्षाशास्त्री-पाठ्यक्रम को दो वर्षीय बनाना।
- आनन्दपूर्ण अधिगम पर बल।

इस वैचारिक मंथन से प्राप्त निष्कर्ष अवश्य ही इस परिवर्तित परिदृश्य के अनुरूप अध्यापक-शिक्षा एवं अध्यापक-प्रशिक्षक को बनाने एवं नया कलेवर प्रदान करने में हमारे विचारों के लिए एक मार्गनिर्देशक की भूमिका प्रदान करेंगे।

विषयसूची

English

ज्ञानयुगे अध्यापकशिक्षायाः समस्याः एवं समाधानानि

–डॉ. के. भरत भूषणः
उपाचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

श्रृष्टिकालादारभ्य ज्ञानस्याधारेणैव प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे वृद्धिः अनुभूयते। आधारेणैव प्रोन्नतिः। ज्ञानस्य परिचयः युगयुगान्तरेण अनुभवामः अथाऽपि अर्वाचीनसन्दर्भे ज्ञानयुगमिति प्रसिद्धरूपेण प्रचारे दृश्यते। यद्यपि ज्ञान क्षेत्रे विस्पोटः दृश्यते तद्सर्वमपि पूर्वार्जितज्ञानस्याधारैव। अतः ज्ञानानुकरणयुगमिति कथने विप्रतिपत्तिः न भवेदिति विश्वासः।

भारते अध्यापकशिक्षायाः परिचयः वैदिककालादवे दृश्यन्ते। गुरूकुले आचार्यः शिष्यान् पाठयन्ति स्म। उत्तमाशिष्यः पूव अग्रे आचार्यो भूत्वा गुरूकुलपद्धतिम् अग्रे नयति स्म। तादृशैवपरिपाठिम् अनुभवामः। Encyelopedia pg Americana (1984) अनुसारं सुकरातः (Socrates) प्रसिद्धाध्यापकः इति, पनः तेन प्रश्नोत्तरस्य विश्लेषणपद्धतेः उपयोगः अपि कारितः तदेव भारते आकाक्षापद्धतिरिति इदानीमपि साम्प्रदायिक संस्कृतविद्यालयेषु, विश्वविद्यालयेषु, प्रचारे विद्यते।

अध्यापकशिक्षायाः ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः

आदश शताब्ध्याः प्रारम्भकाले अध्यापकशिक्षायाः प्रारम्भकालैव स्वीक्रियते। 1706 तमे वर्षे जर्मनि देशे अध्यापकशिक्षाशः गवं 1794 तमे वर्षे france देशे Normal School इत्यस्य प्रारम्भः अभवत। भारते आङ्गल शासकानां सन्दर्भे 1716–Danish Missionary Ziggenbalg महाशयेन Tranquebar इत्यत्र अध्यापकशिक्षासंस्थायाः स्थापनमपि कृतम् 1802 तमे वात्सरे अन्यदेक मिशिनरि Wjlliam carey नाम्नः अध्यापकाशिक्षायाः निमित्तेन Normalschool स्थापितः। एवमेव 1819

मध्ये कलकत्ता Cullutta school society द्वारा स्थापितः। Elphinstond द्वारा Bombay नगरे 26 अध्यापकानां तत्राऽपि 12 एवं 14 अध्यापकानां क्रमशः गुजराती, मराठी भाषायां प्रशिक्षणस्य प्रारम्भः अभवत् Native Education societs मुम्बई द्वारा 24 अध्यापकानां 1826 तमे वर्षे प्रशिक्षणं दत्तवन्तः। स्वतन्त्र भारते 1948 श्री राधाकृष्णन् समिति (1948), मुदलियार, आयोगः (1952) कोतारि आयोगः (1966) 1973 राष्ट्रिय अध्यापक शिक्षा परिषदः, नवीन शिक्षा नीतिः (1986) 1990 आचार्य राममूर्ति समितिः 1992 आचार्य टन्डन समितिः एवं 2000, 2004, 2005 आदि राष्ट्रियपाठयक्रमे अध्यापक शिक्षायाः विषये संस्युतयः प्रदत्ताः।

शिक्षायाः आधारेणैव देशोन्नातिः भवति। 'Investment on Education is the right development of the nation' इति कथनानुसारं देशोन्नतेः कारणं शिक्षा, तस्याः निर्मातृणां शिक्षकानां विशिष्य ज्ञानयुगे तेषां स्थानम्, इत्यादिः विषये परिशीलयामः चेत समस्यायाः अवगमनमपि भवति। समस्यायाः अवगमनमेव प्रगतेः प्रथम सोपानं भवति। देशे, विदेशे विद्यालयीय बालकानां निर्माणं तथा तेषां वैयक्तिक, सामाजिकादि प्रगतिः कुत्र, कथं पाठयक्रमे योजनीयमिनि परिशीलतं कर्तव्यम्, एवम् अध्यापकानां कर्तव्यम् उत्तरदायित्वञ्च गण्यते। इदानीं सर्वत्र गुणवत्ता विषये महत्वं दीयते। गुणवत्तायाः निमित्तमेव राष्ट्रियध्यापकशिक्षापरिषदस्य प्रारम्भः कृतः। तस्यानुगुणं गुणवत्तायुक्तसंरथाया साकं दक्षतापूर्ण अध्यापकानां निर्माणमेव। संविधानानु-लक्ष्यानाम् उपलब्धिः क्रमशः नागरिकानामधिकारः, कर्तव्यक्षेत्रे, न्याये, अभिव्यक्तौ, स्वातन्तये समानतायाः स्थापनार्थम् अध्यापकाशिक्षायाः आवश्यकतां सूचितवन्तः।

अध्यापकशिक्षायां सम्पूर्णगुणवत्तायाः सम्पादनार्थं भारते कतिपयकार्यक्रमाः पाठयक्रमान्र्तमतत्वेन विशिष्य प्रशिक्षण संस्थाभिः अनुभवामः। उदाहरणार्थम्

1. अर्न्तविषयप्रकारः (Inter diciplinary)
2. प्रविक्षाकालः Internslnisp

3.	अभिविन्यासकार्यक्रम:	Orientation programme
4.	दूरस्थ शिक्षा	Distance education.
5.	अध्यापकव्यवहारपरिवर्तनम्	Moditication of teacher behavior
6.	अभिरूपण एवं सामाजिक कौशलशिक्षणम्	Simulated and social sekill Teaching
7.	सूक्ष्मशिक्षणम्	Micro Teaching
8.	अभिक्रमितांध्यायनम्	Programmed Learning
9.	सामूहिक प्रशिक्षणम्	Cnonp Training.
10.	शैक्षिकप्रविधि:	Educational Tecnology
11.	अवलोकनात्मकाध्ययनम्	Supervised Study
12.	क्रियात्मकानुसन्धानम्	Action Research
13.	अंशकालिक शिक्षणम्	Part Time Teaching
14.	उद्देश्यानुरूपित पाठयोजना एवं Bloom अनुगुण मूल्याङ्कनम्	Bloom's Evaluation approach and objetive based lesson plans
15.	लैङ्गिक शिक्षा	Sex Education
16.	जनसंख्या शिक्षा	Population Education
17.	पर्यावरण शिक्षा	Environmental Education
18.	मानवाधिकार शिक्षा	Human Right Education
19.	AIDS Education	
20.	विशिष्ट शिक्षा	Special Education

21. प्रौढ शिक्षा Adult Education इत्यादि

यद्यपि उपयुक्त विषये अध्ययनमध्यापनञ्च कर्मः अथाऽपि कतिपय समस्याः अपि दृश्यन्ते। यदि समस्यानां विषये अवगताः भवामः चेत् निवारणे अपि प्रयासमपि भवितुमर्हति। समस्याः अथवा दोषाः इति चिन्तने उभयोः अपेक्षया न्यूनताः इति कथमपि भवितुर्मर्हति।

न्यूनताः–अथवा अध्यापकशिक्षायाः बाधकतत्त्वानि

1. असमानता–

देशे राष्ट्रियअध्यापकशिक्षापरिषदः संस्तुतयः प्रदत्ताः सन्ति अथाऽपि समायोजने असमानता विद्यते। कुत्रचित् वर्षात्मिकाध्यापकशिक्षा अन्यत्र द्विवर्षीय प्रशिक्षणं तत्तु B.Ed स्तरे। अतः सम्पूर्णे देशे प्रशिक्षणकालावदिः समानतया भाव्यम्। सर्वकारपक्षतः राष्ट्रे, राष्ट्रे एवं सङ्गराज्यक्षेत्रे समानता स्यान्।

2. चयनप्रणाली–

प्रशिक्षणविद्यालये छात्रचयनप्रणाली समानतया नास्ति। कुत्तचित् प्रवेशपरीक्षाधारेण स्थानं प्राप्नुवन्ति कुत्रचित् साक्षादेव प्रवेशः। अतः देशे समानचयनप्रणाली माध्यमत अध्यापकशिक्षा कार्यक्रमः करणीयाः तेन गुणवत्तायाः अपि अवकाशः विद्यते।

3. संख्यात्मक प्रभाव–

प्रशिक्षणविद्यालयेषु संख्यात्मकदृष्ट्या प्रवेशः न तु गुणात्मकदृष्ट्या। व्यापारनिमित्तेन स्वायत्त संस्थाभिः प्रवेशः भवन्ति। अतः गुणवत्ता विषये सन्देहाः एव अवशिष्यन्ते।

4. संयुक्त अध्यापक प्रशिक्षणे न्यूनताः

प्रशिक्षणविद्यालये प्रायोगिकाभ्यासकालस्य अवधिः विभिन्नरूपेण विद्यते। प्रायः 40 पाठाः अभ्यासपाठरूपेण स्वीक्रियते, कुत्रचित् न्यूनता दृश्यते तेन गुणवत्ता विषये प्रभावः अवश्यमेव सम्भवितुं शक्यते।

5. मूलभूतसौविध्यापनामभावः

प्रशिक्षणविद्यालये प्रायः सौविद्यानामऽभावः दरीदृश्यते। शिक्षण प्रकोदारभ्य, शिक्षणसामग्रीणां, वैयक्तिकग्रान्थालयानाम्, अध्यापकानां वैयक्तिकप्रोन्नतेः एवं शोधकार्यादि आलोचने प्रयोगात्मक उपकरणानाम् अभावः।

न्यूनतानां परिहारे प्रयासः

1. राष्ट्रीयअध्यापकशिक्षापरिषदः सम्पूर्णे देशे समानताम् आनयतु प्रयासः विदेयः।
2. अध्यापक शिक्षायां प्रवेशार्थं राज्ये तथा राष्ट्रस्तरे नियमितरूपेण राष्ट्रियअध्यापकशिक्षापरिषद्द्वारा सूचितनियमानां पालनं कर्तव्यम्।
3. व्यापारदृष्ट्या प्रवेशे संख्यात्मक पक्षापक्षेय। गुणात्मक दृष्टया प्रवेशः करणीयः।
4. प्रशिक्षणविद्यालये अथवा विश्वविद्यालये मूलभूत सौविद्यानां कल्पनावश्यकम्। तेन छात्राः अध्यापकाः च स्वीय गुणवत्तायाः स्थापने अवकाशः विद्यते।
5. प्रशिक्षणाभ्यासकालः इतोऽपि अधिकतया भवतिचेत् दक्षता-युक्ताध्यापकानां निर्माणं कर्तुं शक्यते।
6. उपर्युक्तेन उपर्युक्तेन सह ज्ञानयुगे इतोऽपि अन्यस्मिन्नपि विषये अध्यापकशिक्षकानां ध्यानाकर्षणमावश्यकम्। तत्र
   * उपलब्ध्मानप्रविधेः ज्ञानम्।
   * प्रयोग क्षमता।
   * सूचनानां (Intormation) विषये अभिज्ञता प्राप्तिः तदनन्तरं तद्विषये शिक्षणम्।
   * प्रविधेः समायोजनम् (Tecnology Integrctation) प्रविधेः

आधारेण प्रायोजनाकार्यसम्पादनम्। क्रमशः। आदि नूतन क्षेत्रे प्रवेशः अत्यावश्यकः।

सूचनानां द्वारा अधिकज्ञानप्राप्तिप्रविधेः आधारेणैव सम्भवति। सङ्गणक द्वारा अन्तर्जालस्य आधारेण सूचनानां प्राप्तिः संभवति तत्राऽपि पूर्णतया सूचनानां प्राप्तिरपि विश्वसनीयस्तरीय एवं योग्यस्तरमपि कियदस्ति इति विषये सन्देहैव अवशिष्यते। जीवनस्य अभिन्ना अङ्गत्वेन भवति सूचनानां ज्ञानम्। प्राप्तसूचनानां ज्ञानेन विश्लेषणं प्रस्तुतीकरणमादि अर्थपूर्ण जीवनाय उपयुज्यते।

* इदानीं सूचना समाजे (Intormation society) सूचना प्रदानात् सूचनानां चयनप्रक्रियायां प्रवृत्ताः सन्ति। अध्यापकाः विश्वसनीय-विषयसंग्रणे छात्राणां सहायकः भवेत्।

* अध्यापकानां मध्ये तादृश सम्बन्धस्य समयः अनुभूयते यत् विद्यालये एवं समाजे सामत्वस्थापनं, कौशलानां प्रदर्शनम् एवं दक्षतापूर्ण समाजस्य निर्माणम्।

* सामान्य आधारकौशलेन साकं छात्राभिवृत्तिनां, सामाजिकनैतिक एवं भावात्मकविकासस्य आवश्यकता अनुभूयते।

* निर्देशने परामर्शे अध्यापकानां योगदानमावश्यकम्

* सामाजिकसेवायामध्यापकस्य भूमिका।

* Educational soffware प्राणम्, उपयोगः, प्रशिक्षणञ्च।

* सक्रियतायाः एवं सूक्ष्मादिसूक्ष्मयोग्यतायाः अभिवृद्धिः।

* परिवर्तमानकौशलानाम् आत्मसात्करणे उत्साहवर्धनाम्

* छात्रान्नुकरणयोग्याध्यापकानां निर्माणम्।

* छात्राणाम् अभिभावकानां, समाजयोः मध्ये अध्यापकस्य उत्तरदायित्व-मावश्यकम्।

* अध्यापकाशिक्षायाम् इतोऽपि स्वातन्त्र्यमावश्यकम्। तेन स्वीय व्यवसाये प्रोन्नत्यर्थं बाह्यजगदि अनुभूयमानपरिवर्तनस्य आत्मसात्करणे अवकाशकलपनम्।

* गुरूकुले अध्यापकाः छात्रेषु, अध्यापनेन साकं चिन्तनस्य औपचारिकव्यवहारस्य अधिकारिरूपेण, सहायकरूपेण, मानसिकद्न्दूसन्दर्भे मनोवैज्ञानिकरूपेण सत्यस्य स्थापने आत्मानं सर्वं दत्तवन्तः तद् इदानीं प्रायः असम्भव एव तदेव समस्यायाः मूलकारणम्। गुरूकुलेषुप्रायः उत्पादकरूपेण सक्रियकार्याणां सम्पादनम्, अन्तक्रियाः, चर्चाः अवबोधः, उत्साहवर्धनम् आदि प्रचारे आसीत्। अद्यापि उपर्युक्ताः प्रायः दृश्यते परन्तु शतप्रतिशतरूपेण न अनुकरणं कुर्वन्ति। यदि उक्तंन्यूनतायाः परिहारः आधुनिकपरिप्रेक्ष्ये सर्वे अध्यापकाः यदि अनुकरणं कुर्वन्ति चेत् समस्यानां समाधानं स्वयमेव सम्भवति।

अन्ते 'No thing is constant is this world' परन्तु परिवर्तनेन आवश्यक सादनानां, समादानानां द्वारा गुणवत्तायुक्तदेशस्य निर्माणं कर्तुं शक्यते। केवलम् अध्यापकशिक्षा द्वारा एव उन्नत देशस्य निर्माणमिति आशयः नास्ति परन्तु अङ्गरूपेण अवश्यमेव भवितुमर्हति।

परिवर्तनोन्मुखाध्यापकशिक्षायां शान्तिशिक्षा

–डॉ. एम्. जयकृष्णन्
सहायक आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

अध्यापकशिक्षायां परिवर्तनपरिदृश्यमित्यस्मिन् विषये पशिचिन्तनं नितराम् आवश्यकं वर्तते। लोके जायमानपरिस्थित्यानुसारं नवलोकनिर्माणाय उद्युक्तानां शिक्षकाणां प्रबोधनपद्धतावपि–नावीन्यमपेक्ष्यते। समसामयिकसमाजे अस्माभिः अभिमुखीक्रियमाणाः समस्याः विविधाः। तासां परिहारोपाया अपि शिक्षकैश्चिन्तनीयाः। यधेवं नास्ति तर्हि केवलं कक्ष्यायां निर्दिष्टवषयाणां कथञ्चिद्बोधनं निरुह्य व्यावहारिकजगद्विस्मृत्य शिक्षकैः स्थातव्यं भवेत्। नेऽयं स्पृहणीया रीतिः। अवसरेऽस्मिन् राष्ट्रियपाठ्यचर्यासंरचनायां (2005) यत्सूचितं तन्मन्तव्यम्। विद्यालये अधीयमानबालकस्य सम्बन्धः बाह्यलोकेन समाजेन वा सह स्यादिति तस्या अभिप्रायः।[1] अतःकेवलं पुस्तिकाबोधनापेक्षया प्राप्तज्ञानस्य वास्तविकक्षेत्रे अनुप्रयोगश्च अत्र लक्षितमिति सिद्धयति।

संप्रति लोके मानवजीवनेन साकं साक्षात्सम्बद्धाः बह्व्यः समस्याः दरीदृश्यन्ते। यथा–अशान्तिः, मानवाधिकारणामुल्लङ्घनम्, वातावरण–कालुष्यम्, भ्रष्टाचारप्रभृत्यः। न केवलमस्मद्देशे अपि तु–इतरदेशेष्वपि जना आभिस्समस्याभिः पीडितास्सन्ति। एतेषां प्रश्नानां चिन्तनं पृथग्विषयरूपेण कक्ष्यायां क्लिष्टसाध्यमस्ति। अधीयमानवियैस्सह (भाषा–इतिहास–विज्ञान–अर्थशास्त्र सदृशैः) लोकसङ्कटहेतूनामपि सान्दर्भिकचिन्तनं वरम्। एवं यदि क्रियते, बालकोऽपि विचारयेत् अस्ति ममापि दायित्वं समाजस्य कृते इति। बालानां मनः सु ईट्टक्चिन्तनं यद्यागन्तव्यं तेषां शिक्षणाय उद्युक्तानामध्यापकानां शिक्षणकार्यक्रम अपि यथार्थ्य–युक्तस्सयात्। अन्यथा प्रशिक्षणमहाविद्यालये श्रुतमन्यत् जगति विद्यमानमन्यदिति वैरुद्धयं सम्भवेत्।

---

1. National curriculum framework (2005) pub. N.C.E.R.T., New Delhi.

पूर्वं सूचितासु समस्यासु अशान्तिः मुख्या। अस्याः कारणं सामाजिकम्, आर्थिकं, कायिकं, मानसिकं, बौद्धिकं मिश्रितञ्च भवेत्। "अशान्तस्य कुतस्सुख" मिति खलु गीतावचनम्? अतः वयं-अशान्तिं परिहृत्य शान्तिमवाप्तुं प्रयतामहे। कथम्? शान्तिशिक्षया। इयमेव 'Peace Education' इति प्रसिद्धा। शान्तिविर्षायणी अपि शिक्षा भवति; शान्त्यर्थमपि। तदा 'Education for Peace'.

राष्ट्रियाध्यापकशिक्षापरिषदः (2009/10) पाठ्यचर्यासंरचनायां नूतनायां तल्लक्ष्यमित्थं दृश्यते-"नैपुण्यानुभवयुक्तानां मानवीयगुणिनां शिक्षकाणां निर्माणं प्रतीति।" अत्र अनुभवः निपुणता च कार्यक्षेत्रसम्बद्धः। मानवोचित गुणाः अनुकम्पासहानुभूतिप्रभृतयः शिक्षाग्रहणप्रारम्भतः संवर्धनीयाः। कार्यनैपुणी, पर्याप्तानुभवः, सादगुण्यमित्येतत् त्रितयम् उत्तमशिक्षकस्य लक्षणम्।

उक्तगुणे शान्तिः प्रधाना। उपशमनार्थक 'शमु' धातोर्निष्पन्नोऽपं शब्दः। विविधैः श्रुतिसारविद्भिः आचार्यैः शान्तिमधिकृत्य स्वाभिमतं प्राकाशि। बाह्यभ्यन्तरेन्द्रियाणां प्रशमनं शान्तिरिति शक्यते वक्तुं सामान्यतया। वेदान्तप्रकरणग्रन्थेषु तच्छास्त्राधिकारिणां योग्यतासु 'शान्तिः' प्रधाना। तदुक्तं "शान्त्यादिः परिचीयताम्" इति 'उपदेशपञ्चरत्ने'।[2] अस्या एव कृतेः सारभूतकारिकायां सदाशिवविरचितायां "ज्ञानाविरोधिशान्त्यादि तत्तु नैव परित्यजेत्'"[3] इति सूचितम्। शान्तो नाम "अक्षोभित चित्त" इति 'आत्मबोध' व्याख्यायां 'प्रदीपिका' यां कृष्णानन्दयतिवराः।[4] शान्तेः महत्त्वं जैनबौद्धादयः कालक्रमेण सर्वोदयाचार्याः च उदघोषयन्।

"The man of prayer will be at peace with himself and with the whole world and the man who goes about the affairs of the world without a prayerful heart will be miserable and will make the world also miserable."[5]

---

2. 'उपदेशपञ्चरत्लम्' प्रः महेश् अनुसन्धानकेन्द्रम्, काशी-1197
3. ibid.
4. आत्मबोधः 'प्रदीषिकायुक्तः प्र. Educational supplies depot, palakkad.
5. Ligth of India pub. Navajivan, ahmedabad, 2002 p. 133

अस्मिनन्नवसरे, प्रापञ्चिकटुः इव निवृत्त्यर्थं उत्तमव्यक्तीनां निर्माणार्थञ्चापेक्षितमूल्योन्मुखीकरणाय 'शान्तिः' समन्वयात्मिकां भूमिकां वहति। इयं शान्तिः, शिक्षायां यस्यां मुख्यतया भवति सा शान्तिशिक्षा। तदुक्तं–

"...Education for peace is education for life, not merely training for a livelihood... Individuals... need to be wholesome persons who live in harmony with themselves and others and are responsible citizens is the goal of education for peace..."[6]

एषा शान्तिशिक्षा, राष्ट्रियान्तर्राष्ट्रिय प्रसङ्गे स्यादित्यपि निर्दिशति राष्ट्रियाध्यापकशिक्षापाठ्यचर्यासंरचना।

अनुपमा श्रीनिवासन् महोदयायाः मते–दक्षिणेष्या मध्ये प्रत्येकं शान्तिशिक्षाकार्यक्रमः तत्तद् सन्दर्भानुसारं (राज्यस्य) व्याख्येय अस्ति। शान्तिशिक्षायाः निर्णायकघटकेषु–भौगोलिक–राजनैतिक–सामाजिक–मनोवैज्ञानिक–आर्थिक–सांस्कृतिक–जनसंख्याविषयक–पर्यावरणीय बिन्दुवसन्ति। किन्तु शान्तिशिक्षायाः सन्दर्भ भेदे सत्यपि मूलमुद्दश्यम् एकम्:- शान्तेरवाप्तिः तत्सुस्थितिश्च।

शान्तेः निर्मितिः शिक्षायाः दायित्वमिति मरिया मोन्टिस्सोरि। यदि भुवि वास्तविकशान्तिं वयं शिक्षयितुकामाः, यदि युद्धविरोधियुद्धं चिकीर्षामस्तर्हि, (अस्माकं प्रयत्नः) बालकेभ्य आरम्भस्सयादिति निगादतं गान्धिवर्यैः।[9]

पूर्वं भारतीयशास्त्रकाराणां मतप्रदर्शनावसरे–मनः कल्पमषनाशनाय शान्त्यादेरभ्यासोऽपेक्षित इति दृष्टम्। जगद्विश्रुत–'स्टानफार्ड' विश्वविद्यालयस्य कस्मिश्चित् परीक्षणात्मकपाठ्यक्रमे सर्वविधहिंसायाः मूलम् अस्मन्मनस्सु अस्माकं परितः स्थितौ च वर्तत इति दर्शयितुम् उद्यमोऽभवत्। केवलं

---

6. National curriculum framework for Teacher Education-2009, p.33 pub : N.C.T.E, New Delhi
7. 'Agenda' p. 41, issue 23, 2011 pub. centre for comm & development studies, pune.
8, 9. पूर्वोक्तपत्रिकायाः 45–तमे पृष्टे दृष्टप्रकारेण।

बौद्धिकाधीतेः स्थाने 'हृदय' स्यापि स्थानं भवेदुच्चशिक्षायामित्यपि अस्य तात्पर्यम्।[10]

सामाजिकनीतिः आर्थिकनितिश्च शान्तिं जनयनीति तत्त्वं तावत् प्रतिष्टितम्। किन्त्वत्त वैयक्तिकतले आवश्यकी शान्तिः न परामृष्टा। यावत्पर्यन्तं काचित् वैयक्तिकी अनवरतपुनर्न्नवीकृतिः-जीनस्य आधारभूतमूल्यानां तावत्पर्यन्तं सामाजिकार्थिकोत्तमसंरचनाः सफलाः न भवेयुरिति आयी रजनी बक्शी अभिप्रैति।[11]

एतत्सर्वं परिशील्यते चेत् एकं तत्त्वं-सुनिष्पन्नं भवति, शान्त्यर्थं व्यक्तिविशेषेण सन्नद्धेन भाव्यम्; स्वजीवनमेव दृष्टान्तत्वेन परिवर्तनीयमिति। इदं किल तपः? भारतीयगुरवः, इत्थं, स्वजीवनमेव उदाहरणत्वेन पर्यवर्तयन् अत उक्तं-"दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोज्ञदितु" रिति।[12]

अतः शिक्षकशिक्षाः पाठ्यक्रमः मूल्यवतां मनीविणां निर्माणाय भूयात्। एतादृशमूल्ययुक्तः पुरुषः स्वीयं धर्ममादौ परिचिनोति पुनरन्येषां धर्मं (Religion) माकलयति। अन्तर्धर्मसंवाद-मानवाधिकारनिःशास्त्रीकरण-अहिंसात्मकानुष्ठान-संघर्षपरिहार (conflict resolution) प्रभृतीननेकान् विषयानवगम्य परां शान्तिमाप्नोति इति सप्रणवं त्रिशान्तिः।

---

10. Article : 'cultivating compassion : putting the heart back into higher education, p. 47, 'agenda', issue. 23, 2011 pune.
11. Article :- 'Beyond social and economic justice' p. 49 'agenda' 23, 2011, pune.
12. शतश्लोकी-1 प्र. महेश अनुसन्धानसंस्था वाराणसी, 1197

अध्यापकशिक्षा : व्यावसायिक नीतिशास्त्रम्

–डॉ. सुरेन्द्र महतो
अतिथि व्याख्याता, शिक्षा शास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शिक्षा राष्ट्रस्य आधारस्तम्भो भवति। येन राष्ट्रस्य विकास चरमोत्कर्षम् आप्नोति। शिक्षाव्यवस्थायाः प्राणस्वरूपेण अध्यापकशिक्षा स्वीक्रियते। अध्यापकशिक्षायाः अपरनामव्यावसायिकशिक्षा क्रयमेणाऽपि परिगण्यते। राष्ट्रविकासाय, संवर्द्धनाय व्यावसायिकशिक्षायाः महत्त्वपूर्ण योगदानं वर्तते। व्यावसायिकक्षमताभिवर्द्धनाय प्रशिक्षणस्यावश्यकतैवकेवलं नास्ति। अपितु तद्विषयकज्ञानेन सह व्यावसायिक नीतिशास्त्रस्य ज्ञानमपि अनिवार्यम्। व्यावसायिकनीतिशास्त्रं विशेषरूपेण अध्यापक शिक्षा सन्दर्भे अध्यापकानां कर्तव्याधिकारनिष्ठाणदिणां परिभाषयति। अध्यापकाः शिक्षाविषये जानन्ति सम्वर्द्धयन्ति लोकतान्त्रिक सिद्धान्तानामभिवर्द्धन्ति। नीतिशास्त्रं व्यक्ति यत् अध्यापकाः जनेषु विश्वासं गुणवता, सेवाभावना व्यक्ति प्रति व्यक्तित्वस्य गदिमाया वर्णयति। अध्यापकशिक्षायां नीतिशास्त्रीया सिद्धान्तेषु पञ्चसिद्धान्तः प्रमुख्यः विद्यन्ते येन व्यावसायिक निष्ठा विश्वासअभिवृर्त्ति–मानवीय सम्बन्धज्ञानकर्तव्यनिष्पादनञ्च।

1. व्यावसायिकअभिवृत्रिः

विद्यालयीय शिक्षायां सर्वेषु जनेषु उन्मुक्तता, शिष्टाचरणम्, ईमानदारी, विश्वनीयता, करूणा संरक्षपञ्च सनद्धाः शिक्षाव्यवसायिकाः स्पष्टं परस्परञ्च भवेयु इति कलपयते। शिक्षाव्यवस्थायां विशेषरूपेण व्यावसायिकेषु शिक्षकेषु तजन्यव्यवहारं विश्वासप्रणालीमूल्यं च अभिज्ञानं कारयति। यथा–

उन्मुक्तत्त्वम् – प्रशिक्षकानां कक्षाध्यापकानां पर्यवेक्षकानां प्रति–क्रिया स्वीकार्यता सहर्षेण भवेयुः।

विनम्रता – शिक्षकानां, कर्मचारिणां, सहयोगिनां, प्रधानाचार्याणां छात्राणां कृतेऽपि आवश्यकाभिवृत्तिः भवति।

कर्त्तव्यनिष्ठता – निरन्तर परिसरेषु कक्षासु अवलोकनं नियतरूपेण करोतिति आवश्यकम्।

विश्वसनीयता – स्वकार्यं सहयोगिनां कार्यं प्रति विश्वासं भजते।

निरन्तरावलोकनम् – अन्यजनानामावश्यकतानां सतर्कता पूर्वकमवलोकनमपि अभिज्ञानम् येन व्यवसायं प्रति समर्पणं न्यायं च भवेत्।

2. नैतिकता

अध्यापकाः शिक्षायाः मूल्यं बौद्धिक नैतिक मूल्यं च जानन्ति। यत्र गोपनीयता, निष्पक्षता, न्यायप्रियता (ईमानदारी) विश्वसनीयता अखण्डता सदृश नैतिक बौद्धिक व्यावसायिकगुणां कृते मानका विद्यन्ते। गोपनीयता संस्थायाः गोपनीयं तथ्यं गोपनीयं भवेयुः इति कर्त्तव्यम्। सम्मानं प्रणाल्यां युज्यमाणां सदस्यानां प्रति। निष्पक्षता–ईमानदारी–स्पष्टवादिता इत्यादि मूल्यानामवधारणां धारणं तदभिव्यक्तिश्च व्यवहारे भवेयुः।

3. व्यावसायिकविकास

व्यासयिकनीतिशास्त्रानुसारेण अध्यापकानां दैनिक कर्त्तव्यातिरिक्त–शैक्षिक गैर शैक्षिक कार्यक्रमेषु सदा–सर्वदा सनद्धा भवते इति कर्त्तव्यम्। यथा–प्रशासनिक, सहगामी, विद्यालयीय, सामाजिक–सामुदायिक कर्तव्यानामनुपालनमपि आवश्यकम्। अध्यापकाः निरन्तरअधिगमशीलाः भवन्ति। प्रतिपलं शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाया उन्नयने प्रयत्नरताः शिक्षकाः समुदायस्य गृहस्य संसाधनस्य सर्वाधिकम् उपयोगं कुर्वन्ति। सदैव अध्ययनकुर्वन्ति, संगोष्ठेः कार्यशालायाम्, सम्मेलनेषु भागं गृह्यमोबि स्वाभिमतं स्थापयन्ति च।

4. सकारात्मकसम्बन्धः

व्यावसायिक नीतिशास्त्रम् व्यावसायिक जीवने व्यक्तयोरमध्ये सकारात्मक सम्बन्धस्य समर्थनं करोति। संकायेन सह, छात्रैः, आभिावकैः, सहकमिणा–प्रशासकेन सामुदायिक सदस्यै इत्यादिभिः सकारात्मक सम्बन्धः

भवेयुः। सांस्कृतिकविविधता, व्यक्तिगतभिन्नतायाः प्रोत्साहनम्। पूर्वाग्रहस्य अनुचित भेदभावनायाः परित्यागः अनिवार्यरूपेन भवते।

5. व्यावसायिकज्ञानं कर्त्तव्य निष्पादनञ्च

सक्षम अध्यापकः व्यवसायनिष्ठ भवति, एतदर्थं स्वव्यवसायस्य नियमानां, नीतिनां, विधिनाम, आवश्यकतायाः प्रक्रियायाः कर्तव्याणां विषये सम्यक्तया जानन्ति। योजना-समय-संसाधनानां प्रबन्धेषु स्वनिर्णयमभिमतं च दातव्यय्। व्यावसायिक ज्ञानं कर्त्तव्यनिष्पादने यथा संसाधनामुपयोगः, समयस्योपयोगः, प्रबन्धनकार्येषु सहाय्यं भवति। निर्णयक्षमतायाः विकासो तेनैव भवति।

व्यावसायिक (शैक्षिक) नीतिशास्त्रम् अध्यापकेषु कर्तव्यंभावना, ज्ञान-अभिज्ञान-अभिग्राह्यक्षमता-लक्ष्यनिर्माणक्षमता-अभिव्यक्ति-सम्प्रेषणक्षयता, समायोजनक्षमताणां विकासः कायरति। अध्यापकः प्रत्येकं छात्रम अभिज्ञाय सफलभावी नागरिक निर्मातुं प्रयत्नशीलो भवति। अध्यापका उच्चनैतिकमानकानुसारेण व्यावसायिक अभ्यासरूपी दायित्वं स्वीकुर्वन्तिः सर्वकारेण समये-समये शिक्षाव्यवसायीणां कृते नूतनान्वेषणं यथा सेवासंशोधनं, वृत्तिसंशोधनं करोति येन शिक्षण व्यवसाये जनानामाकर्षमं भवेत।

भारतीयशिक्षापरिप्रेक्ष्ये अध्यापकशिक्षा

–स्नेहलतामिश्रा

अंशकालिका प्राध्यापिका, रा.सं.संस्थान

शिक्षायाः प्रक्रिया शिक्षणत्वेनाभिधीयते, शिक्षणप्रणाल्यां यः देशः सुदृढः भवति सः देशः प्रगतिपथि अग्रेसरति। वस्तुतः शिक्षायां त्रयः बिन्दवः दृश्यते। यथा–शिक्षकः, छात्रः पाठ्यक्रमः च एतेषु त्रयेषु संबन्धस्थापने शिक्षणस्य प्रमुखस्थानं वर्त्तते। There are three focal points, Teacher, Student and Curriculum, teaching is the first place which established realationship between this three. क्रमेऽस्मिन शिक्षणव्यवस्थायाम् अध्यापकशिक्षायाः स्थानमतीव गुरुत्वपूर्णं वर्तते। प्रगतिशीलसमाजस्य निर्माणाय अध्यापकशिक्षा ईदानीन्तनसमाजे अतीवावश्यकी, परन्तु एषा शिक्षा न तु अधुना आविष्कृता अपितु अस्याः विकासः बहुपूर्वमेव जातः। अतः अध्यापकशिक्षायाः ऐतिहासिकपक्षमपि आलोच्यते।

भारते अध्यापकशिक्षाव्यवस्थायाः जन्मः शिक्षया सहैव 2500 शताब्द्याः पूर्वमभवतः अस्येतिहासः मुख्यतया पञ्चधा विभक्तुं शक्यते। यथा–

1. प्राचीनकालः – 2500 ईशापूर्वतः 500 ईशापूर्वं यावत्
2. बौद्धकालः – 500 ईशापूर्वतः 1200 ईशापर्यन्तम्
3. मुस्लिमकालः – 1200 तः 1700 ईशापर्यन्तम्
4. ब्रिटिशकालः – 1700 तः 1947 पर्यन्तम्
5. स्वतन्त्रभारतः – 1947 तः अद्यावधि ...

1. प्राचीनकालः वैदिककालः वा (Ancient Period or Vedic Period)–प्रारम्भिककाले वैदिककाले वा शिक्षणप्रक्रिया अद्यतनीयशिक्षण

व्यवस्थायाः बहुभिन्नाऽसीत्। समयेऽस्मिन् शिक्षाव्यवस्था वेदाश्रिताः आसीत्। परन्तु वेदोऽपि सर्वोषामधिकारे नासीत्। चतुर्वर्णेषु केवलं ब्राह्मणाः वेदविद्याध्ययनं कुर्वन्ति स्म। अतः तदानीन्तनसमाजे ब्राह्मणानां कृते ज्ञानार्जनं यावत् महत्त्वपूर्णमासीत्। उत्तमसमाजस्य निर्माणं ब्राह्मणानां मुख्यकर्त्तव्यमासीत्। ब्राह्मणानां कृते ज्ञानार्जनं यावत् महत्त्वपूर्णमासीत् तावत् ज्ञानप्रदानञ्च। तदानीन्तनशिक्षाप्रणाल्यां शिक्षकः प्रधानासीत् छात्रः तु गौणः। अतः शिक्षा मुख्यतः द्विमुखीप्रक्रिया आसीदिति वक्तुं शक्यते।

वैदिककाले शिक्षा वर्णव्यवस्थाया उपरि आधारितासीत्। प्रत्येकं वर्णः स्वव्यवसाये समर्पितासीत्। ब्राह्मणस्य जीविकोपार्जनस्य मुख्योपायः शिक्षाप्रदानं भवति स्म। प्रशिक्षणप्रदानार्थं काऽपि औपचारिकसंस्था नासीत। छात्राः स्वाभिभावकैः गुरुभिः च प्रशिक्षिताः भवन्ति स्म। शिक्षकेन स्वपरिवारात् एव शिक्षणकला गृहीतमासीत्। अतः आनुवंशिकप्रक्रियारूपेण एषा परिचिता। वंशानुक्रमेण एषा शिक्षणप्रक्रिया एकात् अन्यं प्रति गच्छति च लसति स्म। प्राचीनकाले शिक्षणस्य प्रविधयः सरलाः आसन्। उच्चशिक्षाप्राप्त्यर्थं छात्रः शिक्षकमुपरि आश्रितासीत्। छात्राध्यापकेषु संबंधः उत्तमासीत्।

2. बौद्धकालः (Buddhist Period)–2500 ई. पूर्वतः 500 ईशा पूर्वं यावत् बौद्धकालः परिगण्यते। समयेऽस्मिन् अध्यापकशिक्षायाः महत्त्वं किञ्चित् भिन्नमासीत्। ब्राह्मणमतिरिच्य अन्ये वर्णाः अपि शिक्षां गृह्णान्ति स्म कस्यापि वर्णस्य व्यक्तिः प्रशिक्षितः भूत्वा अध्यापकः भवितुमर्हति स्म। अनेन क्रमेण औपचारिक–अध्यापकप्रशिक्षणव्यवस्था प्रारम्भिताः अपि च शिक्षणव्यवसायः विकसिताः अध्यापकेभ्यः प्रशिक्षणव्यवस्था निर्मिताः प्रशिक्षणप्राप्तकर्तारः बौद्धभिक्षवः आसन्। बौद्धधर्मप्रचाराय कार्यं कृतम्। एषा शिक्षा बौद्धधर्मशिक्षायाः प्रचाराय प्रसाराय च शिक्षकेभ्यः प्रशिक्षितकरणाय आसीत् न तु विद्यालयीयशिक्षकेभ्यः अध्यापकस्तरस्य योग्यतानयनाय। भिक्षवः नैतिकता, आचरणं कुर्वन्ति स्म। अपि च अनुशासनस्य प्रशिक्षणं प्राप्नुवन्ति स्म। ते भिक्षवः न तु केवलं सैद्धान्तिकरूपेण एतेषां पालनं कुर्वन्ति स्म अपितु दीनचर्यायां जीवनचर्यायां वा तेषां प्रयोगः कुर्वन्ति स्म। अध्यापकव्यवसाय स्वीकरणाय ते योग्यताप्रमाणपत्रं प्राप्नुवन्ति स्म। बौद्धकालीनप्रशिक्षणविधिः विशिष्टव्यवस्था उपरि आधारितासीत्।

यः कक्षानायकीयपद्धति (Monitorial System) रूपेण प्रचलितासीत्।

3. मुस्लिमकालः (Muslim Period)–समयेऽस्मिन् अध्यापकशिक्षा औपचारिकतया नासीत्। शिक्षा जनकार्यरूपेण प्रचलितासीत्। शैक्षिकसंस्थाः 'मदरसा' रूपेण आसन्। तत्र 'मौलवी' अध्यापकरूपेण कार्यं करोति स्म। कतिपयेषु प्रगतिशीलारबीविद्यालयेषु अधिकोच्चतर-पाठ्यक्रमस्य शिक्षाव्यवस्थासीत्। कस्यापि पदस्य नियुक्तये कस्यापि व्यावसायिकप्रशिक्षणस्य आवश्यकता नासीत्। औषधि-साहित्य-कला-सङ्गीतादयः विद्वतापूर्ण-व्यवसायरूपेण स्थापिताः आसन्। परन्तु एतेषां व्यवसायानां नियमितप्रशिक्षणाय संस्थाः नासन्।

4. ब्रिटिशकाल : (British Period)–ब्रिटिशकालीनप्रगतिशील शैक्षिकव्यवस्था इंग्लैण्डदेशस्य शैक्षिकव्यवस्थनुसारं स्थापितासीत। भारतीयछात्रेभ्यः ब्रिटिशानुरूपं शिक्षाप्रदानं तेषामुख्यमुद्देश्यमासीत्। भारते अध्यापकशिक्षायाः औपचारिकव्यवस्थायः कृते सर्वप्रथम् डेनमार्कमिशनरेभिः पश्चिमबंगालस्य श्रीरामपुरे एकप्रशिक्षणकेन्द्रस्य स्थापनं जातम्। अध्यापकप्रशिक्षणक्षेत्रे एषः प्रथम् प्रयास आसीत्। समयाभ्यन्तरे मद्रास-मुम्बई-कलकत्तादिषु क्षेत्रेषु नॉर्मलविद्यालयानां स्थापनमभवत् क्रमशः पुना-सुरत-आगरा-वाराणसी-मेरठादिषु क्षेत्रेषु प्रशिक्षणविद्यालयानां स्थापना जाता। 1824 तमे वर्षे एतासां संस्थानां संख्यावृद्धिः षड्विंशतिपर्यन्तं प्राप्ता।

सर्वोपरि वक्तुं शक्यते यत् अध्यापकशिक्षायाः प्रारम्भः विकासः च निम्नाङ्कितचरणेषु जातः।

1. सर्वप्रथमं मुम्बई नगरे 'देशीशिक्षापरिषदा' (National Education Society) चतुर्विंशति (24) अध्यापकाः प्रशिक्षिताः अभवन्।
2. 1818 तमे वर्षे स्थापितया कलकत्ताविद्यालयपरिषदा अग्रशिष्यप्रणाले (Monitorial System) उपरि आधारिताः शिक्षकप्रशिक्षणविद्यालयाः स्थापिताः।

:

3. 1824 वर्षे वुडघोषणापत्र (Wood's Dispatch) द्वारा इंग्लैण्डसदृशं

भारतस्य प्रत्येकस्मिन् प्रान्ते एकैकस्य प्रशिक्षणविद्यालयस्य निर्माणस्य संस्तुतिः जाताः। परन्तु तान् क्रियान्वितं न कृतम्। 1859 तमे वर्षे लार्डस्टेनलेघोषणापत्रेण (Stanley's Dispatch) प्रत्येकस्मिन् प्रान्ते 1882 वर्षं यावत् अनेकप्रशिक्षणविद्यालयाः स्थापिताः।

4. 1862 तमे वर्षे देशीपाठशालानां शिक्षकप्रशिक्षणाय नार्मलस्कूलप्रणाल्याः (Normal School System) सूत्रपात अभवत्। 1874 तमे वर्षे बंगालस्य गवर्नर कैम्पबैल (Campbell) महोदयस्य आदेशेन नार्मलस्कूल प्रारम्भीकृताः।

5. 1882 वर्षस्य भारतीयशिक्षायोगस्य हण्टरायोगस्य वा संस्तुतेः फलस्वरूपं 1900 पर्यन्तं देशे माध्यमिकविद्यालयानां शिक्षकानां प्रशिक्षणहेतोः षट्प्रशिक्षणविद्यालयाः स्थापिताः। 1881-82 तमे वर्षे भारते 106 नार्मलविद्यालयाः उद्घाटिताः। अस्मिन् 38886 छात्राध्यापकेभ्यः प्रशिक्षणं प्रदत्तः।

6. 1904 तमे वर्षे लार्डकर्जन द्वारा प्रकाशितशिक्षानीतिसंबंधी सर्वकारीयप्रस्तावे अध्यापकशिक्षायाः संख्यात्मकगुणात्मकाभिवृद्धेः च परामर्शाः प्रस्तुताः आसन्।

7. 1917 तमे वर्षे कलकत्ताविश्वविद्यालययायोगद्वारा अध्यापक शिक्षाहेतोः महत्त्वपूर्णपरामर्शाः प्रदत्ताः।

8. 1929 तमे वर्षे हर्टांगसमिति (Hartog Committee) द्वारा प्राथमिकविद्यालयानां शिक्षकानां प्रशिक्षणाय गुणात्मकपरामर्शाः प्रदत्ताः।

स्वतन्त्रभारते (1947 .....) अध्यापकशिक्षा

विश्वविद्यालयशिक्षायोगः (1948-49)

1. प्रशिक्षणसंस्थानां पाठ्यचर्यायां परिवर्तनं भवेत्। सैद्धान्तिकापेक्षया व्यावहारिकपक्षस्य प्राधान्यं स्यात्।

2. शिक्षणाभ्यासाय समुचितविद्यालयानां निर्धारणम्।
3. छात्राध्यापकानां मूल्याङ्कने तेषामध्यापनंसफलताविषये गुरुत्वप्रदानम्।
4. पाठ्यक्रमः प्रभावपूर्णः परिवेशानुकूलश्च भवेत्। पुनश्च पाठ्यक्रमे नमनीयता स्यात्।
5. प्रशिक्षणमहाविद्यालयेषु विशिष्टानुभवशिक्षकानामेव नियुक्तिः करणीया।
6. प्राध्यापकैः कृतानि कार्याणि राष्ट्रीयस्तरे नियोजयितव्यानि।

मुदालियर माध्यमिकशिक्षायोगः (1952-53)

1. प्रशिक्षणविद्यालयाः द्विप्रकारकाः स्युः। माध्यमिकशिक्षां प्राप्तवतां प्रशिक्षणविधिः द्विवर्षात्मकः। स्नातकानां च प्रशिक्षणावधिः एकवर्षात्मकः भवेत्।
2. छात्राध्यापकेभ्यः प्रशिक्षणकाले छात्रवृत्तिः अवश्यमेव देया।
3. एकाधिकपाठ्यविषयेषु छात्राध्यापकेभ्यः प्रशिक्षणं देयम्।
4. महिलाशिक्षिकानामभावदूरीकरणाय अंशकालिकप्रशिक्षणपाठ्यक्रमाणां व्यवस्था (Short Term Courses) कार्या। यस्या प्रथमागोष्ठी उस्मानियाविश्वविद्यालये 1959 तमे वर्षे अभवत्।
5. प्रशिक्षणमहाविद्यालयेषु अप्रशिक्षिताध्यापकेभ्यः अनुसंधानकार्यं भवेत्।
6. शिक्षाचार्यस्य कृते न्यूनातिन्यूनं वर्षत्रयस्य अनुभवस्यावश्यकता भवति।
7. प्रत्येकं प्रशिक्षणसंस्थासु आवासस्य सौविध्यं भवेत्। येन प्रशिक्षणार्थीनां सामूहिकजीवने बाधा नागच्छेत्।
8. बहूद्देश्यीयोच्चतरविद्यालयेषु शिक्षकप्रशिक्षणाय क्षेत्रियशिक्षक महाविद्यालयानां निर्माणं भवेत्। यथा-अस्य फलस्वरूपं 1962-63

वर्षे एते क्षेत्रियमहाविद्यालयाः भोपाल-अजमेर-मैसूर-भुवनेश्वराशिलांगेदिषु क्षेत्रेषु उद्घाटिताः।

शिक्षाऽऽयोगः (1964-66)

1. प्रत्येकस्मिन् राज्ये Comprehensive महाविद्यालयानां स्थापनमावश्यकं यत्र शिक्षायां विभिन्नस्तरस्याध्याकेभ्यः प्रशिक्षणसौविध्यं कल्पितं भवति।

2. प्रत्येकस्यां प्रशिक्षणसंस्थायां प्रसारसेवाविभागः (Extension service) स्थापनीयः।

3. प्रत्येकस्मिन् राज्ये राज्याध्यापकशिक्षामण्डली (State Borad of Teacher Education) SBTE स्थापनीया।

4. प्रशिक्षणविद्यालयानां पाठ्यक्रमे काले काले परिवर्तनमावश्यकम्।

5. छात्राध्यापकेभ्यः निःशुल्कशिक्षा प्रदेया।

6. छात्रवृत्तेः अध्यापनऋणस्य च व्यवस्था कार्या।

अधुनातनसमाजे अध्यापकशिक्षायाः स्वरूपं एवं भवेत्-

1. **नैतिकशिक्षा**–अध्यापकशिक्षापाठ्यक्रमे नैतिकशिक्षायाः स्थानमवश्यमेव भवेत्। किमर्थमित्युक्ते अधुनातनसमाजे अध्यापकेषु नैतिकताया अभाव बहुलतया परिदृश्यते। अध्यापकाः बहुषु अनैतिककर्मषु संपृक्ताः भवन्ति। अतः यदि तैः छात्रस्तरादेव नैतिकज्ञानं प्राप्यते तर्हि अग्रे अध्यापकः भूत्वा कदापि ते अकर्मणि प्रवृत्ताः न स्युः। यतः **छात्राणां कृते अध्यापकः मुख्यादर्श (Main Rolemodel) भवति, परन्तु तस्मात् पूर्वं शिक्षकः स्वयं स्वस्य आदर्शः भवेत्।**

2. **मानवाधिकारशिक्षा**–मानवं मानववत् जीवितुं शिक्षा प्रददाति मानाधिकारशिक्षा। मानवाधिकारः न तु केवलम् अधिकारविषये शिक्षां ददाति अपितु कर्त्तव्यविषये जागृतिः आनयति तथा इतरजनानाम् अधिकाराणां हननं न भविष्यति। अध्यापकेषु सुव्यवहारः अपेक्षितः।

अतः प्रशिक्षणविभागे मानवाधिकारशिक्षायाः सन्निवेशः भवेत्। येन अध्यापकः स्वाधिकारविषये कर्त्तव्यविषये च जागरूकः भवेत्।

3. **मूल्यशिक्षा**–प्रशिक्षणार्थीभ्यः मूल्यशिक्षा अपि दातव्या। येन सः अधुनातनसमाजे शिक्षायाः मूल्यं ज्ञातुं तथा अध्यापकस्य वास्तविकमूल्यं परिशीलयितुं समर्थः भवति।

4. **अध्यापकशिक्षा अनिवार्यरूपेण भवेत् प्रशिक्षणविभागे**– अध्यापकशिक्षा प्रशिक्षणविभागे ऐच्छिकरूपेण वर्तते। परन्तु एषा शिक्षा अनिवार्यशिक्षारूपेण प्रदेया। येन सर्वेभ्यः प्रशिक्षणार्थीभ्यः जीवने अध्यापकशिक्षायाः प्रभावः पतिष्यति।

5. **प्रशिक्षणविभागमतिरिच्य अन्यविभागेषु अपि अध्यापकशिक्षा भवेत्**–यतः अध्यापकस्य स्थानं सर्वत्र वर्तते। शास्त्रादिभ्यः क्षेत्रेभ्य आरभ्य डॉक्टर-इंजीनियरक्षेत्रं यावदपि अध्यापकशिक्षा प्रदातव्या। अनेन तेषु अध्यापकस्य सुप्रवृत्तिः विकसिता भवति।

6. **प्रशिक्षणार्थीनां प्रवेशचयनं सम्यक् भवते्**–प्रशिक्षणार्थीनां प्रवेशपरीक्षात्रुटिमुक्ता भवेत् अपि च प्रवेशः गुणवत्ताधारेण भवेत्। येन प्रशिक्षणार्थिषु अध्यापकत्वं विराजितुं शक्यते।

7. **अध्यापकेभ्यः अनुसन्धासंबंधी कार्यशाला**–ईदानीन्तनशिक्षा-प्रणाल्यां प्रशिक्षणार्थिनां कृते कार्यशाला आयोज्यते। परन्तु कदाचित् परामर्शकाणां कृते अपि कार्यशाला आयोजयित्व्या। यद्वारा कथं शोधः करणीयः पुनः शोधस्य संक्षिप्तिकाविषये विविधतथ्यानां ज्ञानञ्च परामर्शकस्य कृते सुलभः भविष्यति।

8. **महिलाशिक्षा**–अध्यापकशिक्षायामन्तर्गतं महिलाशिक्षा भवेत्। अर्थात् महिलाशिक्षा न तु केवलं महिलानां कृते अपितु पुरुषेभ्यः प्रदातव्या। अनेन पुरुषप्रधानसमाजे महिलानां स्थानमध्यापिकात्वेन सशक्ता भविष्यतीति मे विश्वासः।

बदलते परिदृश्य में शिक्षानुसंधान के नूतन आयाम : आवश्यकता, संदर्भ एवं सुझाव

–प्रो. गोपीनाथ शर्मा, डॉ. प्रतिष्ठा
पूर्व संकाय प्रमुख, राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

"उत्तम अध्यापकों की शिक्षा व्यावसायिक प्रशिक्षण की तुलना में बहुत कुछ रोचक, अधिक व्यापक और अधिक चुनौतीपूर्ण है, बल्कि इससे भी कहीं अधिक है।"[1] जैक्स

भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने शिक्षक के गुणात्मक विकास के लिए शिक्षकों की व्यावसायिक शिक्षा के एक निर्दोष ठोस, कार्यक्रम की संस्तुति की है। यदि स्वतंत्रोत्तर काल में शिक्षक शिक्षा की समीक्षा करें तो शिक्षक प्रशिक्षण देने तथा प्रशिक्षण की गुणवत्ता को प्रशिक्षण विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की मात्र संख्या वृद्धि से ही आँका जा सकता है। गुणात्मक शिक्षक शिक्षा के प्रमुख मुद्दे प्रशिक्षणार्थियों के चयन मानकों, शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के स्तर एवं कार्यक्रमों, शिक्षक शिक्षा के उद्दश्यों, पाठ्यचर्चा, शिक्षणाभ्यास सामग्री की उपलब्धता व उपयुक्तता, मूल्यांकन पद्धति, शिक्षकों में मूल्य एवं नैतिकता विकास, अन्तः प्रशिक्षुता एवं विभिन्न प्रकार के शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम हैं।

शिक्षक शिक्षा/प्रशिक्षण एक व्यावसायिक पाठ्यक्रम है। व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रशिक्षणार्थी व्यावसायिक तैयारी का सघन अभ्यास करते हैं तभी व्यवसाय का उच्च स्तर स्थापित किया जा सकता हैं। तुलनात्मक रूप से शिक्षा में इसकी कमी अनुभव की जा रही है। शिक्षण व्यवसाय की जितनी कटु आलोचना आज होती है। वैसी पहले कभी नही सुनी गयी। साधारणतया आज के शिक्षकों की आलोचना इसलिए होती है कि

1. द एजूयूकेशन ऑफ गुड मैन, प. 159

वे भारत के प्राचीन शिक्षकों के मानकों का अनुसरण नहीं करते हैं। उस समय शिक्षक प्रतिलाभ की कामना किए बिना समर्पण की भावना से शिक्षण करता था। वर्तमान शिक्षक-शिक्षा की आलोचना के और भी अनेक कारण हैं। अतः इस संदर्भ में आवश्यक सुधार तथा क्रियान्विति की जरूरत है। इस चुनौति को स्वीकार करने के लिए बदलते परिदृश्य में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम को अधिक प्रभावी बनाने वाले अनुसंधानों की आवश्यकता है।

यद्यपि आज के युग को ज्ञान के युग या ज्ञान के विस्फोट का युग माना जा रहा है परन्तु यह ज्ञान गुणात्मक रूप से प्रभावी व उपयोगी है, एतदर्थ अनुसंधान किए जाने चाहिए। अनुसंधान तर्क एवं प्रयोगाश्रित होते हैं। यह तर्क अथवा प्रयोग निगमनपरक हो सकता है अथवा आगमनात्मक। दार्शनिक हो सकता हैं अथवा वैज्ञानिक। अनुभव जन्य हो सकता है अथवा चिन्तनात्मक।

शोध किसलिए? किसी संदर्भ के विभिन्न कारकों के मध्य सम्बन्ध, आवश्यकता, सम्यक उपयोग, उपयोगिता, समस्याओं का निदान व उपचार, निष्कर्ष निष्पादन अथवा सैद्धान्तिक अनुस्थापन के लिए शोध किए जाते हैं। "शोध का मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक विधियों द्वारा प्रश्नों का उत्तर अथवा विशिष्ट समस्याओं का समाधान प्राप्त करना है[2]।" सन् 1947 से लेकर आज तक सम्पन्न शोध अध्ययनों की सम्पन्नता का कारण प्रमुखतः शोधार्थियों के साथ शोध उपाधि जुड़ जाने अथवा उच्च शिक्षा में शिक्षक बनने की शर्त को पूरा करने अथवा पुस्तकालयी समृद्धि के लिए किया जाना प्रतीत होता है। राष्ट्रीय स्तर पर बनाए गए शिक्षा आयोगों तथा शिक्षा नीतियों की क्रियान्विति ही जब ईमानदारी से नहीं हो पायी, तब इन शोध अध्ययनों का इतना उद्देश्य पूरा हो जाना भी शायद पर्याप्त है।

शोध के लिए पारम्परिक विषयों का चयन आम बात है। अनेक शोधों में पुनरावृत्ति पायी जाती हैं। दो-तीन चरों को लेकर उनका

2. पारस नाथराय (2008) : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 20

पारम्परिक सम्बन्ध जाँचा जाना या तुलना करना भी बहु प्रचलन में है। ऐतिहासिक–दार्शनिक शोधों में भी निकाले जा रहे निष्कर्ष शिक्षा में स्तरोन्नयन के लिए कोई ठोस मार्गदर्शन नहीं करते हैं। प्राक्कल्पनाओं के सत्यापन करने या उसके सार्थक–असार्थक सत्यापित होने से भी कोई अभिप्राय नहीं निकलता है। मौलिक समस्याओं की खोज, निदान, उनका समाधान तथा समाधान के लिए किए प्रयासों के प्रभावों पर प्रायः शोध का अभाव है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि शिक्षा के स्तर सुधार के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की गुणवत्ता स्थापित की जानी चाहिए। अतः शिक्षक प्रशिक्षण के गुणात्मक सुधार के लिए नए सिरे से विचार कर शोध के नए आयामों पर ध्यान देना अपेक्षित है। आगामी अर्द्धशताब्दी के लिए शिक्षक प्रशिक्षण की गुणात्मकता स्थापन हेतु बनायी जाने वाली कार्य योजना में अनुसंधान के नए सदंर्भो पर चुनौती पूर्ण कतिपय नए आयाम प्रस्तावित हैं:–

(i) भूमण्डलीकरण एवं अध्यापक शिक्षा।

(ii) विविध उद्योग एवं अध्यापक शिक्षा।

(iii) तंत्र व्यवसाय तथा सामूहिक उपागम।

(iv) भविष्योन्मुखी अध्यापक शिक्षा।

(v) ई–अधिगम एवं अध्यापक शिक्षा।

(vi) शैक्षिक स्वायत्तता।

(vii) शिक्षा का निजीकरण ।

(viii) शिक्षा का औद्योगीकरण।

(ix) विश्वविद्यालयों की शिक्षावृद्धि की सार्थकता।

(x) शैक्षिक अनुदान।

(xi) विविध स्तरों पर पाठ्यचर्या आकल्प।

(xii) शैक्षिक संस्थानों के भवन।

(xiii) शिक्षा में सम–सत्र प्रणाली।

(xiv) शिक्षा आयोगों व शिक्षा नीतियों का योगदान।

(xv) अनुसंधानों का उपाधि एवं उपयोगिता की दृष्टि से मूल्यांकन।

(i) भूमण्डलीकरण एवं अध्यापक शिक्षाः-

अन्तरराष्ट्रिय स्तर पर सम्बन्ध स्थापित करने तथा एक दूसरे देश को सद्य उपयोगी लाभ प्रदान किए जाने की दृष्टि से इस संदर्भ पर विचार किया जाना चाहिए। माँग और आपूर्ति के इस युग में जब अभियांत्रिकी, प्रबन्धन तथा चिकित्सा क्षेत्र में आज विशेषज्ञों का एक दूसरे देश मे आना–जाना व कार्य करना होता है। अध्यापकों का भी भारत से अन्य देशों मे जाना होता है। देखा यह गया है कि भारतीय अध्यापक विदेशों में प्रायः कम ही जाते हैं। एन.सी.ई.आर.टी. या यू.जी. सी. योजनान्तर्गत जो आना–जाना होता है उसमें, दूसरे देशों से शिक्षा के प्रभावी संदर्भो का ही आयात होता हो, यह जरूरी नहीं। यो समसत्र प्रणाली, सूक्ष्म शिक्षण, खुली पुस्तिका मूल्यांकन प्रणाली, ब्लूम के अनुदेश आदि आयातित हैं, किन्तु भारतीय परिस्थितियों में ये सर्वथा उपयोगी व प्रासंगिक हैं, इन पर प्रभावी अनुसंधानों की आवश्यकता है।

(ii) विविध उद्योग एवं अध्यापक शिक्षाः-

आज किसी देश को अकेला कहना समीचीन नहीं है। अब विश्व एक गाँव का रूप ले चुका है। एक देश के हित दूसरे देश के हित से जुड़ गए हैं। विश्व में होने वाला उत्थान पतन अन्यत्र भी प्रभाव डालता है। अन्य देशों तथा भारत में सुस्थापित उद्योगों से होने वाले विकास का लाभ सभी को मिल रहा है। तब शिक्षा को विविध व्यावसायिक व औद्योगिक संस्थानों से जोड़ा जाना अपेक्षित है। उद्योग, संस्थान व उनके मालिक अपनी आवश्यकताएँ शिक्षा क्षेत्र को बताए। शिक्षा में धन की कमी है। अतः उद्योग संस्थान शिक्षा में अपने विषयों के लिए प्रयोग व अनुंसधान में सहयोग करें। शिक्षा में अनुसंधानों के क्रम में विकास की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि शिक्षा केवल मानसिक विकास ही

न करे, शारीरिक श्रम के प्रति भी आस्था उत्पन्न करे। न्यूसम रिपोर्ट 1963 के अनुसार शैक्षिक पाठ्यक्रम को विभिन्न उद्योग पर आधारित कर कार्य तथा अवकाश के सदुपयोग से जोड़ा जाना चाहिए। 'एज्यूकेशन इन स्कूल' सम्बन्धी ग्रीन प्रपत्र में उल्लेख किया गया है कि शिक्षा संसार (एज्यूकेशन वर्ल्ड) तथा व्यवसाय संसार (कैरियर वर्ल्ड) के मध्य रिक्तता आ गयी है। उन्हें इस बारे में कम पढ़ाया जाता है। अतः शिक्षा एवं उद्योग जगत में पारस्परिक संवाद व अनुसंधान की जरूरत है।

(iii) तंत्र व्यवस्था तथा सामूहिक उपागमः-

तंत्र व्यवस्था तथा सामूहिक उपागम (नेट वर्क एण्ड कलस्टर एप्रोच) आज एक प्रभावशाली व्यवस्था बन गयी है। जब तंत्र व्यवस्था से संसार के किसी भी स्थान से तत्काल सम्पर्क सम्भव है तब शैक्षिक अनुसंधानों में भी इसका प्रयोग होना चाहिए। इससे न केवल सम्पर्क ही बनेगें, वरन् अनुसंधानों का स्तर सुधरेगा, प्रयोग के अवसर बढ़ेगे तथा शिक्षा अनुसंधान की कठिनाइयाँ दूर होकर भावी विद्यार्थियों को अधिक लाभ मिल सकेगा। इस पर अनुसंधान सम्भाव्य हैं।

(iv) भविष्योन्मुखी अध्यापक शिक्षाः-

आज इस संदर्भ पर गम्भीरता से विचार की आवश्यकता है कि हम आज से 30-40 वर्ष बाद भारत का क्या स्वरूप देखना चाहते हैं? उस समय भारत का स्वरूप कैसा होगा? आवश्यकताएँ एवं समसयाएँ क्या होंगी? इन सब सदंर्भो के लिए आज किस प्रकार के शिक्षक बनाए जाने चाहिए? जनसंख्या के हिसाब से विद्यालय और महाविद्यालयों की उपलब्धता, प्रवेश के नूतन आयाम, शिक्षण की नई विधियाँ शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों में बदलाव व मूल्यांकन के बदलते संदर्भ भविष्य की शिक्षा से जुड़े हैं। क्या लघु/अल्प कालिक पाठ्यक्रम विकसिक होंगे आदि भविष्योन्मुखी शिक्षा के अनुसंधान विषय हैं।

(v) ई-अधिगम एवं अध्यापक शिक्षाः-

वैश्वीकरण के इस युग में ज्ञान की असीम मात्रा में से कुछ

सीखना -सिखाना शिक्षा का एक नया क्षेत्र हैं। इण्टरनेट और वैब पर ज्ञान उपलब्ध है। और उसे कैसे सीखा जाए, यह शोध का विषय है।

(vi) शैक्षिक स्वायत्तता:-

एक धर्मनिरपेक्ष देश में शिक्षा में स्वायत्तता का विचार अग्रगामी सोच का परिणाम है। राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर शिक्षा का एक सा रूप सदैव प्रभावी रहता है, कहना शायद उचित नहीं है। देश में अनेक अच्छे स्वायत्त संस्थान हैं जिनकी उपलब्धि प्रशंसनीय है। इन संस्थानों में पाठ्यक्रम निर्माण से लेकर प्रमाण-पत्र या उपाधि प्रदान किए जाने तक की प्रक्रिया में स्वायत्तता है।/पाठ्यचर्या समसामयिक, उपयोगी व भविष्योन्मुखी हैं। आवश्यकतानुसार कभी भी परिवर्तन/परिवर्द्धन की स्वतंत्रता रहती है। ऐसे स्वायत्तशासी शिक्षण संस्थानों का विशिष्ट योगदान है। इंजीनियरिंग मे आई.आई.टी., प्रबन्धन में अहमदाबाद व पूना के संस्थान, बिट्स पिलानी, सामान्य शिक्षा में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली व शान्ति निकेतन आदि की उपलब्धियाँ प्रशंसनीय हैं। ये संस्थान विशिष्ट क्यों हैं? अन्य संस्थान इनके जैसा कार्य क्यों नही कर पाते हैं आदि शोध के विषय हैं।

(vii) शिक्षा का निजीकरण:-

भारत में आज देखने में आ रहा है कि राजकीय उपक्रमों की तुलना में निजी उपक्रमों के परिणाम अधिक विश्वनीय व प्रभावी हैं। सरकारी संस्थान में बना उत्पाद निजी संस्थान में बने उत्पाद की तुलना में निम्न स्तरीय क्यों होता है? शिक्षा के क्षेत्र में निजी विद्यालयों की सुविधाएँ, शिक्षण-प्रक्रिया, विद्यार्थी संख्या तथा परीक्षा परिणाम सरकारी विद्यालयों की तुलना में अधिक प्रभावी हैं। सरकारी विद्यालयों के शिक्षक का वेतन अधिक है, निजी विद्यालयों के शिक्षकों का कम। किन्तु परिणाम निजी विद्यालयों के श्रेष्ठ रहते हैं। यहाँ तक कि सरकार के महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत व्यक्ति भी अपने सरंक्ष्य को निजी विद्यालयों में अध्ययन कराना चाहते हैं।

(viii) शिक्षा का औद्योगिकरणः-

शिक्षा एक उद्योग बन गया हैं। बिना पढ़ा लिखा या अल्प पढ़ा लिखा व्यक्ति भी धन व सुविधा के आधार पर महत्वपूर्ण पाठ्यक्रमों वाले विद्यालयों/महाविद्यालयों का संचालन करते देखे गये हैं। विभिन्न पाठ्यक्रमों की मान्यता कहाँ से व कैसे प्राप्त होती हैं, यह प्रक्रिया वैसे ही अपनायी जाती है जैसे किसी उद्योग संचालन में अपनायी जाती है। कम प्रयत्न-अधिक उत्पाद, कम लागत- अधिक लाभ आज की शिक्षा के उत्पाद के आधार बन गए हैं। जैसे फैक्ट्रियाँ उत्पादन करती हैं, वैसे ही महाविद्यालय उपाधिधारी तैयार कर रहे हैं। यदि फैक्टरी के उत्पाद में कमजोरी है तो वहाँ उत्पाद के मूल्य की कमी करना सिद्धान्ततः स्वीकृत है। उसी प्रकार यदि बी.टेक तथा एम.बी.ए. जैसे महत्त्वपूर्ण पाठ्यक्रमों में प्रवेश परीक्षा में मैरिट के बजाय न्यूनतम स्तर पर प्रवेश देना, वैसा ही है जैसा उद्योगों में होता है। बिना प्रवेश परीक्षा के आर्थिक सम्बल से पाठ्यक्रमों मे प्रवेश मिलना एक उद्योग की व्यवस्था की तरह है। क्या यह व्यवस्था समीचीन है? अनुसंधान आवश्यक हैं।

(ix) विश्वविद्यालयों की संख्यावृद्धि की सार्थकताः-

आज विदेशों की तर्ज पर सरकार निजी व डीम्ड विश्वविद्यालयों को मान्यता दिए चली जा रही है। तदनुरूप शिक्षक शिक्षा संस्थानों मे बेतहासा वृद्धि हो रही हैं। अकेले राजस्थान में ही लगभग 786 बी.एड शिक्षा संस्थान, 69 शिक्षाशास्त्री, 2 उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान तथा एक क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान संचालित हैं। प्राथमिक स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान भी चल रहे हैं। तीन स्तरों पर मानकों की जाँच होती हैं। एन. सी.टी.ई. के स्तर पर, राज्य सरकार के स्तर पर तथा विश्वविद्यालय स्तर पर। इस प्रकार प्राप्त मान्यता के बाद भी शिक्षक प्रशिक्षण प्रभावी न बन पाए तो अनुसंधान किया जाना अपेक्षित है। केवल राजस्थान में बी. एड. एवं शिक्षाशास्त्री महाविद्यालयों के संचालन के लिए 850 प्राचार्य तथा 6500 से अधिक योग्य शिक्षक प्रशिक्षकों की जरूरत हैं। पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री, पर्याप्त भवन, मनोविज्ञान की स्तरीय प्रयोगशालाएँ,

कम्प्यूटर प्रयोगशालाएँ, तकनीकी संसाधन तथा इन संदर्भों में प्रतिवर्ष होने वाली अभिवृद्धि अनुसंधान का विषय बनती हैं।

(x) शैक्षिक अनुदानः-

अनेक शिक्षण प्रशिक्षण संस्थनों को सरकार की विविध योजनाओं के अन्तर्गत अनुदान प्राप्त होता हैं। कतिपय संस्थान के रूप में तो कुछ यू.जी.सी. की 12वीं धारा के अन्तर्गत अनुदान प्राप्त करते हैं। कतिपय संस्थान या तो विश्वविद्यालय या सम विश्वविद्यालयों के रूप में मान्यता प्राप्त हैं। एस.सी./ एस.टी. विद्यार्थियों को पृथक अनुदान प्राप्त होता हैं। टाडा-माडा योजना के अन्तर्गत समस्त विद्यार्थियों के प्रशिक्षण का सम्पूर्ण खर्च सरकार वहन करती है। इस अनुदान प्रदान पर निगरानी समितियाँ भी हैं। क्या इन सुविधाओं का सम्यक् उपयोग तथा उच्च स्तरीय शिक्षण की व्यवस्था हो पाती है। यह सब अनुसंधान का विषय हैं।

(xi) विविध स्तरों पर पाठ्यचर्या आकल्पः-

शिक्षक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या पर होने वाले अनुसंधान या तो माध्यमिक स्तरीय विविध विषयों के पाठ्यक्रम/पाठ्यचर्या या विषयवस्तु पर आधारित होते हैं या शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या के किसी घटक पर वह भी दो विश्वविद्यालयों के संदर्भ में तुलना आधारित। एन.सी.टी.ई तथा एन.सी.ई.आर.टी. समय-समय पर पाठ्यचर्या रूपरेखा (करीक्यूलम फ्रेम वर्क) भी प्रस्तावित करते हैं। उनकी कितनी प्रासंगिकता हैं, उन्हें पाठ्यचर्या के अद्यतन करने में कैसे प्रयोग किया जाए, उनके प्रयोग के क्या लाभ होंगे? क्या ये पाठ्यचर्या प्रारूप भविष्योन्मुखी व गुणात्मक आधार पर निर्दोष हैं, आदि अनुसंधान मूलक संदर्भ हैं।

(xii) शैक्षिक संस्थानों के भवनः-

लगभग 35 वर्ष पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण की मान्यता के लिए संस्थान का निजी अभ्यास विद्यालय अनिवार्य था। अब वह शर्त हट गयी है। विगत वर्ष से पूर्व किराये के भवन में भी प्रशिक्षण संस्थान चल सकता

था। प्रश्न हैं क्या शिक्षक प्रशिक्षण के लिए उचित भवन हैं? वह मानकों के अनुरूप हैं? आवश्यक कक्ष, हॉल, पुस्तकालय कक्ष, वाचनालय, विविध प्रयोगशालाएँ, कमरों का समुचित आकार, आवश्यक सुविधाएँ प्रशिक्षण संस्थान की मुख्य मार्ग से दूरी, पहुँच के साधन तथा सज्जित सुविधाएँ कैसी हैं? भवनों का रख-रखाव कैसा हैं? हो सकता हैं भवन पर्याप्त व सज्जित हो, किन्तु उस भवन में महाविद्यालय या उच्च माध्यमिक स्तरीय कक्षाएँ भी लगती हों। इससे शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को पर्याप्त भवन पर्याप्त समय तक उपलब्ध होता है या नहीं, जैसे विषय अनुसंधान में लिए जा सकते हैं।

(xiii) शिक्षा में समसत्र प्रणालीः-

शिक्षा में मूल्यांकन हेतु ग्रेड प्रणाली पर अनेक अनुसंधान सम्पादित हुए हैं। किन्तु शिक्षक प्रशिक्षण की वार्षिक प्रणाली अधिक उपयुक्त है अथवा सम-सत्र प्रणाली? आज सम-सत्र प्रणाली अपनाए जाने पर बल है। परिवर्तन हो रहे हैं। परिवर्तन हो भी जाएँगे, किन्तु शिक्षक प्रशिक्षण में किस स्तर पर सम-सत्र प्रणाली प्रयोग की जाए, यह शिक्षण प्रशिक्षण के स्तर को किस प्रकार गुणात्मक रूप से प्रभावित करेंगी? पुराना सब कुछ व्यर्थ हैं, यह मानना औचित्य पूर्ण नहीं है। पुराने के अनुपयोगी व अप्रभावी सिद्ध करने के बाद ही नए को अपनाना बुद्धिमत्ता है।

(xiv) शिक्षा आयोगों व शिक्षा नीतियों का योगदानः-

आंग्ल काल से लेकर आज तक भारतीय शिक्षा के सुधार, समस्याओं के जानने, उनके समाधान तथा गुणात्मक विकास के लिए अनेकानेक शिक्षा नीतियाँ तथा शिक्षा आयोग बनाए गए। उन आयोगों तथा नीतियों ने संस्तुतियाँ की, किन्तु इनका क्रियान्वयन प्रभावी नहीं हो सका। यह कहना तो समीचीन नहीं है कि इन आयोगों तथा नीतियों का कोई लाभ नहीं मिला, किन्तु यह सही है कि जितने व्यापक प्रचार से ये नीतियाँ बनी जनता का धन व्यय हुआ उतना लाभ नहीं मिला। क्या नीति निर्माण में कमी रही क्या संस्तुतियाँ व सुझाव अनावश्यक रहे, क्या लागू करनें में इच्छा शक्ति की कमी रही या सरकारी रवैया इस सबके

लिए उत्तरदायी है? सन् 1968-69 व 1978-79 की शिक्षा नीतियाँ केवल अभिलेख बन कर रह गयीं। कतिपय संस्तुतियों के लागू होने के अलावा अधिकांश शिक्षा आयोग केवल दस्तावेज बनकर रह गए अथवा पुस्तकालयों की श्रीवृद्धि में सहायक बने यह सब अनुसंधान का विषय है।

(xv) सम्पन्न अनुसंधानों का मूल्यांकन:-

स्वतंत्रता के बाद के शिक्षक प्रशिक्षण/शिक्षक शिक्षा स्तर के सम्पादित अनुसंधानों के सार के प्रकाशन का कार्य सी.ए.एस.ई., बड़ौदा तथा एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली द्वारा किया गया है। सन् 2000 तक के शैक्षिक अनुसंधानों का सर्वेक्षण सम्पादित हो चुका है। अनुसंधान सर्वेक्षणों का प्रकाशन उक्त संस्थानों ने भली प्रकार सम्पादित किया है। बाद के अनुसंधानों के सदंर्भो को यू.जी.सी. न्यूज लेटर में अनवरत प्रकाशित किया जा रहा है। आवश्यकता यह है कि इन सभी आधार पर विभिन्न क्षेत्रों/विषयों में होने वाली पुनरावृत्ति कितनी है? विविध पंचवर्षीय योजनाओं में अनुसंधान की दिशा क्या रही हैं चुनौतिपूर्ण नये विषयों का चयन कितना है? अनुसंधानों में नवाचारों का प्रयोग कितना है? विश्वविद्यालयों का किस प्रकार के अनुसंधानों पर बल रहा है। अनुसंधानों का स्तर क्या रहा है? आदि शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधान के विषय हो सकते हैं।

यदि वास्तव में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में गुणात्मक विकास करना है तो उक्त संदर्भों पर निष्पक्ष अनुसंधान की आवशकता है कतिपय संदर्भों पर कार्य करना दुष्कर है, तो कतिपय पर कार्य किया जाना कठिनाई पैदा करने वाला हो सकता है। एक ओर तो हम गुणात्मक सुधार की बात करें, दूसरी ओर वास्तविकता से पीछे हटें, यह उचित नहीं है। अच्छे निष्कर्षों के लिए अच्छे प्रयत्न करने होगें, शिक्षक प्रशिक्षण के स्तर में गिरावट के अनेक कारकों से सभी परिचित भी हैं। संगोष्ठियों में विचार मंथन भी होता हैं। बदलाव व सुधार की बात भी की जाती हैं, किन्तु न जाने क्यों शिक्षक शिक्षा की गाड़ी उसी पुराने रास्ते चलने लगती हैं।

अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता एवं प्रभाविता प्रबन्धन

–प्रो. चन्द्रहास शर्मा

पूर्व विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ

अध्यापक शिक्षा का परिवर्तित परिदृश्य हर दृष्टि से चुनौतियों से परिपूर्ण कष्ट का कीर्ण मार्ग है। ये चुनौतियाँ हैं–1. व्यावसायिकता में मूल्यों का ह्रास, भ्रष्टाचार तथा सामाजिक परिवर्तन के साथ व्यक्ति का समायोजन न होने से उनके अन्दर व्याप्त असन्तोष, भग्नाशा और **मानवीय सम्बन्धों का अवमूल्यन।** अध्येता और अध्यापकों के परस्पर सम्बन्ध, प्रशासनिक स्तर पर फैला भाई भतीजावाद तथा राजकीय नीतियों में विसंगतियाँ, मूल्यांकन की विश्वसनीयता तथा सिद्धान्त और व्यवहार में सेतु का अभाव। तथा सिद्धान्त और व्यवहार में सेतु का अभाव।

भावी अध्यापक के व्यक्तित्व विकास के लिए आजकल Psychodynamic Theories को महत्वपूर्ण माना जा रहा है जिससे व्यक्ति में निरन्तर परिवर्तन और विकास होता रहे। उनमें Erilkson's stages of psychosocial Development तथा सिंगमंड फ्राइड की Id, ego तथा Super ego के अन्त:क्रिया सिद्धान्त महत्वपूर्ण माने जाते है। सिद्धान्तानुसार Sex and aggression नामक दो आधारभूत Drives हमारे विचार और आचार को प्रभावित करते हैं। फ्राइड ने इसे Eros (love) i.e life instinct कहा है उसमें Sex मुख्य प्रेरक शक्ति है। Thanatos हमारी Death Instinct का द्योतक है जो aggresion (आक्रामकता) का द्योतक है। इन दो प्रवृत्तियों से ही मानव समाज नयी पीढी को जन्म देता है और बाधक शत्रुओं को मार्ग से हटाना चाहता है। फ्राइड के अनुसार किसी भी प्रकार के व्यक्तित्व निर्माण में मानसिकता का (Mind) का प्रमुख हाथ है। व्यकित के मस्तिष्क में निश्चित मात्रा में Libido अर्थात् Psychic energy

(मानसिक शक्ति) विद्यमान होती है। Id, ego and superego के Interaction से अधिकाधिक मात्रा में जितनी energy उत्पन्न होती है वही हमारे प्रौढ व्यक्तित्व (Adult personality) का निर्धारण करती है। यह सृजन और संहार एवं आक्रामकता की मात्रा आधारित व्यवहार हमारे क्रिया को दिशा देता है। भारतीय दृष्टि से व्यक्ति के अन्दर पशुत्व की अपेक्षा देवत्व एवं पूर्णत्व है। विवेकानन्द ने कहा था An Individual is potentially divine being.

शिक्षा का कार्य व्यक्ति को संस्कारित करना है वह शिक्षा नहीं विद्या से होता है। विद्या अनुभवों का आदान प्रदान है शिक्षा सूचनाओं का आदान-प्रदान है। अध्यापक-शिक्षा में मानव व्यवहार के मनोविज्ञान को आत्मसात् कराने वाली पाठयक्रमों के विविध अंगों को परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक बनाने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में Erikson का Psychosocial Model विचारणीय है।

नर्सरी विद्यालयों में (3.5 वर्ष) बच्चों की अभिरूचि कुछ न कुछ नवीन (Explore) करने की है। वे अपने चारो ओर की वातावरण को अपने अधिकार में होने का हर प्रयत्न करने में लगे होते हैं। यदि अध्यापक उन्हें उसमें सफल होने का मार्ग-दर्शन कर सकता है तो वे सफल हो जाते हैं और उनमें उद्देश्य की प्राप्ति Sense of purpose के भाव का श्री गणेश होता है। उचित मार्ग दर्शन के अभाव में बच्चों में अपनी क्रियाओं में असफल होने पर हीनता की भावना (Inferiority feeling) घर कर सकती है। अध्यापक शिक्षा में शिक्षण संस्थानों का मुख्य कार्य भावी अध्यापक के रूप में ऐसे सबल और व्यवहार दक्ष व्यक्तियों का निर्माण करना है जो विद्यालय के छात्रों को अनुकरणीय हो सकें।

इसी प्रकार 6-12 वर्ष की अवस्था में बालक/बालिकाएँ विद्यालय में जाकर घर से भिन्न नये प्रकार के वातावरण में प्रविष्ट होकर कुछ नया करना चाहते है। उनकी सामाजिक और शैक्षिक आवश्यकताएँ पहले से भिन्न प्रकार की होती है उस परिवेश में वे अपने को जिस रूप में

समायोजित करने में सफल या असफल होते हैं उसी प्रकार की दक्षता (Sense of competence) का भाव अथवा हीनता का भाव उनमें विकसित होता है।

12-18 वर्ष में किशोरावस्था का छात्र/छात्राओं में अपनी पहचान बनाकर विद्यालय, घर एवं समाज में अपनी भूमिका निर्धारित करने की ललक होती है। यदि वे इस ध्येय में सफल हो जाते हैं तो उनमें आत्मविश्वास की मात्रा बढ़ती जाती है असफल होने पर उन्हें अपनी क्षमताओं के बारे में सन्देह होने लगता है और 'स्व' के (self) बारे में उनका Self regarding sentiment परिपुष्ट नहीं हो पाता। किशोरावस्था में उत्तरकाल में 19-40 **वर्ष पर्यन्त प्रौढावस्था की आयु में उनमें अन्य** सभी के साथ मधुर सामाजिक सम्बन्ध बनाने की प्रवृत्ति होती है। कई बार संग दोष के कारण वे संकट में फँस जाते हैं। बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। अधिक सामाजिक दबाव के कारण वे निराशा में निम्पान होकर एकान्त सेवी बन जाते हैं। अपराध की दुनिया में वे अपनी पहचान बनाकर अपने अहं की रक्षा करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अध्यापकों के सही मार्ग दर्शन की बहुत आवश्यकता है। यही वह अवस्था है जहाँ सामाजिक चरित्र का संकट उपस्थित हुआ करता है। आयु के इस अन्तराल में Igo Identity वर्तमान परिवेश में तीव्र गति से परिवर्तित हो रही है। आवश्यकतानुसार आयाम व्यक्ति के व्यवहार और क्रिया-कलापों को अनुप्राणित करने वाले तैयार करने की आवश्यकता है। जिससे संचार यंत्रों की तुलना में व्यक्ति की प्रासंगिकता बरकरार बनी रह सके। Erikson ने ego strength या ego quality के प्रबन्धन को महत्वपूर्ण माना है। अगर इसके प्रबन्धन की उपेक्षा की गई तो व्यक्ति अन्दर से खोखला होता जायेगा। प्रत्येक कदम पर संघर्ष और प्रतिद्वन्द्वता का सामना करना पड़ेगा। किन्तु संघर्षों में सफलता का वरण कर लेने पर व्यक्तित्व में अनुकरणीय गुणों की प्रचुर सम्पत्ति का विकास होगा। असफल होने पर विकासशील सभी शक्तियाँ कुण्ठित हो सकती है।

अर्थोपार्जन की अंधी दौड़ में मानवीय सम्बन्धों में दरारें पड़ती जा रही है। सामाजिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न होता जा रहा है। ऐसी संकटापन्न अवस्था में अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों का दायित्व गुरुतर हो गया है। वे ऐसे भावी अध्यापकों को तैयार करें जो मानवीय संवेदनाओं से स्वयं भी परिपुष्ट हों और नैतिकता में भी सबल हों जिससे सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन उनके पैर न उखाड़ फेंक सके। वे जिन बच्चों को पढ़ाने जायें उनको स्नेह, सुरक्षा और सद्भाव देकर अन्तर्निहित शक्तियों के पूर्ण विकास में संरक्षक की भूमिका अदा कर सके। इन क्षमताओं को विकसित करने में मनोविज्ञान और योगनिष्ठा अपरिहार्य अंग है। मनोविज्ञान की गहरी जानकारी से भावी अध्यापक बालकों को ठीक-ठीक समझ कर उनका विकासोन्मुख मार्गदर्शन कर सकेंगे तथा योग साधना से अपनी चेतना के स्तर को ऊँचा उठाकर समत्व भाव लाकर स्वयं को दृष्टाभाव में आरुढ कर हताशा और निराशा से बच सकेंगे। तभी वे अपने अध्यापन कर्म को कुशलतम से सम्पन्न करने में सक्षम हो पायेंगे।

बदलते सन्दर्भ में अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ एवं भावी उपागम

–डा. आर. पी. पाठक

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

अध्यापक–शिक्षा की चुनौतियों पर विचार करने का एक युक्ति–युक्त उपागम है–वर्तमान चुनौतियों को अध्यापक–शिक्षा के विकासात्मक सन्दर्भ में देखना। इस आधार पर इस पत्र की विषय–वस्तु को निम्न दो अंशों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. अध्यापक –शिक्षा का विकासात्मक स्वरूप एवं
2. अतीत एवं भविष्य के सन्दर्भ में अध्यापक–शिक्षा की वर्तमान चुनौतियाँ।

अध्यापक-शिक्षा का विकासात्मक स्वरूप

एक युग था जब अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता मात्र होना व्यक्ति के अध्यापक बनने हेतु पर्याप्त योग्यता मानी जाती थी। कुछ विषयों के अध्यापन में तो यह मान्यता अभी तक प्रचलित है। संगीत, नृत्य, कला आदि में तो अभी तक हम कोई व्यवस्थित वैज्ञानिक अध्यापन प्रणाली न तो विकसित कर पाये हैं और न इस बात की कोई आवश्यकता ही अनुभव करते हैं। इस स्थिति को हम अध्यापन का प्राथमिक काल मान सकते हैं, जबकि विषयवस्तु के ज्ञान के अतिरिक्त अध्यापन के लिए और किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरकाल तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व के ज्ञान- क्षितिज पर वैज्ञानिक युग के अवतरण के साथ मानव जीवन के बहुपक्षी इतिहास के कई आयामों के पन्ने विज्ञान की आयु के

तेज़ झोंके से बड़ी तेजी से पलटे। अध्यापक-शिक्षा के इतिहास ने भी इस समय एक नया मोड़ लिया। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मनोविज्ञान ने, विज्ञान के प्रकाश में, अपने दार्शनिक-मानसिक स्वरूप को त्यागकर **व्यवहार के विज्ञान** का नया स्वरूप धारण किया। चूँकि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति-व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाना था, अतएव इन परिवर्तनों को फलीभूत करने हेतु शिक्षाविदों को **व्यवहार के विज्ञान** की ओर देखना पड़ा। विज्ञान ही किसी विषय, वस्तु या परिस्थिति विषयक 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। अतएव व्यवहार के वांछनीय मोड़ो को किस प्रकार चरितार्थ किया जाये, यह विद्या एक विज्ञान ही शिक्षाविदों को बता सकता था। फलस्वरूप व्यवहार परिवर्तन के प्रक्रम, गतिविधियाँ, चरण, मूल्याँकन आदि के ज्ञान के रूप में मनोविज्ञान का शिक्षा के साथ संयोग स्थापित हुआ। इस संयोग ने जन्म दिया सांशैक्षिकी (Educational Pedagogy) को। हरबर्ट के सुप्रसिद्ध अध्यापन-पदों के साथ अध्यापन के लिए आवश्यक समझा गया और इस प्रकार व्यवस्थित अध्यापक-प्रशिक्षण का एक नवीन विषय-क्षेत्र के रूप में प्रारम्भ हुआ। संक्षेप में कह सकते है कि अध्यापक-शिक्षा का जन्म इस जिज्ञासा में हुआ कि छात्रों तक विषय-वस्तु का समुचित प्रेषण, किस व्यवस्था से, किस प्रकार की विधाओं से और कौन-कौन से उपकरणों से किया जा सकता है।

मनोविज्ञान-अधारित अध्यापन विधाओं में निरन्तर प्रगति होती गई। कई प्रकार की शिक्षण शैलियाँ, अध्यापन प्रारूप तथा पाठ योजनायें विकसित होती गई। उद्देश्यानुसार, विषय-वस्तु के अनुसार, विषयनुसार भाँति-भाँति के प्रयोग होने लगे।

किसी भी नवीन विकास के साथ सामान्यतः नवीन प्रश्नों का जन्म होता है, नई गुत्थियाँ उपस्थित होती हैं, नये आयाम खुलते हैं। शिक्षा-शास्त्र के अन्तर्गत उपरोक्त प्रयोगों ने अध्यापन परिस्थिति के एक दूसरे महत्त्वपूर्ण आयाम विद्यार्थी-समूह पर भी एक नया प्रकाश डाला। एक तो देखा गया कि अध्यापन के आयाम में एकरूपता होने पर भी एक विद्यार्थी के सीखने के स्वरूप में समानता नहीं, उसके सीखने की प्रकृति, गति-मात्रा, सीखने के प्रति उपागम, सीखने के स्वरूप परिणाम

में अनोखी भिन्नता पाई गई, फलस्वरूप सीखने के प्रक्रम की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित हुआ। अभी तक अध्यापक-शिक्षा में केवल अध्यापन शास्त्र पर ही शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों का ध्यान केन्द्रित था। अध्यापन के मनोविज्ञान से आगे बढ़कर अब वे सीखने के मनोविज्ञान की ओर उन्मुख हुए। मूल प्रश्न था- 'एकैक विद्यार्थी किस प्रकार सीखता है?' इस प्रकार अधिगम का स्वरूप, प्रकार, घटक, नियम, सिद्धान्त आदि पर अध्ययन प्रारम्भ हुआ और **अधिगम का मनोविज्ञान** (Psychology of Learning) विकासमान मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में वर्धमान होने लगा। अध्यापन की दृष्टि से इस शाखा से कई महत्त्वपूर्ण योगदान आये। कुर्ट लेविन द्वारा प्रस्तुत 'सीखने के संज्ञानात्मक सिद्धान्त' ने विशेष रूप से विद्यार्थी की संज्ञानात्मक संरचना के अवकलन की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया। सीखने के प्रक्रम पर शिक्षाविदों और मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये गये इस बल के परिणामस्वरूप अध्यापन एक विज्ञान स्वीकार किया जाने लगा। इस प्रगति गामी पथ पर अध्ययन के विकासात्मक स्वरूपों की रूपरेखा कुछ इस प्रकार बनी-

* विषय-विशेषज्ञ द्वारा छात्र को विषय-वस्तु का सहजरूपेण प्रेषण। अध्यापन एक सहज प्रक्रम।

* अध्यापन शास्त्र के रूप में सांशैक्षिकी (Educational Pedagogy) का जन्मः अध्यापक-शिक्षा का प्रारम्भ और विधिवत विकास।

* अध्यापक के लिए अधिगम विज्ञान में भी पारंगत होना आवश्यक। अधिगम मनोविज्ञान एवं शिक्षाशास्त्र के समन्वित विकास के साथ अध्यापन, एक विज्ञान बना और आज के युग में हमने घोषित किया है कि अध्यापन एक टैक्नोलॉजी है।

वर्तमान युग में अध्यापक-शिक्षा की चुनौतियाँ-

आज के युग में शिक्षा, एक उद्योग, एक तकनीक, एक टैक्नोलॉजी

के रूप की ओर अग्रसर हो रही है। समय की गति-प्रकृति और परिस्थिति की आवश्यकता को देखते हुए शिक्षा के विकास में यह आयाम भी अपरिहार्य है। भारत की बढ़ती अपार जनसंख्या, निराशापूर्ण निरक्षरता, और निम्न जीवनस्तर के सन्दर्भ में औद्योगिक-तकनीकी उपागमों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। अब अपने आज के विषय के संदर्भ में देखें तो वर्तमान युग में अध्यापक-शिक्षा की चुनौतियों की ओर यों तो चारों ओर से आज हमें कई चुनौतियाँ ललकार रही हैं।

प्रत्येक परिवर्तन का प्रति चरण, कतिपय प्रश्नों को संग लिए रहता है। हरेक विकास के साथ कुछ चुनौतियाँ संलग्न रहती हैं और कोई भी नूतन देन एक अमिश्रित वरदान नहीं होती है।

शिक्षाः एक उद्योग के रूप में-

वर्तमान युग में शिक्षा के प्रसार की असीम आवश्यकता को देखते हुए उसका औद्योगिक उपागम से आयोजन, एक अनिवार्य वास्तविकता बनता जा रहा है। इस उपागम के स्पष्ट लाभ हैं- गति, विस्तार, प्रभाविता, सम्यकता (Accuraccy) एकरूपता, उत्पादकता आदि।

उपरोक्त लाभों के साथ संयुक्त चुनौतियों के रूप में कई प्रश्न उपस्थित होते हैं-

क्या शिक्षा-प्रक्रम आनन्ददायी है?

(John Leonard) जॉन लीओनॉर्ड की प्रसिद्ध पुस्तक **'एजूकेशन एण्ड एक्सटेसी'** में विद्वान लेखक ने जो संगत प्रश्न उठाये हैं, शिक्षण संस्थाओं का वर्णन करते हुए वे कहते हैं, 'विद्यालय एक फैक्ट्री है जिसका प्रधानाचार्य उसका प्रबन्धक है, अध्यापकगण कार्यकर्त्ता हैं और छात्रजन उत्पादित सामग्री (Product) हैं। इस प्रोडेक्ट में संख्यात्मक वर्धन के साथ यन्त्रवत् एकरूपता है। विद्यालय समय की समाप्ति की घण्टी होते ही भीतर के कार्यकर्ता फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूरों के समान राहत अनुभव करते हैं।

अध्यापक-शिक्षा की आज प्रथम चुनौती, मेरी राय में यह है कि शिक्षा को एक आनन्ददायी प्रक्रम किस प्रकार बनाया जाये। अध्यापक-प्रशिक्षण का यह ज्वलन्त प्रश्न हमें घूरता है, जॉन लीओनार्ड द्वारा उपरोक्त पुस्तक के प्रस्तुत एक स्टाफ रूम के मार्मिक चित्रण में वे कहते हैं 'अध्यापक **थके हुए** हैं कॉफी के दागों से युक्त कॉफी के प्यालों में वे राहत की आंहें भरते हैं। आज हमारे सामने यह चुनौती है कि अध्यापक-शिक्षा के माध्यम से हम किस प्रकार एक भावी अध्यापक के मन में आस्था जागृत करें कि अध्यापन प्रक्रम आनन्ददायी हो सके।

क्या अध्यापन सर्जनात्मक है?

'सर्जनात्मकता' के लक्षणों का विवेचन करते हुए मनोवैज्ञानिक घिसलिन (Ghiselin) ने एक सार्थक लक्षण यह भी बताया था कि जो वस्तु हमें (Aesthetic Pleasure) सौन्दर्यबोधयुक्त आनन्द दे उस उत्पाद को हम सर्जनात्मकता का परिणाम कह सकते हैं। 'क्या अध्यापन आनन्ददायी प्रक्रम है?' इस प्रश्न के उपरोक्त विवेचन ने तो यह शंका उत्पन्न कर दी है कि अध्यापन एक **आनन्ददायी** प्रक्रम भी है आज, या नहीं! तो फिर **सौन्दर्यबोधयुक्त** आनन्द की बात ही कहाँ? कदाचित् जिन मानवीय गुणों में सौन्दर्यबोध, संवेदनशीलता, और आनन्दित रहने की क्षमता ऐसे लक्षण हैं जिनका आज के शिक्षा जगत में सबसे अधिक ह्रास दृष्टिगोचर होता है।

शिक्षा में सर्जनात्मकता लाने के प्रश्न को एक चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है कि आज हमें परिस्थितिवश उद्योग के यान्त्रिक तन्त्र का उपागम शिक्षा के विस्तार में प्रयुक्त करने की अनिवार्य आवश्यकता आ पड़ी है। उद्योग के उत्पाद का अन्तर्निहित लक्षण है एकरूपता, और एकरूपता का सर्जनात्मकता से मनोवैज्ञानिक विरोध है। अध्यापक-शिक्षा की आज यह एक महान चुनौती है कि शिक्षा के **विस्तार-प्रसार के सन्दर्भ में,** और इन **प्रशिक्षित अध्यापकों** द्वारा **विद्यालयीय अध्यापन,** दोनों ही सर्जनशील प्रक्रम बन सकें।

अध्यापक की नई भूमिकायें

विकासमान टैक्नोलॉजी के सन्दर्भ में अध्यापक को अपनी नई उभरती भूमिका के बारे में प्रशिक्षित करना अध्यापक शिक्षा की तीसरी महत्त्वपूर्ण चुनौती है। कम्प्यूटर, अध्यापक को अवस्थापित नहीं कर सकता। हमें नई टैक्नोलॉजी के प्रयोग में हमारे भावी अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के साथ-साथ उन्हें अपनी नवीन भूमिकाओं के लिए भी तैयार करना होगा।

आज दुनिया सिकुड़ कर छोटी सी हो गई है- दूरसंचार के सशक्त साधनों के कारण विविध देशों, संस्कृतियों, समाजों के संगम के साथ-साथ सभी वयस्कों की पुरानी भूमिकाओं में नित नूतन आयाम जुड़ते जा रहे हैं। बहुत सी सूचनायें बनाकर पाठ्येतर तकनीकी साधनों से प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए अध्यापन के स्वरूप, उसके उपागम-आयोजन पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। साथ ही अधिगम के विस्तरित पर्यावरण और परिवर्धित सूचना क्षेत्र के सन्दर्भ में चिरन्तर मूल्यों की रक्षा, उसकी आवश्यक आस्थाओं का विकास, अपनी संस्कृति के प्रति आदर आदि कई ऐसी बातें हैं जिनकी ओर आज के वयस्कों को सजग रहना है और हमारी दृष्टि से एक अध्यापक का स्थान सबसे गौरवपूर्ण है। भावी अध्यापकों को अपनी इस गौर गौरवपूर्ण, गरिमामयी भूमिका निभाने हेतु हमें प्रशिक्षित करना है।

व्यवसाय के प्रति निष्ठा

उपरोक्त बिन्दु का विवेचन हमें सहज रूप से उस चुनौती पर ले जाता है जो आज शिक्षा जगत की सबसे बड़ी चिन्ता का विषय बनी हुई है।

भारतीय संस्कृति में अध्यापक के लिए 'गुरु' शब्द का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है-'भारी, वजनदार।' बड़ा ही गरिमामय है यह व्यवसाय!! बड़े ही शक्तिशाली कन्धों की आवश्यकता है इस वजनदार

और गरिमामय व्यवसाय को वहन करने हेतु उसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा गया है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

ब्रह्मा के रूप में वह विचारों का सर्जनकर्त्ता है, विष्णु के रूप में विचारों का अनुपालन कर्त्ता है तथा अवांछित विचारों के संहारक के रूप में वह महेश्वर है। लेकिन हमें दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि अध्यापन को एक विज्ञान तथा टैक्नोलॉजी के पद तक समुन्नत करने के बावजूद अध्यापकों की अपने ही व्यवसाय के प्रति निष्ठा में गिरावट सी प्रतीत होती है। निष्ठा, आस्था और भक्ति के बिना, केवल वैज्ञानिक–तकनीकी उन्नति से हम अध्यापन के क्षेत्र में बहुत आगे नहीं बढ़ सकते हैं।

आज हमारे समक्ष महान चुनौती है कि हम अपने अध्यापक प्रशिक्षण में किन तत्त्वों को, कौन से अनुभवों को, किस प्रकार समाविष्ट करें कि हम एक वांछनीय व्यवसाय निष्ठा भावी अध्यापक में उत्पन्न कर सकें।

अपने विकासात्मक स्वरूप का अध्ययन करते हुए, वर्तमान को समझें और **समूचे सन्दर्भ** में भविष्य में झाँकती हुई चुनौतियों का सामना करने की तैयारी करें। हमें स्वयं अपने कार्य के प्रति जागरुक और जवाबदेह बनना पड़ेगा, अपने अन्दर के सुप्त विचारों को जागृत करना होगा, तभी अध्यापक शिक्षा को जीवन्त रखा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

References:

M. H. R. D : Challenges of Education- A Policy Perspective; Ministry of Education, Govt. of India, New Delhi, 1985

M. H. R. D : National Policy of Education 1986, Ministry

		of Human Resource Development, Govt. of India, (Department of Education), New Delhi, 1986
Dewals & Shah	:	Technology Knocks at the door of Education center of Advance study in Education, Baroda, 1970
Leonard, G.B	:	Education at Ecstasy, John Murray, 1970
Mukerjee, S.N	:	Education of Teachers in India, Vol. 1&2. Chand & co. New Delhi, 1968
Tripathi, S.N	:	Creativity & Education, Regional College of Education, Bhopal, Bhopal, 1969
Pathak, R.P	:	Philosophical & Sociological Principles of Education, Pearson Education, New Delhi, 2011

ई-अधिगम द्वारा अध्यापक शिक्षकों का सशक्तिकरण

—डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज
सहायक आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

आज के तकनीकी युग में शिक्षा के हर क्षेत्र में तेजी से बदलाव हो रहे हैं और अध्यापक शिक्षा इससे अछूता नही हैं। शिक्षण, अधिगम, मूल्यांकन, शोध आदि क्षेत्रों में टेक्नोलॉजी का विकास इतने द्रुत रूप में हो रहा है कि वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षण-व्यवस्थाओं के अभिकल्पन एवं कार्यरत अध्यापक शिक्षकों की कार्य कुशलता के लिये अपेक्षिता तत्परता एवं अनिवार्यता महसूस होने लगी है। इस बात से हम सभी सहमत होगें कि इक्सीवीं शताब्दी की उभरती चुनौतियों में से यह एक महत्वपूर्ण चुनौती हैं। अध्यापक शिक्षा से जुड़े सभी शिक्षण ऐसी परिस्थितियों में अपनी व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं कौशलों को कैसे अभिव्यक्त करें जिससे समय-समय पर प्रेक्षित चुनौतियों का सामना प्रभावी ढंग से हो सके, यह एक सारगर्भित मुद्दा है। इस संदर्भ में ई-अधिगम एक ऐसी युक्ति एवं साधकत्व है जो हमें इस चुनौती का सामना करने के लिए अपेक्षित सामर्थ्य प्रदान करेगा। यह शिक्षण एवं अधिगम मे प्रभावित एवं प्रयोजनबद्धता लाने का अत्यन्त सबल व प्रबल तरीका है जो कि हमें सशक्त ही नही बल्कि नये बदलते शैक्षिक, प्रतिमान की अपेक्षाओं के लिये उद्यत है। यह एक इन्टरनेट-समर्थित अधिगम प्रक्रिया है जिसमें बहुप्रारूपों में विषय-वस्तु प्रदान कना, अधिगम अनुभवों का प्रबधंन तथा नेटवर्क द्वारा जुड़े अधिगमकर्त्ता, पाठ्य-वस्तु निर्मांता एवं विषय-विशेषज्ञों का समुदाय-सम्प्रेषण संकुल के इष्टतम प्रयोग के सद्यः घटक हैं।

ई-अधिगम पद का शाब्दिक अर्थ ऐसे अधिगम से है जिसे किसी एक या अधिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों, माध्यमों अथवा संसाधनों की सहायता से सम्पादित किया जाता हैं। व्यवहारात्मक रूप में ई-अधिगम को इतने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त नहीं किया जाता बल्कि इसके प्रयोग क्षेत्र को आधुनिक शिक्षण-अधिगम तकनीकी के उपयोग तक ही सीमित रखा जाता है जिसमें कम्प्यूटर, नेटवर्किंग तथा बहुमाध्यमीय टेक्नोलॉजी का सहयोग होता है। अपने इस रूप में ई-अधिगम में सभी प्रकार के आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक सूचना एवं सम्प्रेषण माध्यम एवं साधनों जैसे सी. डी., डी.वी.डी., टेलीकांफ्रेंसिंग या चैटिंग, इन्टरनेट तथा वेब सुविधाओं, ऑनलाईन अधिगम, वेब आधारित अधिगम आदि की सहायता से अर्थपूर्ण शिक्षण एंव अधिगम कार्य सम्पादित किया जा सकता है। अपने इस व्यवहारात्मक एवं प्रयोगात्मक रूप में ई-अधिगम एक ऐसी इलेक्ट्रॉनिक जन्य अधिगम है जिसका सम्पादन आधुनिक अधिगम टेक्नोलॉजी (इन्टरनेट-आधारित, वेब-आधारित एवं बहुमाध्यम-आधारित टेक्नोलॉजी) के प्रयोग द्वारा किया जाता है।

ई-अधिगम के तीन आधारभूत तत्व हैं-पाठ्य वस्तु, टेक्नोलॉजी और सेवाएँ। पाठ्यवस्तु ई-अधिगम का आधार है जिसे टेक्नोलॉजी गतिमान बनाती है तथा सेवाएँ एक अवलम्ब प्रणाली है जो कि अधिगम प्रक्रिया को इन्टरनेट के द्वारा मानवीय एहसास प्रदान-करती है। ई-अधिगम जहाँ एक ओर अधिगमकर्त्ता को सीखने के अवसर प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर उसे जवाबदेह भी बनाता है। अतः यह कम खर्च में ज्यादा जानने व जल्दी सीखने और सूचना व ज्ञान के आत्मसात्करण करने की शक्तियों को अभिवृद्ध करता है। प्रस्तुत पत्रक ई-अधिगम द्वारा अध्यापक शिक्षकों को सशक्त बनाने हेतु कुछ आवश्यक उपाय-कौशलों पर प्रकाश डालने का प्रयास करेगा। ये उपाय कौशल आधुनिक इलेक्ट्रॉनिकी के विकास के साथ जुड़े अनेक बहुआयामी संयंत्रों एवं माध्यमों के संकुलों से निकटतापूर्वक प्रभावित होते हैं। आगे इन उपाय कौशलों के प्रभावी उपयोग को सुनिश्चित करने की दृष्टि से कतिपय मुद्दे प्रस्तावित एवं वर्णित हैं।

टेक्नोलॉजी के प्रति मानसिक सोच में बदलावः-

आज के तकनीकी युग में यदि अध्यापक शिक्षकों को व्यावसायिक जीवन में अपनी पहचान बनाए रखनी है तो उसे टेक्नोलॉजी के प्रति अपनी सोच को सकारात्मक बनाना होगा। किसी व्यक्ति की सोच को बदलना एक बहुत ही जटिल कार्य है क्योंकि स्वाभाविक रूप में कोई भी व्यक्ति जल्दी से कोई भी परिवर्तन स्वीकार नहीं करता। हमें यह पता होना चाहिए कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है जबकि चुनौतियाँ जीवन का लक्ष्य है। इसलिए हमेशा चुनौतियों में बदलाव लाने की अपेक्षा परिवर्तन को ही चुनौति के दायरे में लाया जाए। अतः इस बदलते शैक्षिक सन्दर्भ में जिस प्रकार हमने दैनिक जीवन के कार्यों में टेक्नोलॉजी को अपनाया एवं आत्मसात् किया हैं उसी प्रकार उसे अपने शैक्षिक कार्यों का अभिन्न अंग बनाना होगा। इसके प्रयोग से हम अपने शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया को आकर्षक, रूचिपूर्ण और प्रभावी बना सकेगे। यह हमें ऐसे शिक्षाशास्त्र उपागम को अपनाने में प्रोत्साहित करेगा जो कि शिक्षण व अधिगम को बंद से खुले और कठोर से नमनीयता की ओर अग्रसारित करने में सहायक होगें। अतः अपने व्यावसायिक कार्यों को अर्थपूर्ण एवं प्रभावी बनाने हेतु अध्यापक शिक्षकों को टेक्नोलॉजी के प्रयोग के प्रति एक अभिवृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता है जो कि उसे ई-अधिगम व्यवस्थाओं के प्रति उचित सोच बनाने में सहायक होगा।

कम्प्यूटर के प्रयोग को शैक्षिक गतिविधियों से अनुकूलित करनाः-

ई-अधिगम के प्रयोग के सन्दर्भ में कम्प्यूटर साक्षरता और उसका शैक्षिक कार्यों में अनुप्रयोग बहुत अहम भूमिका निभाता है। अध्यापक शिक्षक को अपने को ई-अधिगम से जोड़ने के लिये सर्वप्रथम कम्प्यूटर साक्षर बनना होगा। कम्प्यूटर साक्षरता से अभिप्राय यह हैं कि कम्प्यूटर के मुख्य घटकों, उनके कार्य तथा बहुविध प्रयोगों की जानकारी होना। इसमें मुख्य रूप से एम.एस.-ऑफिस, वेब एवं इन्टरनेट के सम्प्रत्ययों

की जानकारी एवं प्रयोग सम्मिलित हैं। कम्प्यूटर के इस सामान्य ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात ही अभिज्ञता स्तर में अभिवृद्धि होती हैं तथा अभ्यासकर्ता शिक्षक उसे शिक्षण-अधिगम की परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार अनुकूलन की ओर अग्रसर होता है जिससे पूरी व्यवस्था अधिगम को इष्टतम रूप में सुनिश्चित करने के प्रति संवेदनशील बन जाती है।

इधर के दशक मे कम्प्यूटर-समर्थित अधिगम की विधाओं में बहुलता आने से अधिगम प्रक्रिया में स्व-प्रयास आधारित अधिगम घटित होने में सहजता देखने को मिलती है। इसी दृष्टि से वर्चुअल कक्षाएँ तथा वर्चुअल कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों का स्वरूप प्रकाश में आया है। इसके अलावा अधिगम प्रक्रिया में प्रभावित एवं स्थायित्व दोनों ही तत्व एक साथ जुड़े हैं। जिससे अधिगम की अवधि में परम्परागत रूप में महसूस की जाने वाली ऊब, नीरसता एवं कृत्रिमता से बचाव होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

ई-अधिगम का आधारभूत ज्ञान :-

ई-अधिगम को शैक्षणिक कार्यों का अभिन्न अंग बनाने के लिये सर्वप्रथम शिक्षकों को इसकी अवधारणा, इसके घटक, प्रकृति, विशेषताएँ, विभिन्न प्रारूप एवं शैलियों के बारे में जानकारी अति आवश्यक है। इससे शिक्षकों को अपने दैनिक शैक्षिक कार्यों में प्रयोग करने की परिस्थितियों में और स्पष्टता प्राप्त होगी। विषय से सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन, अधिग्रहण एवं रूपान्तरण तथा उनको ज्ञान समग्रों में शनैः-शनैः रूपान्तरित करना तथा उसे उच्चस्तरीय अनुप्रयोग के लिये विवेक सम्मत ज्ञान संकुलो के रूप में लाना एक सुगम-प्रक्रिया बन जाती है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षक अपने विषयी ज्ञान को अद्यतन और अभिवृद्धि तो कर सकेगा तथा साथ-ही उसके प्रयोग व अन्तरण के नये साँचों को विकसित कर पायेगा। अतः ई-अधिगम के आधारभूत ज्ञान को अपेक्षित रूप में सबल एवं प्रभावी बनाए रखने की दृष्टि से

सूचना एवं ज्ञान के दायरों को निरन्तरता के साथ नवीन परिप्रेक्ष्य देते रहना होगा।

प्राविधिक कौशलों को प्रोन्नत करनाः-

सूचना के युग में किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित सूचनाओं को इन्टरनेट के माध्यम से बहुत कम समय में अभिगम्य बनाया जा सकता है। जैसा है यह सुविदित है कि प्राचीन काल में ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र स्रोत अध्यापक होता था लेकिन वर्तमान समय में अनेक स्रोत है जो कि टेक्नोलॉजी के द्रुत विकास से सम्भव हो पाया हैं। आज का विद्यार्थी टेक्नोलॉजी के प्रयोग मे बेहतर होने के कारण इन्टरनेट के माध्यम से सूचनाये तो प्राप्त कर सकता है। लेकिन उसे ज्ञान में परिवर्तित करने की अपेक्षित सामर्थ्य उसमें नहीं होती जबकि एक कुशल अध्यापक इसे सहज रूप में अपना सकता है। इस सन्दर्भ में शिक्षक की भूमिका ज्ञान नियन्त्रक से ज्ञान-विस्तारक एवं समर्थनदाता की बन जाती है। इसलिए यह शिक्षकों के लिये आवश्यक है कि वह भी अपने विषयों से सम्बन्धित सूचनाओं की अभिगम्यता प्राविधिक कौशलों के माध्यम से प्रवाहपूर्ण एवं सहज बनाये जिससे सूचनाओं को ज्ञान-पूजी में परिवर्तित करने में सुगमता आए। प्राविधिक कौशलों को अभिवृद्ध करने से वह अपने व्यावसायिक कार्यों विशेषरूप से शिक्षण कार्य को प्रभावी ढंग से नियोजित, सम्पादित व मूल्यांकित कर सकेगें। साथ ही साथ अपनी विषय-वस्तु को अद्यतन कर, उसके प्रभावी प्रस्तुतिकरणों को नया आयाम प्रदान कर सकेगें।

ई-अधिगम को पाठ्यक्रम का अविच्छिन्न अंग बनाना :

ई-अधिगम को सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्षों को कार्यरूप प्रदान करने हेतु अध्यापक शिक्षा के सभी पाठ्यक्रमों का इसे अभिन्न अंग बनाना होगा। या तो इसे हम पाठ्यक्रम के अनिवार्य विषय के रूप में स्थान दे या एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के रूप में सम्मिलित करें। ई-अधिगम कार्यक्रम को अध्यापक शिक्षकों के व्यवहार का अंग बनाने हेतु पाठ्यक्रम में इसके व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देना होगा

जिसके लिये संस्थागत स्तर पर अपेक्षित भौतिक संसाधन एवं सुविधाओं की उपलब्धता परमावश्यक है। प्रायः पाठ्यक्रम के अधिकांश घटकों को ई–अधिगम से जोड़ने का प्रयास पाठ्यक्रम की क्रियान्विति में प्रभाविता सुनिश्चित कर सकेगा तथा पाठ्यक्रम का व्यावहारिक उपयोग कई दृष्टियों से सरल एवं सुगम बन सकेगा।

कक्षा शिक्षण की अन्तर्क्रित्यात्मक परिस्थितियों में ई–अधिगम का समन्वयः

कक्षा शिक्षण में ई–अधिगम के अनुप्रयोग करने से एक शिक्षक अपने को कई कक्षाओं में उपलब्ध करा सकेगा। इसके लिये शिक्षकों को ई–अधिगम के विभिन्न माध्यमों एवं शैलियों को कक्षा–शिक्षण का अभिन्न अंग बनाना होगा। वैसे तो ई–अधिगम दूरवर्त्ती और नमनीय रूप में अधिगम प्राप्त करने के लिये सबसे उपयुक्त माना जाता है। लेकिन औपचारिक कक्षा-शिक्षण व्यवस्था में यह एक प्रभावी पूरक का काम करता है। कक्षा शिक्षण में बहुमाध्यम, इन्टरनेट तथा वेब आधारित टेक्नोलॉजी का प्रयोग करके शिक्षण व अधिगम दोनों को रोचक एवं अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है। शिक्षकों के अच्छे व्याख्यानों को ऑडियो–वीडियो कांफ्रेसिंग के द्वारा किसी भी अन्य विश्वविद्यालय में अधिगम सुन व देख सकता है। इसके साथ अच्छे व्याख्यानों को सी.डी. के रूप में संग्रहित करके आवश्यकतानुसार प्रयोग करने से कक्षा–शिक्षण के गुणवत्ता के स्तरों में वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है अतः अवलंब एवं मिश्रित अधिगम शैलियों के रूप में ई–अधिगम का कक्षा–शिक्षण में अनुप्रयोग सम्भव है।

ई–पाठ्य–वस्तु के निर्माण की क्षमता का विकासः–

यह हम सभी जानते हैं कि ई–पाठ्य वस्तु का अभाव है और इस अभाव को पूरा करने के लिये शिक्षकों में ई–पाठ्य वस्तु के निर्माण की क्षमता का विकास करना अति आवश्यक है। ई–पाठ्य वस्तु निर्माण से जुड़ी संस्थाओं के साथ अध्यापक शिक्षकों को अपने को जोड़ना होगा जिससे वह अपने विषयों से सम्बन्धित ई–पाठ्य वस्तु निर्माण में अपना

सहयोग प्रदान कर सके। इसके लिये व्यक्तिगत एवं संस्थागत दोनों स्तरों पर प्रयास अपेक्षित है।

ई-मंच का निर्माण

देशभर के सभी अध्यापक शिक्षकों को एक ई-मंच बनाना चाहिए जिसका प्रयोग कहीं भी बैठा अधिगमकर्ता ज्ञान के आदान-प्रदान, सूचनाओं को प्राप्त करने, कौशलों के विकास, नूतन प्रवृत्तियों को जानने आदि के लिये कर सके। इस ई-मंच को ठोस आधार प्रदान करने के लिये अध्यापक शिक्षकों को सामूहिक एवं सहयोगात्मक प्रयास करने होगे। इस मंच के माध्यम से देशभर के अध्यापक शिक्षक एक दूसरे से तो जुड़ेंगे ही साथ अपनी व्यावसायिक समस्याओं को बता सकेगें तथा ई-विचार मंथन द्वारा समाधान ढूंढ पायेगें।

अन्त में, यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शिक्षक एवं शिक्षण-अधिगम की वर्तमान व्यवस्थाओं के सबलीकरण एवं उनके प्रभाव आयामों को अभिनव स्वरूप देने में ई-अधिगम की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सामयिक है जिसे अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को आवश्यक अंग के रूप में उपकल्पित करना होगा। इस प्रकार अध्यापक शिक्षा में प्रयुक्त पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि एवं मूल्यांकन पद्धतियों को निरन्तर विकासशील परिप्रेक्ष्य में रख सकने में मदद मिलेगी जिससे शिक्षक एवं अध्यापक शिक्षा का विशेषज्ञ अपने को इक्सीवीं सदी के मानकों के अनुरूप सशक्त एवं समृद्ध बना सकेगा। यह आज के वैश्विक सन्दर्भ की एक महत्वपूर्ण विवशता है जिसे शिक्षा एवं शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर जानना व परखना होगा। इस परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा की रणनीतियों में बुनियादी तौर पर बदलाव लाने की आवश्यकता है जिससे शिक्षा की प्रक्रिया में अध्यापक निर्भरता के सापेक्ष विद्यार्थी की स्व-निर्भरता एवं दशकों से चली आ रही परावलम्बन की व्यवस्था को स्वावलम्बन एवं स्वायत्तशासी व्यवस्था का रूप दिया जा सके।

अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता

–डा. कुसुम यदुलाल
सहायक आचार्य, शिक्षा शास्त्र, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

भूमिका

सभी जातियां, समाज एवं राष्ट्र निरन्तर गुणवत्ता और उच्चतम लक्ष्यों को छू सकने की होड़ में लगे रहे हैं। यद्यपि गुणवत्ता नियंत्रण, गुणवत्ता आश्वासन, गुणवत्ता प्रबन्धन, गुणवत्ता मंडल और सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन को पश्चिमी जगत में अधिकाधिक एवं स्वत्वाधिकारित (कापी राइटेड) कर दिया गया है, परन्तु भारत में अति पुरातनकाल से ही जीवन शैली में गुणवत्ता पर बल दिया जाता रहा है। छान्दोग्य उपनिषद् में मानवप्राणी को उद्‌बोधित किया गया है कि जो कुछ भी करो, पूरी कुशलता अर्थात् गुणवत्ता के साथ ही प्रत्येक कर्म करो। कठोपनिषद् में नचिकेता सबसे बड़े अधिगम अर्थात् आत्मा के सैद्धान्तिक ज्ञानको यमराज से प्राप्त करना चाहता है। यमराज ने नचिकेता की ज्ञानपीपासा की परीक्षा लेने के विचार से उसे संसार की सारी सम्पदा तथा सौंदर्य प्रदान करने का लालच दिया। नचिकेता अडिग रहा। तब यमराज ने उसे सर्वोच्च ज्ञान देते हुए, यह प्रार्थना की कि केवल ऐसे ही शिक्षार्थी उसके पास आते रहे। प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय में ब्राह्मण काल का तक्षशिला तथा बौद्धकाल का नालंदा आदि सभी विश्वविद्यालय अपनी गुणवत्ता युक्त शिक्षा तथा उत्कृष्टता के लिए विख्यात थे। श्रीमदभगवत् गीता में भगवान श्री कृष्ण महान योद्धा धनुर्धारी अर्जुन को कहते हैं कि **"योगः कर्मेसु कौशलम्"** अर्थात् अपने कर्म में प्रयासपूर्वक गुणवत्ता की तलाश करो। कर्म स्वयं परमात्मा के साथ एकाकार साधना है। यदि मानव जीवन का परम ध्येय सम्पूर्ण

चेतना अथवा ब्रह्म के साथ अपने को अंतर्भावित करना है तो इसे योग द्वारा संतुलित करके अपने कर्म में गुणवत्ता लाने पर बल देने से बेहतर कुछ और नहीं हो सकता है।

अध्यापक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-अध्यापक शिक्षा में अनौपचारिक दृष्टिकोण का प्रचलन बहुत साल पहले हो गया था। सुविधा के लिए अध्यापक किसी भी पृष्ठभूमि को विकासात्मक संदर्भों में ऐतिहासिक तथा आधुनिक युग के एतिहासिक पृष्ठभूमि का विभाजन एवं वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार हैं- **(क) ऐतिहासिक काल** -(1) प्राचीन काल (2500 ई. पू. से 500 ईसा पू.), (2) बौद्धकाल (500 ई. पू. से 1200 ई. पू.), (3) मध्यकाल/इस्लाम काल (1200 ई. से 1700 ई.)। (ख) **आधुनिक काल** (1) ब्रिटिश काल (1700 ई. से लेकर 1947 ई.) (2) स्वातंत्र्योत्तर कालीन काल-- 1947 से आज तक।

अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता

अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता को समझने से पहले प्रत्येक के अर्थ को बेहतर ढंग से समझना होगा तभी गुणवत्ता को समझ सकेंगे।

शिक्षा-शिक्षा व्यक्तिकरण एवं सामाजीकरण की वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति को व्यक्तिगत उन्नति तथा सामाजोपयोगिता को बढ़ावा देती है।

अध्यापक शिक्षा - अध्यापक शिक्षा मात्र आयोजन नहीं है बल्कि वह ऐसा मिशन या आयोजन है जिसके माध्यम से आधुनिक एवं परिवर्तित अध्यापकीय भूमिका के निर्वहन के लिए दक्षता तथा कुशलता प्राप्ति हेतु व्यक्तियों को शिक्षित किया जा सके।

गुणवत्ता-"गुणवत्ता किसी उत्पाद अथवा सेवा के वे समग्र लक्षण एवं विशेषताएँ होती हैं जो उसके बारे में वर्णित अथवा निहित गुणों को पूरा करने की क्षमता रखती हैं।"

गुणवत्ता आश्वासन- आश्वासन से तात्पर्य गुणवत्ता सुनिश्चित

करने के लिए एक रचनात्मक कौशल है, जिसके द्वारा अपव्यय एवं दोषपूर्ण भागों का उत्पादन रोक दिया जाता है। जिसमें गुणवत्ता प्रदान करने के लिए रूपांकन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है।

प्रबंधन–प्रबंधन किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए नियोजन, समन्वय, अभिप्रेरणा तथा नियंत्रण करने की कला है।

संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन–संपूर्ण गुणवत्ता से तात्पर्य है–सतत् सुधार के लिए प्रतिबद्धता और संगठन के सभी सदस्यों की भागीदारी।

शैक्षिक गुणवत्ता प्रबंधन के दो आयाम हैं–(1) गुणवत्ता और (2) आश्वासन। जब कि अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता आश्वासन को देखना है तो गुणवत्ता आश्वासन के विभिन्न सोपानों से होकर गुजरना होगा, जो क्रमशः यथा--

(क) **निरीक्षण-गुणवत्ता**–अध्यापक शिक्षा का गुणवत्तापूर्ण कार्यान्वयन किया जाय।

(ख) **नियंत्रण-उपलंघन** (पहचान)–अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में जहां कमियां हैं, उनकी पहचान करना है।

(ग) **निवारण रोकथाम**–अध्यापक शिक्षा में समस्याओं का निवारण करना है।

(घ) **सतत् सुधार संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन**–अध्यापक शिक्षा में नियमित सुधार करके संगठन के सभी सदस्यों की भागीदारी, सतत् सुधार करके संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन को प्राप्त करना है।

अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता आश्वासन के उपागम एवं गतिविधियां:

1. गुणवत्ता निरीक्षण:

- विद्यालय में आंतरिक निरीक्षण का उत्तरदायित्व संस्था को

सौंपा जाये।

- सत्र की समाप्ति पर मूल्यांकन और पुनः सुधार हेतु सुझाव।
- सेवारत शिक्षकों एवं प्रशासकों को उनकी कमियाँ बताई जायें।
- मानव संसाधनों में कमी हो तो प्रशासकों को जाग्रत किया जाये।
- छात्र-अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का ध्यान रखा जाये।
- समय-समय पर छात्र-अध्यापकों, प्रशासकों एवं पर्यवेक्षकों के लिए सेमिनार, गोष्ठियां और कार्यशालाओं को आयोजन किया जाना चाहिए।
- सरकार, शिक्षा-प्रशासक, विभागाध्यक्ष, अध्यापक, अभिभावक और सामाजिक कार्यकर्ता का सहयोग समय-समय पर प्राप्त होन चाहिए।

2. गुणवत्ता नियंत्रण:

- छात्र-अध्यापकों एवं सेवारत अध्यापको का अनुपात उचित मात्रा में होना चाहिए।
- गुणवत्ता की कसौटी निश्चित की जाये।
- सेवारत अध्यापकों एवं प्रशासकों और पर्यवेक्षकों के उत्तरदायित्व निश्चित किये जायें।
- सेवारत अध्यापकों के कार्यभार का उचित बंटवारा किया जाये।
- सेवारत अध्यापकों को संस्था में सुधार हेतु अवसर प्रदान किये जायें।
- सेवारत अध्यापकों एवं प्रशासकों को सतत् सुधार के लिए प्रेरित किया जाये।
- पत्राचार के माध्यम से नियंत्रण व्यवस्था को कायम रखा

जाये।

- सरकार और अध्यापकों के बीच कार्य में किसी प्रकार की बाधा न हो।
- भौतिक एवं मानवीय संसाधन की उचित व्यवस्था हो।
- उचित समय से वित्तीय व्यवस्था की जाये।

3. गुणवत्ता आश्वासनः

- नियंत्रण हेतु अनुशासन का सख्ती से पालन करना।
- समस्या समाधान निराकरण हेतु रोकथाम पर बल देना।
- क्रियात्मक अनुसंधान के माध्यम से व्यावहारिक समाधान।
- गुणवत्ता का लेखा-जोखा तथा मूल्यांकन।
- शिक्षा से संबंधित विभिन्न आयामों पर शोधकार्य किये जायें।
- निरीक्षण के स्थान पर पर्यवेक्षण को महत्व प्रदान किया जाये।
- बाहरी मूल्यांकन के स्थान पर आंतरिक मूल्यांकन व आत्म सुधार हेतु प्रेरित किया जाये।

4. संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन :

- संस्था के सभी सदस्यों के समक्ष लक्ष्य और उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए।
- शैक्षिक कार्यों में छात्र-अध्यापक एवं अध्यापकों की सहभागिता।
- अध्यापकों और प्रशासकों में ताल-मेल स्थापित किया गया।
- सभी शैक्षणिक एवं गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों के कार्यों एवं

उत्तरदायित्व का उचित बँटवारा।

- शिक्षा विशेषज्ञों एवं शिक्षा जगत से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य रूपांतरण का अधिकार।
- सतत् सुधार के लिए प्रतिबद्धता।
- संगठन के सभी सदस्यों की भागीदारी।
- सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करना।
- संख्यात्मक की जगह गुणात्मक स्वाट (SWOT) मूल्यांकन

  (S-क्षमताएं, W-कमजोरी, O-अवसर, T-खतरे)
- सहयोग एवं समन्वय आधारित कार्यक्रम।
- शिक्षा तथा आत्म सुधार हेतु प्रबल कार्यक्रम स्थापित करें।

इस प्रकार गुणवत्ता आश्वासन के माध्यम से अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में कमियों को जानकर उनका नियंत्रण करके तथा निवारण हेतु रोकथाम करके और सतत् सुधार के माध्यम से शिक्षा में संपूर्ण गुणवत्ता आश्वासन को प्राप्त किया जा सकता है। गुणवत्ता प्रबंधन के सिद्धान्तों को अपनाना होगा। संपूर्ण गुणवत्ता का विषय औद्योगिक क्षेत्रों में प्रमुख रूप से रहा है तत्पश्चात् शिक्षा में इसका विकास हुआ है। शिक्षा में इसके दर्शन को विकसित करने का श्रेय प्रो. डेमिंग तथा जुरान को जाता है। इन्होंने संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंध के लिए कुछ विशिष्ट बिंदु बताये हैं जो संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन सिाद्धन्त के रूप में विख्यात हैं, जिनका अध्यापक शिक्षा में निहितार्थ इस प्रकार है:-

संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन सिद्धान्तों का अध्यापक शिक्षा में निहितार्थ सुझाव-

1. **उत्पाद तथा सेवा के उद्देश्य के प्रति सुसंगति का निर्माण करके, प्रतिस्पर्द्धा करते हुए, व्यवस्था में टिके रहकर,**

कार्य देते रहना-संस्थाओं को ज्ञान के विस्फोट तथा अधिगम की शैलियों में परिवर्तन को देखते हुए, लगातार सुधार करते रहना चाहिए। संस्थाओं को दीर्घ एवं मध्य अवधि के विकासशील परिप्रेक्ष्य के अनुसार विकास की दिशा में बढ़ते रहना चाहिए।

2. **नए दर्शन को स्वीकार करें**-गुणवत्ता की यात्रा निरंतर चलती रहती है, इसे संस्था के सेवा-लक्ष्य का अंग बना लें। नए दर्शन को स्वीकार करके छात्र अध्यापक के सर्वांगीण विकास संबंधी उपागम को अपनाएं, यथा सीखने के चार स्तंभों पर शिक्षा का निर्माण।

3. **सामूहिक निरीक्षण द्वारा गुणवत्ता प्राप्ति पर निर्भर न रहें**-शिक्षा संस्थाओं में गुणवत्ता प्राप्ति के लिए सामूहिक रूप से निरीक्षण द्वारा गुणवत्ता प्राप्ति पर निर्भर न रहें और बाहरी निरीक्षण के स्थान पर गुणवत्ता आश्वासन तथा आंतरिक मूल्यांकन कार्य-प्रणाली को अपनायें।

4. **कीमतों के आधार पर व्यवसाय देना समाप्त करें**-सबसे अच्छे शिक्षकों तथा शिक्षण संसाधनों के विकल्प को सबसे कम कीमत के अनुसार नहीं, योग्यता-क्षमता के अनुसार स्वीकार करें।

5. उत्पादन एवं सेवा में स्थिर एवं सतत्-सुधार द्वारा गुणवत्ता एवं उत्पादकता में सुधार लाकर स्थिर रूप से लागत में कमी लाएँ।

   स्थिर रूप से, शिक्षण, छात्र आकलन और प्रबंधन में सुधार लाकर गुणवत्ता बढ़ाएँ और अपव्यय घटाकर लागत में कमी लाएँ।

6. **सेवाकालीन प्रशिक्षण दें**-अध्यापकों के लिए संस्था में ही सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करें।

7. **नेतृत्व संस्थापित करें**-उत्तरदायित्व एवं प्राधिकार विकेंद्रित करके अध्यापकों में नेतृत्व संस्थापित करें।

8. **भय को भगा दें ताकि प्रत्येक अध्यापक प्रभावी ढंग से कार्य कर सके**-इसके लिए शिक्षकों को नवाचार के लिए उत्साहित करें, उन्हें सुरक्षा तथा असफलता के अधिकार के प्रति आश्वस्त करें, समान रूप से सफलताओं एवं नवाचार के प्रयोगों की असफलताओं को भी सम्मान प्रदान करें।

9. **विभागों के बीच की बाधाओं को तोड़ दें**--संस्थाओं में अंतर्विद्यापरक उपागम को अपनाकर अन्तर विषय शास्त्रीय कार्यदलों का गठन करें अंतर-विभागीय गतिविधियाँ आयोजित करें।

10. **कार्य भली भांति करने के लिए बना अधिक श्रमशक्ति एवं बेहतर कार्य पद्धति के उत्पादकता के नए स्तर प्राप्त करने के लिए नारे, उद्बोधन और लक्ष्य-निर्धारण से दूर रखें**-अध्यापक शिक्षा में उपदेश और नारों को तिलांजलि दे दें। उसके स्थान पर गुणवत्ता सुधार के लिए प्रत्येक को उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान करें, ताकि वे अपना कार्य पहले की अपेक्षा कुछ उत्तम ढंग से कर सकें।

11. **जिन कार्य-मानकों में संख्यात्मक नियतांश (कोटा) दिए गए हों, उन्हें निकाल बाहर करे**-अध्यापक शिक्षा में संख्यात्मक कोटा पर कम जोर दें। अध्यापकों के नामांकन और प्रत्येक गतिविधि में गुणात्मक चेतना का निर्माण करें।

12. **उन बाधाओं के बंधन हटा दें, जो व्यक्तियों द्वारा अपनी कार्य कुशलता के लिए गर्व करने के अधिकार का हनन करते हैं**-अध्यापक शिक्षण कार्य में नव-प्रवर्तन तथा विलक्षणता को प्रोत्साहन तथा मान्यता प्रदान करें तथा मार्ग के अवरोधों को हटाकर नए प्रयोगों के लिए सुविधाएं प्रदान करें।

13. **शिक्षा तथा आत्म-सुधार का प्रबल कार्यक्रम संस्थापित करें**-संस्था में ऐसी कार्यप्रणाली विकसित करें, जिससे प्रत्येक अध्यापक अपने विकास का पथ-निर्माण और अपने लक्ष्य प्राप्त करने की विधि का सृजन स्वयं कर सके।

14. **संस्था के प्रत्येक कार्मिक को इस तरह काम बांटें कि वह स्वयं अपना रूपांतरण कर सके**-संस्था के प्रत्येक अध्यापक को नवाचारी परिकल्पना, सेवा एवं कार्यों के लक्ष्य निर्धारण में सहभागिता प्रदान करें, प्रत्येक को संस्था की त्रुटियां पहचानने, योजना बनाने और सुधार कार्यक्रमों के कार्यक्रमों के कार्यपालन में शामिल करें।

अध्यापक शिक्षा हेतु सुझावः

प्रबंधकों के लिएः

- छात्र-अध्यापक एवं सेवारत अध्यापकों का अनुपात उचित मात्रा में होना चाहिए।
- गुणवत्ता की कसौटी निश्चित की जाये।
- प्रबंधन तंत्र में सक्रियता को बढ़ाया जाए।
- भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की उचित व्यवस्था की जाए।
- विद्यालय में आपदा प्रबंधन प्रकोष्ठ की स्थापना की जाए।
- सतत् सुधार के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। कार्यालयी कार्य के लिए कार्यालय सहासक को अतिरिक्त धनराशि दी जाये।
- कार्यालयी कार्य के लिए कार्यालय सहायक को अतिरिक्त धनराशि दी जाये।
- विद्यालय में पर्यवेक्षण की उचित व्यवस्था की जाए।

- विभागीय व्यक्तियों में तालमेल एवं समन्वय स्थापित किया जाए।
- सलाह व सहायता के लिए विशेषज्ञों की मदद ली जाए
- सभी अध्यापकों एवं कर्मचारियों के कार्यों का उचित बंटवारा किया जाए।
- संगठन के सभी सदस्यों की भागीदारी होनी चाहिए।
- अपव्यय एवं अवरोधन की रोकथाम की जाए।

अध्यापकों के लिए:

- छात्रों एवं अध्यापकों का अनुपात नियमानुसार होना चाहिए।
- शिक्षा अनुदेशन हेतु अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण सुविधा प्रदान की जाए।
- उचित साधन, सुविधा, वेतन तथा आवास की सुविधा उपलब्ध कराई जाए।
- शिक्षण जिम्मेदारी को ध्यान में रखकर कार्यभार सौंपा जाए।
- नवाचार अनुकूलन व रचानात्मक परिवर्तन का अधिकार दिया जाए।
- संख्यात्मक के स्थान पर गुणात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाए।
- विद्यालय में क्रियात्मक अनुसंधान करने के लिए प्रेरित किया जाए।
- अतिरिक्त समय देने पर अतिरिक्त राशि की व्यवस्था की जाए।
- अध्यापकों का केंद्र, राज्य, जिला तथा राज्य स्तरों पर सम्मान एवं पुरस्कार योजना लागू किया जाए।

- अध्यापकों की कार्यकुशलता, कर्त्तव्यनिष्ठा हेतु उनकी जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिए।

छात्र-अध्यापक के लिए:

- शिक्षा अधिनियम के अंतर्गत सभी सुविधाएं उचित समय पर उपलब्धा कराई जाएं।
- छात्रों को सत्र प्रारंभ होने के तुरंत बाद ही सत्रीय प्रशिक्षण संबंधी जानकारी उचित समय से उपलब्ध कराई जाए।
- समस्त शिक्षण अधिगम सामग्री मातृभाषा में उपलब्ध कराई जाए।
- विद्यालय में छात्रों को निर्देशन एवं परामर्श सुविधा उपलब्ध कराई जाए।
- छात्रों को उचित स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराई जाए।

समाज और समुदाय के लिए:

- समुदाय विशेष में शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी में शामिल किया जाए।
- अध्यापक शिक्षा के बारे में समाज और समुदाय के सम्मुख लक्ष्य और उद्देश्य की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए।
- महिला शिक्षा के प्रति सभी को जागृत किया जाए तथा इनके विशेष शिक्षण की व्यवस्था की जाए।
- ग्रामीण स्तर पर समाज के प्रमुख व्यक्तियों को भी अनिवार्य शिक्षा में सहभागी बनाया जाये।
- सरकारी सुविधाएँ समाज समुदाय द्वारा सीधे व्यक्तियों को उपलब्ध कराई जायें।

- अध्यापक कार्यकर्ता के रूप में जो भी व्यक्ति कार्य करें, उसे उचित धनराशि और सम्मान एवं पुरस्कार दिया।

अन्य सुझाव :

(1) अध्यापक शिक्षा में उनके हितों को ध्यान में रखकर गतिविधियाँ की जायें।

(2) सम्पूर्ण अध्यापक शिक्षा व्यवस्था सतत् सुधार पर आधारित होनी चाहिए।

(3) सेवारत अध्यापकों के लिए सुधारात्मक गुणवत्ता कार्यक्रम बनाये जायें।

(4) आवश्कतानुसार अतिरिक्त मानवीय एवं भौतिक संसाधन उपलब्ध कराये जायें।

(5) विविध प्रकार की बजटों की व्यवस्था की जाये, जो अध्यापक शिक्षा की आश्यकतानुसार हों।

(6) सूचना एवं तकनीकी सेवा की सहायता से अध्यापकों एवं अभिभावकों को सम्पर्क सुविधा हो और मिलकर समस्या का समाधान निकाला जाये।

(7) अध्यापकों का शिक्षण मानदेय तथा वेतन वृद्धि की जाये।

(8) अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान किया जाये।

(9) अध्यापकों को गुणवत्ता कार्यनीति, मूल्यांकन व्यवस्था स्पष्ट होना चाहिए।

(10) अध्यापकों के लिए सतत् गुणवत्ता सुधार योजना होनी चाहिए।

(11) अध्यापकों के लिए दीर्घकालीन योजनाएँ बनाई जायें।

(12) अध्यापक संगठन के सभी कर्मचारियों को भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

(13) अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता कायम रखना ही हमारा प्रमुख लक्ष्य है, इस हेतु गोष्ठी, संगोष्ठी, कार्यशाला तथा समय-समय पर वार्तालाप आयोजित किये जाने चाहिए।

अंत में कह सकते हैं कि अध्यापक शिक्षा में संपूर्ण गुणवत्ता लाने हेतु शैक्षिक संस्थाओं, शिक्षाविदों, समाज, समुदाय, सरकार एवं इससे जुड़े व्यक्तियों को एकजुट होकर आगे आना होगा, तभी इस गुणवत्ता को कायम रखा जा सकता है।

संदर्भ

1. प्रो. मर्मर मुखोपाध्याय (2002)-शिक्षा में संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली
2. एन. सी. ई. आर. टी. (1998)-गुणात्मक विद्यालय शिक्षा हेतु दक्षता आधारित प्रतिबद्धता उन्मुख अध्यापक शिक्षा, एन. सी. ई. आर. टी. दस्तावेज, नई दिल्ली
3. जीत-बी. योगेन्द्र (2002)-शिक्षा में नवाचार एवं नवीन प्रवृत्तियां, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (1986)-राष्ट्रीय शिक्षा नीति, नई दिल्ली
5. शुक्ल, रमाशंकर(1989)-शिक्षक-शिक्षा दशा एवं दिशा, अक्षत प्रकाशन, उदयपुर, (राज.)
6. ओड, एल. के. (1998)-शिक्षा में नूतन आयाम, हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपूर (राज.)
7. शर्मा, आर. ए. (1993)-- अध्यापक शिक्षा, लायल बुक डिपो, मेरठ
8. शर्मा, देव दत्त-- शैक्षिक प्रबंधन के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता

–डॉ. विमलेश शर्मा
सहायक आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग हैं यह विकास की प्रक्रिया है, निरन्तर चलायमान है मनुष्य प्रत्येक परिस्थिति में कुछ न कुछ अवश्य सीखता है। शिक्षा मनुष्य का सर्वतोन्मुखी विकास करती है एवं समाज के समस्त विकास की आधारशिला भी है, यह शिक्षा मानव का निर्माण कर उसे व्यवहार योग्य भी बनाती है। शिक्षा के माध्यम से ही अर्न्तनिहित गुणों का विकास संभव है इस विकास के लिए विद्यालय जो लघु समाज का प्रतिबिम्ब है इस प्रकार का वातावरण प्रस्तुत करते हैं जहाँ राष्ट्र के भविष्य का निर्माण होता है इस निर्माण कार्य को सुस्थिर दिशा प्रदान करने का कार्य शिक्षकों को है जो इस दायित्व का निर्वाह अति को सरलता से करते हैं इसी निर्माण कार्य हेतु शिक्षकों को ब्रह्मा, विष्णु महेश के सदृश माना जाता हैं–

गुरूब्रह्मा, गुरूविष्णुः, गुरूदेवो महेश्वरः।
गुरू साक्षात्परम् ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।

अध्यापक प्रदत्त शिक्षा व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता का अनिवार्य अंग हैं। एच.सी.वेल ने भी कहा है कि "अध्यापक इतिहास निर्माता है राष्ट्र का इतिहास विद्यालयों में लिखा जाता है और विद्यालय अध्यापकों की गुणवत्ता से भिन्न नहीं हो सकते हैं"।

प्रो. दौलतराम कोठारी आयोग 1964–66 के अनुसार–"भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है।"

यह सर्वमान्य तथ्य है कि दिन प्रतिदिन तीव्रता के साथ ज्ञान में वृद्धि होती जा रही है। प्रत्येक क्षेत्र में नये विचार, तथ्य, सिद्धान्त, नियम,

विधियों तथा तकनीकी आदि का समावेश सूचनाओं के क्षेत्र को विस्तृत कर रहा है। स्वाभाविक है अध्यापक शिक्षा का कार्यक्रम भी इससे अछूता नहीं हीं जो कि एक व्यावसायक के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। जिसका मुख्य उद्देश्य–

Teacher Education aims at providing knowledge, understanding theories, principles laws, facts and other regarding teaching activity to the perspective teachers, such as.

1. सेवापूर्व अध्यापक–

Progres of transfaration of lay persons into competents and committed professional education.

2. सेवारत् अध्यापक–

Refers to a need based continuing education for teachers already on the job to update and enrich their professional competenejes, strength their commitment and enhance their professional performes in the classroom.

These teachers& Pre service and inservice go into the field apply the given knowledge in thier real professional life.

प्रस्तुत लेख अध्यापक-शिक्षा की गुणवत्ता को पाँच स्तम्भों-उत्पाद Product, प्रक्रिया Process, संस्था Organization, नेतृत्व Leadership तथा समर्पण Commitment के सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है–

''अध्यापक ही गुणवत्ता का आधार है।'' जब हम गुणवत्ता की चर्चा करते हैं। तब गुणवत्ता से तात्पर्य - किसी वस्तु को कोई कितनी महत्व देता है यह उस वस्तु की गुणवत्ता मानी जाती है। Quality is the value of some thing by someone,.

अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ गुणवत्ता का अर्थ-प्रभावशाली अध्यापक तैयार करना से है। प्रभावशाली सापेक्ष शब्द है। इसीलिए प्रभावशीलता का मापदण्ड बदलता रहता है। अध्यापक प्रभावशीलता के मानदण्ड-योग्यता, प्रक्रिया तथा उत्पांद से है। अध्यापक शिक्षा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रक्रिया

(शिक्षण) की प्रभावशीलता से है कि छात्रों में शिक्षण की दक्षताओं, क्षमताओं का विकास करना जिससे वे शिक्षण में सक्षम हो सके। अध्यापक शब्द व्यापक है। शिक्षक की समाज में अहम् भूमिका सुनिश्चित-होती है। समाज, राष्ट्र के सन्दर्भ में अध्यापक को गुरु से सम्बोधित किया जाता है।

A Guru is the one who stimulate the thought process of wisher discaible and direct him towards the path righteousness.

अध्यापक से तात्पर्य–शिक्षण-क्रियाओं तथा सम्बन्धी कार्यक्रमों का संचालन सम्पादन प्रभावशाली ढंग से करने से है।

अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में–छात्राध्यापकों में व्यवहार परिवर्तन हेतु शिक्षण-क्रियाओं तथा कार्यक्रमों निष्पादन की दक्षता विकसित करने से है।

शिक्षा का अर्थ–शिक्षण का प्रशिक्षण से है जिसके द्वारा छात्राध्यापकों में शिक्षण-क्रियाओं एवं कौशलों का विकास करना है जिससे कक्षा में पाठ्यक्रमों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सके।

इस प्रकार अध्यापक-शिक्षा की गुणवत्ता से तात्पर्य - कक्षा-शिक्षण को प्रभावशाली बनाने से है अर्थात्-पाठ्यवस्तु प्रस्तुतीकरण, अनुदेशनात्मक प्रक्रिया पर अवलोकन कर छांत्राध्यापकों में कक्षा-शिक्षण कुशलता एवं दक्षताओं तथा संज्ञानात्मक भावात्मक, क्रियात्मक गुणों का विकास किया जा सके।

अध्यापक-शिक्षा की गुणवत्ता के पाँच स्तम्भ बताये गये हैं जो इस प्रकार से हैं-

* उत्पाद – Product
* प्रक्रिया – Teaching & Learning
* संस्था – Organization

* नेतृत्व - Leadership
* समर्पण - Commitment

संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है-

1. उत्पाद-Product

किसी भी संस्था का केन्द्रबिन्दु है। जिससे उद्देश्य प्राप्ति एवं उपलब्धि के ग्राफ तक पहुंचा जाता हैं। अर्थात् छात्र अध्यापकों रूपी उत्पाद को इस प्रकार का प्रशिक्षण देना जिससे उनमें अपेक्षित योग्यताओं दक्षताओं तथा कौशलों का विकास किया जा सके।

2. प्रक्रिया-Teaching Learning Process

किसी भी उत्पाद मे गुणवत्ता प्रक्रिया की गुणवत्ता बिना असंभव है। अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में प्रक्रिया से तात्पर्य- कक्षा-शिक्षण को जो अधिगम से सम्बन्धित होती है। अध्यापक-प्राध्यापक प्रक्रिया के लिए असंख्य शिक्षण प्रक्रिया-विधियों का प्रयोग छात्रों के व्यवहार परिवर्तन रूपी अधिगम के लिए करता है।

- परम्परागत शिक्षण-विधियों के अन्तर्गत व्याख्यान, पुस्तक, श्यामपट्ट, चॉक, ओ.एच.पी.। P.Chaug प्रशिक्षण-सूचनाओं का प्रवाह, व्याख्यान आधारित सामग्री, सिद्धान्तों पर अधिक महत्व, रटने पर बल, परम्परागत-शिक्षण के अन्तर्गत अध्यापक-प्राध्यापक कक्षा शिक्षण अधिगम वातावरण का नियन्त्रक होता है।

  लेकिन शिक्षण विधियों का परिदृश्य छात्र केन्द्रित अधिगम पर अधिक बल दिया जा रहा है।

- आधुनिक शिक्षण-विधियों के अन्तर्गत अध्यापक-प्राध्यापक केवल निर्देशक का कार्य करता है। छात्रों को व्यक्तिगत गति से सीखने, सक्रिय अधिगम, सहयोगात्मक एवं प्रतिस्पर्धात्मक होता है। उदाहरण

*** ई-अधिगम-**

संगणक एवं, नेटवर्क पर ज्ञान, कौशलों का हस्तांरण से शिक्षण स्तरों में वृद्धि, शिक्षण पर अधिक बल, समय एवं धन की बचत तथा ऑन लाइन अधिगम से छात्रों का सम्पर्क रहता है।

*** एम-अधिगम-**

एक ऐसा अधिगम हैं जो छात्रों को मोबाइल तकनीकी द्वारा सीखने के असंख्य अवसर प्रदान करता हैं।

– सतत् सम्प्रेषण

– शैक्षिक उदाहरणों की अधिकता

– कक्षा में वायर लैस पूलिंग

– शिक्षण-अभ्यास नवाचार युक्त

– सहयोगात्मक प्रवृत्ति

– ठोस सम्प्रेषण

– शिक्षण-अधिगम वातावरण उत्तम

ई-अधिगम तथा एम-अधिगम जैसी आधुनिक शिक्षण-विधियाँ छात्रों को सीखने के लिये विस्तृत प्लेटफार्म प्रदान करती हैं।

3. संस्था-Organization

अध्यापक-शिक्षा के सन्दर्भ में प्रक्रिया (शिक्षण) में गुणवत्ता संस्था के बिना असंभव है। अर्थात् कक्षा-शिक्षण प्रक्रिया का नियोजन, संचालन ही संस्था की प्रगति है।

4. नेतृत्व-Leadership

कुशल प्रशासक के बिना संस्था अर्थहीन है। अर्थात् प्रशासक के सही नियोजन, संगठन, संचालन से शैक्षिक एवं प्रशासनिक कार्य कुशलतापूर्वक एवं कर्त्तव्य-निष्ठा द्वारा सम्पन्न कर संस्था को उन्नति के

शिखर पर खड़ी होती हैं।

5. समर्पण-Commitment

शक्तिशाली, मजबूत समर्पण सभी के लिए आवश्यक है। इसका दायित्व सबसे अधिक शिक्षकों को जाता हैं।

Commitment refers to an internal resolve to carryout a benevolent act at any cost, Better to wear out than to rust out.

– शिक्षण व्यवसाय के प्रति समर्पण

– अधिगमकर्ता के प्रति समर्पण

– समाज के प्रति समर्पण

– अस्तित्व के प्रति समर्पण

– मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण

अध्यापक के समर्पण के साथ सम्मिलित हैं बहुआयामी दक्षताएँ–

दक्षता से तात्पर्य–सशक्तिकरण का वह तत्व जो शिक्षा को प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता हैं।

Competency is an element of empowerment acquired through the process of education.

Quality of education is the aequistion of competeny of the mastery level.

अध्यापक को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के नियोजन में, संचालन में निम्न दक्षताओं का उपयोग किया जाना चाहिए–

– शिक्षा के प्रति विस्तृत दृष्टि

– पाठ्यवस्तु का समग्र स्वरूप

– पाठयसहगामी क्रियाओं विषयक दक्षता

– सामान्य, विषयी, स्तरानुकूल दक्षताओं का क्रियान्वन–

* शिक्षक निर्देशित अधिगम

* अन्तः सम्बन्धित अधिगम

* स्वतः अधिगम

– शैक्षिक क्रियाकलाप

– अधिगम सम्बन्धी शिक्षण–सामग्री

– गुणवत्ता–प्रबन्धन दक्षता

– सतत्, व्यापक मूल्यांकन दक्षता

– अभिभावक परामश दक्षता

– समाज आधारित दक्षता

कुशल अध्यापक के रूप में शिक्षण की प्रभावशीलता शिक्षक की योग्यता दक्षताओं तथा समर्पण पर केन्द्रित होती है। क्योंकि अध्यापक शिक्षा ज्ञान एवं कौशल केन्द्रित है यह कार्यक्रम में असंख्य विषयों–इतिहास, मानवशास्त्र समाजशास्त्र, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन से जोड़कर एक सूत्र में बंध जाता है अध्यापक प्रशिक्षण एक अनुभव है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति में स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता हैं जिससे वह अपना कार्य पूर्ण रूप से कर सके। प्रशिक्षण के अन्तर्गत कौशल परिवर्तन, ज्ञान अभिवृत्ति तथा सामाजिक व्यवहार को समाहित किया जाना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता हेतु सुझाव–

– अध्यापक की जवावदेही सुनिश्चित हो P.Chang अध्यापक प्रतिबद्धता अनिवार्य रूप से छात्र कल्याण के प्रति होनी चाहिए।

– अध्यापकों की स्वयं की आचार–संहिता होनी चाहिए जिससे वह व्यवसाय के साथ न्याय कर सकें।

– शिक्षण व्यवहार को आंकलन हेतु मानकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

– अध्यापकों की जागरूकता सामाजिक सामुदायिक सहभागिता के प्रति सुनिश्चित होनी चाहिए।

– अध्यापक शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर शोध कार्य किया जाना चाहिए। P.Chang अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता का प्रबन्धन हेतु बुनियादी प्रश्नों क्या, क्यों, कौन-कौन, कैसे तथा कोई अपेक्षा रूपी आशा में सामांजस्य स्थापित होना चाहिए।

– अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिकता का सामांजस्य अनुभवों एवं परिस्थितियों के आधार पर होना चाहिए।

– अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता हेतु नवाचार युक्त शिक्षण-विधियाँ जो कि अधिगमकर्ता केन्द्रित होनी चाहिए।

– आज समस्त विश्व कक्षा में आ जाता है। The world comes into the class, ई-अधिगम एवं एम अधिगम के माध्यम से शिक्षक छात्रों को असंख्य तत्वों को समझा सकते हैं।

– शिक्षण अभ्यास कार्यक्रम में ब्लॉक शिक्षण की व्यवस्था से भी छात्रों को सीखने के अवसर प्रदान करता हैं।

– सामुदायिक अनुभवों का ज्ञान भी छात्रों के हित में होता है जिससे वे वास्तविकता को समझ सके।

अन्त में यही कहा जाता है कि अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता-शक्तिशाली अध्यापकों की दक्षताओं तथा समर्पण पर निर्भर करती है। गुणवत्ता के स्तम्भ-उत्पाद, प्रक्रिया, संस्था, नेतृत्व शिक्षकों के समर्पण स्तम्भ पर स्थित होता है क्योंकि एक स्तम्भ दूसरे के बिना अधूरा हैं। सभी सामांजस्य अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को गुणवत्ता प्रदान करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

संदर्भ–

* Gage N.L. (1983) "Hand book of Researeh on Teaching"
* MC Nalley Co, New York
* Huntere (1999) "Encounter in the class room-New way of teaching Holt Rinehart Wunstavi 1nc New York.
* Mukhopadhy M. (200) "Total Quality Management" sage publication ND
* Bihist S. (2011) "Quality Management in Teacher-Education" Kiran Book service. New Delhi.
* Goel (2011) "Educational Administration and Management" Kiran Book service, ND
* शर्मा आर.ए. (2011) ''अध्यापक शिक्षा'' लायल बुक डिपो मेरठ उ. प्रदेश
* भट्टाचार्य (2011) ''अध्यापक शिक्षा'' दरियागंज, नई दिल्ली
* अज्ञात (2011) ''अध्यापक शिक्षा–पत्रिका'' Vol-VI, No-II नई दिल्ली
* चौरसिया (2002) ''शिक्षण का चमत्कार पत्रिका'' Vol-2 भारत सरकार, नई दिल्ली

अध्यापक शिक्षा में व्यावसायिक आचार

–डॉ. मनीषा तनेजा पाहुजा
अतिथि व्याख्याता, शिक्षा शास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

कुछ दिन पहले मैंने एक प्रसिद्ध समाचारपत्र में पढ़ा था कि बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा करने वाला राष्ट्रीय आयोग (NCPCR) जल्द ही उन अध्यापकों के लिए कार्यवाही करने का प्रावधान करेगा जो बच्चों से उनके रंग, लिंग, धर्म और जाति आदि के आधार पर भेदभाव करते हैं। पढ़कर हैरानी हुई कि शिक्षक जो कि समाज को सही–गलत की पहचान करवाता है, जो समाज को बदलने की ताकत रखता है, जो शिक्षा की बात करता है। शिक्षा जो कि अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाती है वह शिक्षक अंधविश्वास की बात कैसे कर सकता है? उस समाचार में फरवरी 2010 में कोलकाता के 13 वर्षीय छात्र रोवनजित रावला की आत्महत्या की बात को मुख्य कारण बताया गया। रोवनजित ने यह कदम इसलिए उठाया क्योंकि उसे बेंत से बुरी तरह से अध्यापक द्वारा पीटा गया था। इस समाचार ने मुझे यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि एक अध्यापक की भी तो कुछ सीमाएँ होती हैं। प्रत्येक व्यवसाय की कुछ आचार–संहिता होती है। अध्यापकों को भी तो कुछ आचार–संहिता का पालन करना होता है तथा अध्यापक की यह आचार–संहिता छात्रों, अभिभावकों तथा साथी अध्यापकों के प्रति भी होती है।

किसी भी व्यावसायिक समुदाय द्वारा कुछ मानकों का समूह निश्चित किया जाता है जिन्हें व्यावसायिक आचार की संज्ञा प्रदान की गई है। इन्हें आचार संहिता (code of ethies) भी कहा जाता है। ये हमें बताते हैं कि व्यवसाय में हमारे दायरे कहाँ तक हैं अर्थात् हमें किन सीमाओं में रहकर कार्य करना है। यह आचार उपागम (Ethical Approach) निम्न घटकों से मिलकर बनता है–

1. **ईमानदारी** (Honesty)—हमें अपने व्यवसाय के प्रति ईमानदार होना चाहिए।
2. **पूर्णता** (Integrity)—अपने व्यवसाय में प्रत्येक कार्य हमें पूर्णता से करना चाहिए।
3. **पारदर्शिता** (Transparency)—हमारे द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कार्य में पारदर्शिता होनी चाहिए। सब कुछ बिल्कुल साफ और स्पष्ट होना चाहिए।
4. **जवाबदेही** (Accountability)—जो भी कार्य हमारे द्वारा किए जाए हमें उसके प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी होना चाहिए।
5. **गोपनीयता** (Confidentiality)—जहाँ आवश्यक हो वहाँ गोपनीयता बनाए रखना भी बहुत आवश्यक है। अन्यों का आदर करना व्यवसाय की माँग है।
6. **वस्तुनिष्ठता** (Objectivity)—कार्य में वस्तुनिष्ठता होना बहुत आवश्यक है। आत्मनिष्ठ भाव ईमानदारी का लक्षण नहीं है।
7. **आदरपूर्णता** (Respectfulness)—किसी भी व्यवसाय में आदरपूर्ण भावना की बहुत आवश्यकता है।
8. **नियम बद्धता** (Within the law)—व्यवसाय नियम के भीतर रहकर कार्य करना सिखाता है।

अध्यापकों के लिए व्यावसायिक आचार संहिता (Code of Professional Ethics) उन्हें छात्रों, अभिभावकों, साथी अध्यापकों तथा समुदाय के लिए कर्त्तव्यों के सिद्धान्त का एक ढाँचा (Framework) प्रदान करता है। अध्यापकों के मध्य व्यवसायीकरण (Professionalism) को सुरक्षित (ensure) करने के लिए आवश्यक है कि अध्यापन व्यवसाय में नीतिगत सिद्धान्तों की जागरूकता को बढ़ाना।

छात्रों के प्रति अध्यापकों के कर्त्तव्य

1. निष्पक्ष (Impartial)—अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह छात्रों को शिक्षा प्रदान करते समय उनकी जाति, धर्म, लिंग, आर्थिक परिस्थिति,

भाषा व जन्मस्थान आदि को विशेष महत्त्व न दे। लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों, सहनशीलता, सामाजिक न्याय और समानता के लिए अध्यापक के विश्वास छात्रों को इन मूल्यों को सीखने के लिए एक उपयुक्त वातावरण प्रदान करते हैं।

2. छात्र को उसकी शक्ति (Potential) एवं प्रतिभा की अनुभूति करवाने के लिए प्रयास करना–छात्र की शक्ति (Potential) और प्रतिभा को पहचानना अध्यापक का मुख्य उत्तरदायित्व है। अध्यापकों को छात्रों की बहुमुखी प्रतिभा यथा खेलकूद, संगीत, नृत्य तथा अन्य सृजनात्मक प्रतिभाओं को पहचानकर उन्हें उन क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसके लिए अध्यापक को पाठ्यक्रम सम्पादन (Curriculum Transaction) में ऐसी शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए जिनसे छात्रों में छिपी प्रतिभाओं को बाहर निकाला जा सके। आज जब शिक्षा छात्र-केन्द्रित हो गई है तो अध्यापक की भूमिका को बदलना होगा। अध्यापक केवल 'ज्ञान प्रदाता' (Knowledge provider) न होकर ज्ञान उत्पादन की परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाला अर्थात् सुगमकर्त्ता (Facilitator) होना चाहिए। विभिन्न गतिविधियों एवं परिस्थितियों में यदि छात्रों को सम्मिलित किया जाए तो वे उनमें से नए विचारों एवं उपस्थित विचारों को एकत्रित करके नए ज्ञान की संरचना स्वयं कर लेते हैं। सक्रिय गतिविधियों में सम्मिलित हैं–पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद-विवाद, क्रिया (Application) और पुनर्विचार (Reflection).

3. छात्रों की गोपनीयता का अवलम्बन करना–अध्यापक केवल शिक्षण कार्य ही कक्षा में सम्पादित नहीं करता अपितु छात्रों का निर्देशक भी होता है। छात्र कभी-कभी अपने निजी मामलों में भी अध्यापक से निर्देशन प्राप्त करते हैं। यहाँ अध्यापक का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। अध्यापक को छात्रों की गोपनीयता को भी बरकरार रखना चाहिए। छात्रों की इस गोपनीय सूचना को छात्रों के अच्छे भविष्य के लिए न्यायपूर्ण ढंग से पूरे उत्साह के साथ बाँटा जा सकता है। सार्वजनिक रूप से ऐसी सूचनाओं की चर्चा करना उसके व्यक्तित्व को तो प्रभावित करेगा ही साथ ही साथ उसके विकास एवम् अभिवृद्धि में भी बाधा उत्पन्न करेगा।

4. शारीरिक दण्ड व सांवेगिक उत्पीड़न से बचना—अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह शारीरिक दण्ड व सांवेगिक उत्पीड़न, जिसमें यौन उत्पीड़न भी सम्मिलित है का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शारीरिक उत्पीड़न के निशान दिखाई दे सकते हैं परन्तु सांवेगिक उत्पीड़न का बहुत गहरा प्रभाव होता है जो कि पीड़ित के मस्तिष्क में बहुत गहरे निशान छोड़ जाता है। यौन उत्पीड़न जैसे दुष्कर्म में छात्रों के समक्ष अध्यापक की प्रतिष्ठा खराब हो जाती है तथा छात्र एक मानसिक चोट (Emotional Trauma) का शिकार बन जाता है।

अभिभावकों के प्रति अध्यापकों के कर्त्तव्य

1. अभिभावकों के साथ हार्दिक सम्बन्ध स्थापित करना—छात्र को जानने में अध्यापक व अभिभावक के मध्य स्थापित संबंध की गुणवत्ता छात्र व अभिभावकों के मध्य एक अच्छा समझ का वातावरण तैयार कर सकता है। रूकावट के वातावरण में अधिगम प्रभावित हो सकता है। यदि अध्यापक व छात्र के मध्य रूकावट होगी तो अध्यापक छात्र की प्रतिभा को निखार नहीं पाएगा। अतः अध्यापक व छात्र के मध्य सौहार्द्रपूर्ण संबंध होना चाहिए। अधिकतर अध्यापक द्वारा अपने बच्चे की प्रगति के बारे में जानने के लिए अभिभावक उत्सुक रहते हैं। अध्यापक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह छात्र के अच्छे कार्यों को उनके अभिभावकों को बताएँ तथा अभिभावकों के साथ हार्दिक संबंध स्थापित करें।

2. अन्य छात्रों के सामने किसी छात्र को नीचा दिखाना (Lowering Esteem)—अन्य छात्रों के सामने किसी छात्र को नीचा दिखाना भी घातक सिद्ध हो सकता है। अध्यापक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उनके अभिभावकों के सामने भी उन्हें नीचा नहीं दिखाना चाहिए। अध्यापक को छात्र के प्रति अवमाननायुक्त कथनों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। अभिभावकों के समक्ष उनके बच्चे की तुलना अन्य छात्रों से करना भी श्रेयस्कर नहीं क्योंकि प्रत्येक छात्र अपनी गति के अनुसार अधिगम करते हैं। छात्र अपनी रूचि के अनुसार के क्षेत्रों में प्रगति करें ऐसी ही प्रक्रिया को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

3. छात्रों के मध्य भारत की संयुक्त संस्कृति के लिए आदरभाव विकसित करने का प्रयास करना—अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह भारतदेश की संयुक्त संस्कृति के प्रति आदर भाव रखे। छात्रों के मध्य यह भावना विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं के द्वारा पनपाई जा सकती है। अभिभावकों के साथ भी भेदभाव रहित बातचीत करना ही अधिक उपयुक्त माना जाता है। अतः अध्यापक को भारतीय संस्कृति का आदर करना चाहिए।

साथी अध्यापकों एवं व्यवसाय के प्रति कर्त्तव्य

1. निरंतर व्यावसायिक विकास के लिए प्रयत्न करना—आज के ज्ञानयुग में प्रत्येक मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन में निरंतर अधिगम करता रहे। अध्यापक को भी जीवनपर्यन्त अधिगमकर्त्ता बनकर रहना चाहिए तथा अपने छात्रों को भी जीवनपर्यन्त अधिगम करने के लिए तैयार करना चाहिए। अध्यापक के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि वह निरंतर अपने व्यावसायिक विकास के लिए प्रयत्न करे ताकि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नवाचारों तथा शिक्षण क्षेत्रों में प्रयोग होने वाले अध्यापन संबंधी तकनीकी के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त कर छात्रों को उनसे लाभान्वित करे। समाचारपत्रों, पत्रिकाओं, व्यावसायिक जर्नल्स तथा अपने विशिष्ट क्षेत्र की पुस्तकों, शिक्षा के विभिन्न विषयों पर अपने साथी अध्यापकों के साथ चर्चा, सेमिनार, कान्फरेन्सस, वर्कशॉप आदि में सहभागिता, शोध तथा प्रयोग आदि तकनीकों द्वारा अध्यापक अपना व्यावसायिक विकास कर सकता है।

2. उद्देश्यपूर्ण विषयों पर चर्चा—अध्यापकों के लिए यह आवश्यक है कि वे संस्था में शैक्षिक दृष्टि से चर्चाओं का वातावरण उत्पन्न करें। अध्यापक संयुक्त रूप से नियोजित प्रोजेक्ट और कार्यक्रमों में भाग ले सकते हैं तथा ये प्रोजेक्ट छात्रों की उपलब्धि को सुधारने के लिए हो सकते हैं। ये चर्चाएँ अध्यापकों व छात्रों की समस्याओं का सामूहिक हल निष्पक्ष रूप से निकालने वाली हों। इसके अन्तर्गत पाठ्यचर्या संप्रेषण

(Curriculum Transaction), कक्षा प्रबन्धन तथा छात्रों की अधिगम असमर्थी व व्यावहारिक समस्याओं की चर्चा की जा सकती है।

3. अन्य साथी अध्यापकों के प्रति आदरपूर्ण एवं प्रतिष्ठापूर्ण भावना–अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने साथी अध्यापकों के प्रति आदरपूर्ण एवं प्रतिष्ठापूर्ण (Dignity) भावना रखे। स्टाफ मीटिंग में सभी अध्यापकों को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता होती है। परन्तु यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कनिष्ठ अध्यापकों अथवा नए आए अध्यापकों के नए विचारों में भी नवीनता हो सकती है तथा उन्हें भी महत्त्व दिया जाना चाहिए। व्यवसाय की गरिमा इसी में है कि अध्यापक अन्य साथी अध्यापकों से ईर्ष्या न करे। यह भी देखा जाता है कि कुछ अध्यापक अन्य साथी अध्यापकों की शिकायत करते हैं। बिना किसी प्रमाण के ऐसा करना अध्यापक के लिए आचारहीन (Unethical) माना जाता है। यदि कोई अध्यापक किसी छात्र का यौन उत्पीड़न कर रहा है तो ऐसे दुष्कर्मों को देखकर भी अनदेखा नहीं करना चाहिए। यह भी व्यावसायिक आचार (Professional Ethics) के विरूद्ध माना जाता है। अध्यापकों का यह भी कर्त्तव्य बनता है कि वह अन्य सभी अध्यापकों के बारे में कोई अवमाननायुक्त कथन न दें विशेष रूप से छात्रों, अध्यापकों तथा अभिभावकों के सामने।

4. साथी अध्यापकों तथा विभाग की गोपनीयता का अवलम्बन करना–अध्यापकों को चाहिए कि वह सभी अध्यापकों व विभाग से सम्बन्धित गोपनीय विषयों को छात्रों के सामने प्रकट न करें। यह गोपनीयता अध्यापकों व अभिभावकों के सामने भी प्रकट नहीं की जानी चाहिए।

हम अपने रुग्ण बच्चे को किसी अच्छे अस्पताल में अच्छे डॉक्टर अर्थात् योग्य एवं कुशल (Qualified & Skilled) डॉक्टर को दिखाना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि यहाँ जान का सवाल है। अध्यापक भी तो राष्ट्र का वर्तमान तथा भविष्य बनाता है। यह तो डॉक्टर से भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य हो गया। जब मेडिकल एसोसिएशन

डॉक्टर को कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने से पहले शपथ दिलाती है तो इस दृष्टि से अध्यापक को भी शपथ दिलाई जानी चाहिए। सबसे पहले हमें अध्यापक के रूप में स्वयं को बदलना होगा। मूल्याधारित शिक्षा की सार्थकता तभी होगी जब अध्यापकों के द्वारा मूल्य जीवन में उतारे जाएँ। छात्रों में यह जागरूकता लानी होगी कि अध्यापक को किस दायरे में रहकर शिक्षणकार्य प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न करना चाहिए। इसके लिए वर्कशाप का आयोजन किया जाना चाहिए। छात्रों से अभिनय निरूपण (Role Playing) करवा कर भी व्यावसायिक आचारों (Professional Ethics) का अभ्यास कराया जा सकता है। एक और कार्य भी किया जा सकता है वह है 'न कहना' (Say No)। यदि आपके सामने कोई अध्यापक व्यावसायिक आचारों का उल्लंघन कंरे तो उसे न कह दीजिए। यह न कहने वाला छात्र भी हो सकता है और अध्यापक भी। केवल वर्कशाप के आयोजन मात्र से काम नहीं बनेगा। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि कोई अध्यापक व्यावसायिक आचारों (Professional Ethics) का कितना पालन कर रहा है? इसके लिए छात्रों का फीडबैक लिया जा सकता है। यदि इस बिन्दु को अध्यापकों के प्रमोशन से जोड़ा जाए तो मुझे लगता है कि हम इस चुनौती को कुछ सीमा तक हल करने में सफल हो पाएँगे।

इसका हल NCTE के पास भी है NCTE और All India Federation of School Teachers को एक समिति का गठन करना चाहिए जिसमें शिक्षाविद्, प्राथमिक एवं माध्यमिक संस्थाओं के प्रतिनिधि, शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के प्रोफेसर्स हों। यह समिति अध्यापकों के लिए भी शपथ का प्रावधान करे तथा शपथ को भंग करने पर अध्यापकों के विरूद्ध उचित कार्यवाही की जानी चाहिए। जैसे मेडिकल व्यवसाय में शपथ का उल्लंघन करने पर डॉक्टर का लाइसेंस रद्द हो जाता है वैसे ही अध्यापक के साथ भी किया जा सकता है।

अतः अन्त में मेरा सुझाव यही है कि छात्र को यह शिक्षा पूर्व–अध्यापक शिक्षा के दौरान ही दी जानी चाहिए तथा अध्यापकों को अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह करना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा : बदलते समय का पाठ्यक्रम

—विकास

शोध छात्र, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

यह सर्वविदित है कि अध्यापक के लिए विषय का ज्ञान परम आवश्यक है। इसलिए विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों ने विभिन्न स्तर के अध्यापकों के लिए सम्बन्धित विषयों में स्नातक या परास्नातक स्तर के ज्ञान को न्यूनतम योग्यता के रूप में निर्धारित किया है। यह विषय ज्ञान केवल प्राथमिक योग्यता है। केवल विषय ज्ञान होने से कोई व्यक्ति अध्यापक नहीं कहला सकता। अध्यापन कार्य करने के लिए पहला तो शिक्षार्थी का मानसिक स्तर, शरीरिक क्षमता, उसमें होने वाले परिवर्तन, बाल मनोविज्ञान तथा बाल विकास का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक ज्ञान अति आवश्यक है; द्वितीय उन शिक्षण विधियों का ज्ञान जिनके माध्यम से विषय को शिक्षार्थी तक सम्प्रेषित कर सके जिससे कि उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाया जाए। अच्छे अध्यापक की तीसरी योग्यता शिक्षण–अधिगम (व्यवहार परिवर्तन) प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं का निवारण सम्यक् रूप से कर सके। एक अच्छे अध्यापक में ये तीन गुण होना अति आवश्यक हैं। ये तीनों अध्यापकीय गुण शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में सीखे जाते हैं। अध्यापकों में इन योग्यताओं को विकसित करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के पास योजना, उपयुक्त पाठ्यक्रम, एवं उच्चकोटि के कुशल व विशेषज्ञ अध्यापक प्रशिक्षक।

इसमें समय के साथ बदलने वाला तथा उद्देश्यों की प्राप्ति कराने वाले पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक विश्वविद्यालयों एवं शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में आज भी उसी पाठ्यक्रम का अनुमान किया

जाता है जो पाठ्यक्रम सदी के आरंभ में संवर्द्धित किया गया था। यदि आने वाले 8-10 वर्षों में भी यही पाठ्यक्रम रहा तो कोई प्रशिक्षु अपने अध्यापक पिता के पाठ्यक्रम से ही प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा होगा। समाज में पूरी एक पीढ़ी का परिवर्तन और अध्यापक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में कोई बदलाव नहीं। यह न्यायसंगत नहीं और साथ ही समाज को दिग्भ्रमित करने वाला निर्णय भी है। आधुनिक समय के अध्यापक तैयार करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को समय की माँग के अनुसार अपने पाठ्यक्रम में तकनीकी व नवाचारों का समावेश करना चाहिए।

जिस प्रकार छात्र के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए अध्यापक से विशेष पाठ्यक्रम, विशेष तैयारी, विशेष शिक्षण विधियों का चयन, शिक्षार्थी से सकारात्मक-सम्प्रेषण आदि की अपेक्षा की जाती है उसी प्रकार प्रशिक्षु अध्यापकों में सभी अध्यापकोचित गुण विकसित करने, बाल मनोविज्ञान की समझ, विभिन्न शिक्षण विधियों का ज्ञान और उन्हें प्रयोग करने की क्षमता, उनमें सभी शिक्षण कौशलों को विकसित करने एवं उनमें सामंजस्य स्थापित करके (एकीकृत करके) किसी शिक्षण बिन्दु के लिए प्रयोग करने की क्षमता का विकास करने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व प्रशिक्षण संस्थानों का है। उनकी यह जिम्मेदारी भी है कि वह प्रशिक्षु शिक्षकों में यह योग्यता विकसित करें कि वे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होने पर या शिक्षार्थियों में अपेक्षित अधिगम न होने पर वैज्ञानिक रीति से इसका विश्लेषण करके उपयुक्त उपचार कर सकें।

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक परीक्षण–अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सभी विषयों के प्रायोगिक पक्ष को अत्यधिक महत्व देना चाहिए। शिक्षा मनोविज्ञान के विभिन्न परीक्षण जैसे मानसिक योग्यता परीक्षण, बुद्धि परीक्षण, सृजनात्मकता का परीक्षण व्यक्तित्व परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण आदि का पूरा-पूरा अभ्यास करवाना चाहिए। जिससे कि छात्राध्यापकों में पिछड़े बालकों का उपचार करने तथा प्रतिभाशाली

बालकों के लिए समुचित शिक्षण की व्यवस्था करने की योग्यता का विकास हो सके।

शिक्षण विधि—अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे छात्राध्यापकों में शिक्षण विषय और शिक्षण बिन्दु के अनुसार शिक्षण विधि का ज्ञान एवं उनका समुचित प्रयोग करने की योग्यता का विकास हो सके। इसके लिए अभ्यास के लिए पाठ्यक्रम में उचित स्थान देना चाहिए। आजकल विद्यालयी शिक्षा में बहुत परिवर्तन हो चुका है। शिक्षण छात्र-केन्द्रित हो गया है। परन्तु अनेक अध्यापक परम्परागत विधियों व्याख्या विधि, पुस्तक विधि का अधिकाधिक प्रयोग करते हैं। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में यह अनिवार्य रूप से शामिल करना चाहिए कि विभिन्न नवीन शिक्षण विधियाँ (सामूहिक चर्चा, वाद-विवाद) किस प्रकार और कौन-कौन से शिक्षण बिंदुओं के लिए प्रयोग करनी चाहिए जिससे शिक्षण प्रभावी हो सके।

शिक्षण तकनीकी—प्रशिक्षण संस्थानों का यह उत्तरदायत्वि है कि वे प्रशिक्षु अध्यापकों में अपने शिक्षण कार्य व मापन एवं मूल्याकन के लिए तकनीकी का प्रयोग करने की क्षमता विकसित करें। हाल ही में केन्द्रिय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने घोषणा की है कि वह भविष्य में छात्रों को इन्टरनेट के माध्यम से पढ़ाने की योजना बना रहा है। प्रथम चरण में 50 विद्यालयों का चयन किया जाएगा। भविष्य में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि होगी। इस प्रकार अपने शिक्षण कार्य में तकनीकी के साधनों का कुशलता से प्रयोग करने वाले आध्यापकों की माँग बढ़ेगी। इसलिए अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में शिक्षण तकनीकी के प्रायोगिक पक्ष को अधिकाधिक स्थान देकर इसके मूल्यांकन की उचित व्यवस्था आवश्यक है।

तकनीकी ज्ञान—छात्रों में सर्वांगीण विकास के लिए छात्रों के अभिभावकों और अध्यापकों का मिलन अति आवश्यक है। इससे वे छात्र के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को समझ सकते हैं। छात्र का व्यवहार, समूह बनाने की योग्यता, शैक्षिक उपलब्धि, सामाजिक कार्यों में भागीदारी, सांस्कृतिक कार्यों में सक्रियता, उनकी किसी विशेष योग्यता

के निरीक्षण–परीक्षण के लिए अभिभावक व अध्यापकों का लगातार सम्पर्क बनाए रखना आवश्यक है। अध्यापक विद्यालय समय के अतिरिक्त छात्रों उनके अभिभावकों से सरलता से सम्पर्क स्थापित कर सकें। आधुनिक तकनीकी साधनों से यह कार्य बहुत सरलता से सम्भव है। एक–एक छात्र के अभिभावकों से सम्पर्क करने के लिए उनके घर जाना दु:साध्य कार्य है। इस कार्य के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षुओं में विभिन्न सामाजिक वेबसाइट को प्रयोग करने की कुशलता का विकास करना चाहिए।

भाषा प्रयोगशाला–भाषा अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में भाषा प्रयोगशाला का प्रयोग सिखाना तथा छात्रों में भाषाई कौशलों का विकास करने के योग्य बनाना सम्मिलित करना चाहिए। आधुनिक युग में शिक्षा का व्यवसायिकरण हो गया है। जिसके कारण भाषा की शुद्धता पर न तो माता–पिता का ध्यान है और न ही विद्यालय का। ऐसे में छात्रों में भाषाई कौशलों का विकास करना भाषा अध्यापकों के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है।

विज्ञान के युग में तकनीकी का विकास उत्तरोत्तर हो रहा है। तकनीकी के नए साधनों तथा सिद्धान्तों का शिक्षा में अनुप्रयोग शिक्षा जगत के लिए वरदान ही है। ओ.एच.पी., एल.सी.डी. प्रोजेक्टर, संगणक, सीसीटीवी कैमरे, रेडियो–टेलीविजन के शैक्षिक कार्यक्रम आदि का अपने शिक्षण कार्य में समुचित प्रयोग करने की योग्यता प्रत्येक अध्यापक में होनी चाहिए। यह समय की माँग है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में शिक्षा तकनीकी को अनिवार्य रूप में शामिल करना चाहिए। सत्रांत में परीक्षण के समय शिक्षा तकनीकी को अनिवार्य रूप में शामिल करना चाहिए। सत्रांत में परीक्षण के समय शिक्षा तकनीकी के प्रायोगिक कार्यों को अधिकाधिक महत्व दिया जाना चाहिए। तकनीकी के आधुनिक युग में लगभग प्रत्येक अध्यापक की जेब में रहने वाला मोबाइल फोन शिक्षण में कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। मोबाइल फोन में शिक्षण बिंदुओं का एनिमेशन या स्लाइड बनाकर प्रोजेक्टर के माध्यम से स्क्रीन पर दिखाए जा सकते हैं। मोबाइल फोन के ध्वनि यंत्र का प्रयोग करके आदर्श काव्य–पाठ भली–भाँति सिखाया

जा सकता है।

सूक्ष्म शिक्षण—अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सूक्ष्म शिक्षण के प्रायोगिक पक्ष का अधिकाधिक समावेश करना चाहिए। शिक्षण कौशलों के बिना अध्यापक पंगु है। प्रशिक्षु अध्यापकों में शिक्षण कौशलों को विकसित करने के लिए पुनः पुनः एवं सतत् अभ्यास करवाना चाहिए। यह अभ्यास तब तक करवाना चाहिए जब तक कि सभी प्रशिक्षु अध्यापक सभी शिक्षण कौशलों में पारंगत होकर शिक्षण बिन्दु के अनुसार उनमें संतुलन बनाकर या एकीकृत करके प्रयोग करने में सिद्धहस्त न हो जाएँ। जैसे व्याख्या शिक्षण विधि में व्याख्यान कौशल, प्रश्न कौशल, दृष्टांत कौशल, पुनर्बलन कौशल आदि का समावेश करके प्रभावी शिक्षण करना।

क्रियात्मक अनुसंधान—बदलते हुए समाज में छात्रों की मानसिकता पर भी गहरा प्रभाव-पड़ा। छात्र व छात्रों की मानसिकता बदलने से शिक्षण कार्य में पर्याप्त बाधाएँ आने लगी हैं। शिक्षक को अपने दिन-प्रतिदिन के शिक्षण कार्य में होने वाले व्यवधान के दूर करने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान को अनिवार्य रूप से सम्मिलित करके इसके प्रायोगिक पक्ष को अधिकाधिक महत्व देना चाहिए। प्रशिक्षुओं के समक्ष शिक्षणाभ्यास के समय आने वाली समस्याओं का समाधान क्रियात्मक अनुसंधान के माध्यम से करवाना चाहिए। प्रशिक्षुओं में क्रियात्मक अनुसंधान की कुशलता विकसित करने के लिए विशेषज्ञों से मदद लेनी चाहिए। सत्रांत में शिक्षाणाभ्यास के प्रयायोगिक उपलब्धि का मूल्यांकन करते समय किए गए क्रियात्मक अनुसंधान को अधिक से अधिक महत्व देना चाहिए।

निर्देशन एवं परामर्श—आधुनिक महत्वाकांक्षी समाज के बच्चों की शिक्षा में माता-पिता की क्या भूमिका हो सकती है इसका भली-भाँति ज्ञान अध्यापक को होना चाहिए। शिक्षक को यह ज्ञान भी होना चाहिए कि जटिल समाज के माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा में क्या भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षकों में इस योग्यता का विकास करने

के लिए अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में निर्देशन एवं परामर्श का सैद्धान्तिक व प्रायोगिक पक्ष का समुचित समावेश होना चाहिए।

तकनीकी दिनों-दिन बढ़ती जा रही है इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि अध्यापक अपने प्रशिक्षण के 1-2 वर्ष में पूरी तकनीकी एवं प्रयोग सीख जाए। इसलिए सेवारत अध्यापकों के लिए भी ऐसी कार्यशालाओं का आयोजन करना चाहिए जिससे कि वे अपने शिक्षण को सरल व प्रभावी बना सकें।

इस प्रकार अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में तकनीकी, नवाचार, तथा विभिन्न विषयों के प्रायोगिक पक्ष को सुदृढ़ करके बदलते समय के अनुरूप अध्यापक तैयार कर सकते हैं। समय-समय पर पाठ्यक्रम का पुनरुद्धार होना अति आवश्यक है।

अध्यापक शिक्षा में प्रभाविता एवं गुणवत्ता के आयाम

–ऋषिराज

शोध छात्र, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

वेदों में कहा गया है– **'ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रम्'** अर्थात् ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जिसका आविर्भाव होने से मनुष्य इस माया–मोह रूपी संसार चक्र के समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है। ज्ञानरूपी शिक्षा के द्वारा वह अपनी जीवन–यात्रा के रणक्षेत्र में आने वाली समस्याओं का निवारण करता है। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, सामाजिक परिवेश में ही वह अपना चहुँमुखी विकास कर सकता है। मनुष्य के इस चहुँमुखी विकास का आधार शिक्षा दार्शनिकों के अनुसार चार प्रकार का संस्कारित ज्ञान है जो निम्नवत् है–

प्रथम संस्कारित ज्ञान - यह ज्ञान वह अपने माता–पिता व कुल के परिजनों से सीखता है।

द्वितीय संस्कारित ज्ञान –इस प्रकार का ज्ञान वह अपने गुरु से प्राप्त करता है।

तृतीय संस्कारित ज्ञान - इस ज्ञान को वह अपने सहपाठी जनों से व वातावरण से सीखता है।

चतुर्थ संस्कारित ज्ञान - इस प्रकार के ज्ञान को वह अपने विवेक और अनुभवों से प्राप्त करता है।

शिक्षा दर्शनिकों का मानना है कि द्वितीय संस्कारित ज्ञान को ही शिक्षक प्रदत्त ज्ञान भी माना जाता है। शिक्षक प्रदत्त ज्ञान को पाने के लिए व्यक्ति अवस्थानुसार गुरुकुलों, मठों, मदरसों व विद्यालयों में प्रवेश लेता

है। शिक्षा दार्शनिकों के अनुसार भारतीय इतिहास का प्रेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि वैदिक काल से ही गुरु-शिष्य प्रणाली, अध्यापन-अध्ययन के रूप में चलायमान थी। बौद्धकाल में मोनिटोरियल (कक्षा-नायकीय) पद्धति ने इस शिक्षा को विशेष संबल प्रदान किया है। शिक्षा की इस व्यवस्था को जीवन्त रखने का कार्य अध्यापक ही करता है। प्रसिद्ध शिक्षा मनोवैज्ञानिक **जॉन लॉक** ने भी कहा है कि-**''जिस प्रकार पौधे का विकास कृषि द्वारा, उसी प्रकार मनुष्य का विकास शिक्षा द्वारा ही होता है।''**

अतः कहा जा सकता है कि श्रेष्ठ अध्यापकों के अभाव में सुयोग्य छात्रगण भी वाँछित ज्ञानर्जन में सफल नहीं हो सकते हैं। अच्छी पाठ्यवस्तु भी निपुण अध्यापकों की अनुपस्थिति में प्राणहीन हो जाती है, श्रेष्ठ व निपुण अध्यापक ही छात्रों को वाँछित व्यवहार परिवर्तन में सहायता प्रदान करते हैं तथा उनके सर्वाङ्गीण विकास के पथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ने में सहायक सिद्ध होते हैं। पूर्व शिक्षा मन्त्री एम. सी. छागला ने भी कहा था कि - **''प्रशिक्षित एवं योग्य अध्यापकों की सहायता के बिना कोई भी शिक्षा क्रम उन्नति नहीं कर सकता है, योग्य शिक्षकों का देश एक उज्ज्वल भविष्य वाला राष्ट्र होता है।''**

अध्यापकों को सभी आदर्शों का जनक माना जाता है इसलिए जहाँ एक ओर अध्यापक को ज्ञान के किसी एक विशिष्ट क्षेत्र अथवा अनेकों क्षेत्रों में निपुणतम होने की अपेक्षा की जाती है वहीं दूसरी ओर उसे अत्यन्त उच्च नैतिक चरित्र का स्वामी भी माना जाता है। ऋग्वेद में चर्चा मिलती है कि उस समय का अध्यापक बौद्धिक रूझान व श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त, अपने विषय में निपुणता प्राप्ति के लिए समर्पित, सदाचरण करने वाला, ब्रह्मचर्य का पालक तथा सर्वोच्च सत्ता के ज्ञान के प्रति लालायित रहता था। उस समय अध्यापक के लिए किसी भी प्रकार के औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी तथा न ही अध्यापक बनने वाले व्यक्ति को कोई औपचारिक प्रमाणपत्र देने की प्रथा थी। अच्छे अध्यापकों के सम्पर्क में रहकर छात्र अध्यापन कला का अनौपचारिक

ढंग से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेते थे तथा अपने अनुभवों के आधार पर स्वतन्त्र रूप से अध्यापन कार्य करते थे। वैदिक काल के अन्तिम चरण में अध्यापन व्यवसाय पैतृक कार्य बनने लगा था तथा उसके बाद वंशपरम्परागत व्यवसाय के रूप में अनेक सदियों तक ब्राह्मण समुदाय अध्यापन कार्य को करता रहा। परन्तु बौद्धकाल में गैर-ब्राह्मणों के द्वारा अध्यापन कार्य करने के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

डा. श्रीधर मुखोपाध्याय ने "भारतीय शिक्षा इतिहास" में इस विषय पर लिखा है-**"आचार्य अथवा गुरु सबसे ऊपर के वर्गों के छात्रो को पढ़ाते थे। ये विद्यार्थी अपने से निम्न वर्ग के छात्रों को सिखाते थे, और वे अपने से नीचे वालों को।"**

यह पद्धति (कक्षा-नायकीय) बुद्धिमान छात्रों को शिक्षण कला सीखने का अवसर प्रदान करती थी तथा इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में उसी कार्य को करती थी जिसे आधुनिक अध्यापक शिक्षा संस्थाएँ सम्पन्न करती है।

वर्तमान में कुशल अध्यापक तैयार करने के लिए देश में अध्यापक शिक्षा संस्थानों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी है। अध्यापक शिक्षा संस्थानों का यह संख्यात्मक विकास अध्यापक शिक्षा के गुणात्मक पक्ष को कमजोर बना रहा है जो राष्ट्र के विकास के लिए एक भयावह समस्या के रूप में हमारे समक्ष उत्पन्न हो रही है। अध्यापक शिक्षा में प्रभाविता व गुणवत्ता के आयाम इससे सम्बद्ध उद्देश्यों के सकारात्मक विकास से प्राप्त किये जा सकते हैं-

1. शिक्षा की दार्शनिक, समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि से अवगत कराना।
2. राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका का ज्ञान कराना।
3. विषय वस्तु का ज्ञान प्रदान करना।
4. शिक्षण तकनीकों का ज्ञान प्रदान करना।

5. अधिगम मनोविज्ञान का ज्ञान प्रदान करना।
6. शैक्षिक मापन व मूल्यांकन की विभिन्न विधियों व तकनीकों का ज्ञान कराना।
7. छात्र निर्देशन व परामर्श की क्षमता विकसित करना।
8. पाठ्यसहगामी क्रियाओं के आयोजन की योग्यता विकसित करना।
9. विद्यालय व कक्षा प्रबन्ध के आयोजन की योग्यता विकसित करना।
10. शिक्षा की समस्याओं पर विचार विमर्श करने के लिए प्रोत्साहित करना।

उपर्युक्त समस्त उद्देश्यों का समावेशन भावी अध्यापकों के सर्वाङ्गीण विकास में सहायक सिद्ध होगा तभी वह अपने छात्रों के सर्वाङ्गीण विकास में योगदान कर सकेगा। अतः अध्यापक में ज्ञानात्मक पक्ष के साथ-साथ भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष के विकास के लिए अध्यापक शिक्षा में प्रभावी व गुणात्मक आयामों के लिए अधोलिखित आयोग उत्तरदायी है-

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग

भारत सरकार ने 1948 में महान् शिक्षाविद् डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) का गठन किया।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)

इस आयोग का गठन डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में किया गया। इसने अध्यापक शिक्षा में प्रभावी व नवीन गुणवत्ता आयामों की संस्तुतियाँ प्रस्तुत कीं।

कोठारी आयोग (1964-66)

इस आयोग का गठन UGC के अध्यक्ष प्रो. डी. एस. कोठरी की अध्यक्षता में 2 अक्टूबर 1964 को हुआ। इस आयोग ने अपने कार्यानुभव के आधार पर अध्यापक शिक्षा में प्रभाविता व नवीन गुणवत्ता आयामों हेतु कहा कि **''शिक्षकों की व्यावसायिक शिक्षा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उसे एक ओर विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन से और दूसरी ओर विद्यालीय जीवन एवं शिक्षण-सम्बन्धी नवीनतम विचारों के सम्पर्क में लाया जाना परमावश्यक है।''**

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने निम्नलिखित संस्तुतियाँ प्रस्तुत की -

*** अध्यापक शिक्षा की पृथकता की उन्नति के दृष्टिकोण से**

- शिक्षा विषय को विश्वविद्यालयों के बी. ए. और एम. ए. पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- कुछ विशिष्ट महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में अध्यापक शिक्षा के पाठ्क्रमों के विकास, अध्ययन एवं अनुसन्धान हेतु शिक्षा-विभागों की स्थापना की जानी चाहिए।
- प्रत्येक राज्य में 'अध्यापक शिक्षा राज्य परिषद' (S.C.T.E.) की स्थापना की जानी चाहिए। जिस पर सभी स्तरों के शिक्षकों के प्रशिक्षण का दायित्व डाला जाए।

*** व्यावसायिक शिक्षा की उन्नति के दृष्टिकोण**

- शिक्षण के अभ्यास में गुणात्मक उन्नति का प्रयास किया जाना चाहिए।
- अध्यापक शिक्षा संस्थाओं के पाठ्क्रमों में विषय सामग्री का इस तरह रूपान्तर किया जाना चाहिए कि प्रशिक्षु अध्यापकों को

विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषय के उद्देश्यों, प्रयोजन तथा जटिलताओं का ज्ञान प्राप्त हो सके।

- प्रशिक्षु अध्यापकों हेतु विशिष्ट कार्यक्रमों तथा पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाना चाहिए।

* प्रशिक्षण की अवधि के दृष्टिकोण से

- प्राथमिक विद्यालय के उन अध्यापकों हेतु जिन्होंने सेकेण्ड्री स्कूल पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया है–प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की हो।

• माध्यमिक विद्यालय के उन अध्यापकों हेतु जो स्नातक है–प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष हो परन्तु कुछ वर्ष बाद इसे दो वर्ष कर दिया जाना चाहिए।

• शिक्षा में स्नातकोत्तर (एम. एड.) पाठ्यक्रम की अवधि 1½ वर्ष रखी जानी चाहिए।

* प्रशिक्षण संस्थानों की उन्नति के दृष्टिकोण से

- अध्यापक शिक्षा संस्थानों में कार्यरत अध्यापकों के पास शिक्षा की उपाधि के साथ ही दो स्नातकोत्तर (एम. ए.) उपाधियाँ भी होनी चाहिए।

- अध्यापक शिक्षा संस्थानों में कार्यरत अध्यापकों में डॉक्टर (पी. एच. डी.) की उपाधियों वाले शिक्षकों की संख्या उचित अनुपात में होनी चाहिए।

- विज्ञान, गणित, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र की शिक्षा देने वाले अध्यापक विशेषज्ञ होने चाहिएँ।

- प्रत्येक अध्यापक शिक्षा संस्था से संलग्न एक प्रयोगात्मक विद्यालय (Experimental School) होना चाहिए।

- अध्यापक शिक्षा संस्थानों में प्रशिक्षणरत प्रशिक्षु अध्यापकों से किसी भी प्रकार का कोई शुल्क न ले तथा शिक्षा में सहायतार्थ आवास व छात्रवृत्तियों की सुविधा भी प्रदान की जाए।
- अध्यापक शिक्षा संस्थाओं के पुस्तकालयों व प्रयोगशालाओं में समुचित सुधार किया जाए।

*** प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार**

- अध्यापक शिक्षा संस्थाओं के आकार में एक निश्चित योजनानुसार पर्याप्त विकास किया जाना चाहिए।
- अल्पकालीन प्रशिक्षण और पत्र व्यवहार द्वारा प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए।
- इसमें अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता के लिए अधोलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होना आवश्यक माना–

* प्रशिक्षु शिक्षकों में गाँधीवादी मूल्य जैसे–सत्य, अहिंसा, स्वानुशासन, स्वानुभूति, श्रम, निष्ठा आदि का विकास करना।

* सामाजिक परिवर्तन लाने में अध्यापकों की भूमिका का ज्ञान कराना।

* समाज व समुदाय को जोड़ने तथा सामुदायिक जीवन व संसाधनों को विद्यालय से जोड़ने की विधियों से परिचित कराना।

* वातावरणीय संसाधनों का प्रयोग तथा ऐतिहासिक व सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण करना सिखाना।

* छात्रों एवं उनकी समस्याओं के प्रति सकरात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना तथा निर्देश व परामर्श के कौशल विकसित करना।

* विषयवस्तु के नवीनतम ज्ञान तथा पढ़ाने की नवीनतम तकनीकों से अवगत कराना।
* क्रियात्मक अनुसन्धान व गवेषणात्मक प्रोजेक्टों का आयेजन करना सिखाना।
* प्रभावशाली पाठ्यक्रम प्रबन्ध व्यूह रचना बनाना।
* छात्रों के सर्वाङ्गीण विकास में सहायक अवबोध, रुचि, दृष्टिकोण व कौशल विकसित करना।

उपरोक्त आयोगों तथा परिषदों द्वारा अध्यापक शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता हेतु की गई संस्तुतियों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अगर हमें अध्यापक शिक्षा में प्रभाविता व गुणवत्ता आयामों को बनाना है तो आयोगों व परिषद् द्वारा की गई संस्तुतियों को पूर्णरूप से मानक के तौर पर स्थापित किया जाना चाहिए। उसकी गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए अधोलिखित नवीन आयामों की स्थापना करनी पड़ेगी।

अध्यापक शिक्षा का पुनर्गठन

अध्यापक शिक्षा का पुनर्गठन निम्न प्रस्तावों से किया जा सकता है–

- प्रशिक्षण संस्थाओं में विषय समग्री का पुनर्निर्धारण किया जाए।
- शिक्षण एवं मूल्यांकन विधियों में सुधार किया जाए।
- छात्र–शिक्षण की प्रणाली में सुधार किया जाए।
- अध्यापक शिक्षा के सुधार का आधार ऐसे कार्यक्रमों को बनाना है जो अध्यापक को मानवीय गुणों से सम्पन्न व्यक्ति बना सके।
- अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता हेतु उसे विज्ञान व टैक्नोलॉजी के अनुप्रयोग से परिचित कराया जाए।

सन्दर्भः-

1. चोपड़ा, आर. एल., 'अध्यापक शिक्षा', स्वाति पब्लिकेशन्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर
2. पाण्डेय, डॉ. रामशकल, 'भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, तृतीयसंस्करण, 2007-08
3. भटनागर, डॉ. ए. बी. , डॉ. अनुराग, 'भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, संस्करण, 2007
4. भटनागर, सुरेश, वशिष्ठ, डॉ. कमला, सिंह, डॉ. एम. के., 'शैक्षिक प्रबन्ध और शिक्षा की समस्यायें', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2007
5. शर्मा, आर. ए., 'अध्यापक शिक्षा', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा

अध्यापक शिक्षाः कल, आज और कल

–शानू जैन
शोध छात्र, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

अध्यापक वह है जो विद्यार्थियों को उनकी क्षमताओं तथा योग्यताओं से अवगत कराये, उनके व्यक्तित्व, ज्ञान–कौशलादि के उन्नयन में सहयोगी हो, परिवेश के अनुसार अपने ज्ञान में परिवर्तन तथा सम्वर्धन करता रहे, साथ ही वह अपने अनुभवों को इस प्रकार विद्यार्थी के समक्ष रखे कि वे राष्ट्र के सन्दर्भ में स्वीकृत हो।

ज्ञान युग तथा सूचना–प्रौद्योगिकी के इस काल में सम्पूर्ण विश्व में त्वरित गति से परिवर्तन हुए हैं। अतः अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में परिवर्तन का आना तो स्वाभाविक सी बात है। अध्यापक शिक्षा को समग्र विद्यालयी शिक्षा का आधार माना जाता है तथा दोनों परस्पर निर्भर भी हैं। National Curriculum framework on Teacher Education 2009 में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि "अध्यापक शिक्षा और विद्यालयी शिक्षा में सहजीवी सम्बन्ध है।"[1] दरअसल, हम जैसे Input देगें वैसे ही Outputs प्राप्त होते हैं अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से जैसे अध्यापक तैयार किये जाते हैं विद्यालयी शिक्षा के रूप में वैसी ही Output तथा गुणवत्ता प्राप्त होती है। अतः विद्यालयी शिक्षा में सुधार हेतु अध्यापक शिक्षा में भी सुधार आवश्यक है।

इस बदलते परिदृश्य में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में क्या–क्या बदलाव तथा परिवर्तन हुए हैं और भविष्य हेतु क्या–क्या सुधार अपेक्षित हैं यह जानना प्रस्तुत पत्र का उद्देश्य है। इस शोध पत्र को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया गया है:-

1. अध्यापक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है?

2. अध्यापक शिक्षा की वर्तमान स्थिति क्या है तथा

3. अध्यापक शिक्षा का भावी स्वरूप कैसा होना चाहिए?

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यद्यपि शिक्षक-शिक्षा का बीजारोपण 19 वीं शताब्दी में हुआ था उससे पूर्व अध्यापकों के प्रशिक्षण सम्बन्धी विचार स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होते तथापि इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विचार करते समय प्राचीन शिक्षा पर भी दृष्टिपात आवश्यक प्रतीत होता है।

• **वैदिक शिक्षाः-** वैदिक परम्परा में आचार्य तथा उपाध्याय द्वारा अध्यापन कार्य किया जाता था परन्तु अध्यापन हेतु किसी भी औपचारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता अनुभूत नहीं की गई थीं न ही अध्यापकों के लिए किसी प्रमाण-पत्र का प्रचलन था। छात्र गुरुओं के निकट रहकर शिक्षण कला का अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त कर लेते थे तथा सहज प्राप्त ज्ञान तथा अनुभव के द्वारा स्वयं अध्यापन कार्य हेतु प्रवृत्त हो जाते थे।

• **बौद्धशिक्षाः-** बौद्ध शिक्षा में सामनेर जब 12 वर्ष के अध्यापन के पश्चात् उपसम्पदा संस्कार ग्रहण करता था तब वह स्थायी रूप से संघ का सदस्य बन जाता था वही भिक्षु उपाध्याय कहलाता था जो नवागन्तुक भिक्षुओं को अध्यापन-कराता था, यहां भी किसी प्रकार के औपचारिक प्रशिक्षण का उल्लेख नहीं मिलता।

• **जैनशिक्षाः-** यद्यपि जैनशिक्षा में 'प्रशिक्षण' शब्द विशेष का प्रयोग नहीं किया गया है तथापि पद हेतु उपयुक्त साधु को 'उपाध्याय'[2] संघ के आचार्य द्वारा द्वादशांग का ज्ञान प्रदान किया जाता था जो कि एक प्रकार की प्रशिक्षण सम्बन्धी क्रिया ही है।

• **मुस्लिम शिक्षा**

मुस्लिम काल में मकतब तथा मदरसों में शिक्षण कार्य होता था।

उस समय कक्षा नायकीय प्रथा (Monitorial System) प्रचलित थी जिसमें अध्यापक योग्य छात्रों को कक्षा अध्यापन का उत्तरदायित्व देता था इस प्रकार छात्रों को अध्यापन का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता था।

• ब्रिटिश काल में शिक्षा

ब्रिटिश काल में अध्यापन एक वृत्ति के रूप विकसित होने लगा था। शिक्षा के प्रसार के साथ ही प्रशिक्षित अध्यापकों की मांग बढ़ने लगी। 19 वीं शताब्दी से स्वतंन्त्रता पूर्व तक कुछ प्रयास इस क्षेत्र में हुए जो इस प्रकार हैं:-

* 1819 में Calcutta School Society द्वारा प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया गया।
* 1854 में वुड घोषणा पत्र में भारत के प्रान्तों में प्रशिक्षण विद्यालय खोलने की सिफारिश की गई।
* 1882 हण्टर आयोग के सुझावों के परिणामस्वरूप अनेक प्रशिक्षण विद्यालय तथा महाविद्यालय खोले गये।
* 1904 में लार्ड कर्जन के प्रस्तावों का अध्यापक प्रशिक्षण के विकास पर व्यापक प्रभाव पड़ा।
* 1917 में गठित सैडलर आयोग ने इन्टर तथा बी. ए. में 'शिक्षा' को ऐच्छिक विषय के रूप में प्रारम्भ करने तथा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षण के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान पर बल देने की अनुशंसा की।
* 1929 में हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण तथा अध्यापक के लिए अभिनव पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने के सुझाव दिये।
* 1943 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण अवधि के सम्बन्ध में सुझाव दिये।

* 1944 में सार्जेण्ट रिपोर्ट द्वारा अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता अनुभूत की गई।

• स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में काफी महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये यथा:-

* 1948 में राधाकृष्णन् आयोग ने अध्यापन अभ्यास पर बल दिया।
* 1952 में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग ने प्रशिक्षण महाविद्यालयों के साथ प्रदर्शनात्मक विद्यालयों की व्यवस्था करने तथा सेवारत अध्यापक को निःशुल्क प्रशिक्षण देने की सिफारिश की।
* 1964 में कोठारी आयोग ने कहा कि अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु शिक्षकों को बतौर पेशेवर तैयार करना अत्यावश्यक है।
* 1983 में चट्टोपाध्याय समिति ने माध्यमिक तथा प्राथमिक शिक्षा के लिए चार वर्षीय एकीकृत कार्यक्रम की सिफारिश की।
* 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया कि अध्यापक शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है तथा सेवापूर्व और सेवारत प्रशिक्षण परस्पर सम्बन्धित हो।
* 1993 में यशपाल समिति में कहा गया कि कार्यक्रम की विषय वस्तु विद्यालयी शिक्षा की प्रासंगिक मांग के अनुसार पुनर्निर्मित की जानी चाहिए।
* 1995 में NCTE द्वारा पूर्वविद्यालयी, प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्तर पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के मानक तथा स्तर निर्धारित किये।
* 2009 में National Curriculum framework on Teacher Education में अध्यापक शिक्षा के सभी पक्षों पर सुझाव दिये तथा "Humane & Professional Teacher" तैयार करने पर बल दिया।

2. अध्यापक शिक्षा की वर्तमान स्थिति

भारत में अध्यापक शिक्षा को प्रारम्भ हुए लगभग सौ वर्ष से अधिक हो गये, तब से अब तक विभिन्न समितियों तथा आयोगों ने सुझाव, प्रस्ताव तथा सिफारिशें की हालांकि समय-समय पर नयी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया लेकिन इसका प्रभाव अध्यापक शिक्षा पर बहुत कम ही दिखाई दिया।

'राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र' में कहा गया है कि ''बीसवीं सदी के दौरान स्कूल की विभिन्न अवस्थाओं के मद्देनजर जिसे शिक्षकों से पढ़ाने की अपेक्षा की जाती है, इस कार्यक्रम में और अधिक विविधताएं लाई गयीं और उन पर अमल किया गया साथ ही प्रशिक्षण के तरीकों में भी बदलाव किये गये मसलन, प्रशिक्षण के साथ-साथ स्कूल में व्यवहारतः पढ़ाना, पत्राचार व सम्पर्क कार्यक्रम और अब शिक्षक शिक्षा के लिए दूरस्थ शिक्षा वाले कार्यक्रम भी। इन बदलावों के बावजूद इन कार्यक्रमों की मूलभूत विशेषताओं और सैद्धान्तिक आधार में बड़ा बदलाव न के बराबर पाया गया है।''[3]

वस्तुतः अध्यापक शिक्षा की वर्तमान स्थिति सोचनीय है आज सरकार के समक्ष सर्वप्रथम गुणात्मक सुधार के साथ ही अन्य बहुत ही चुनौतियों है तो अध्यापक शिक्षा की वर्तमान स्थिति को दर्शाती है जो इस प्रकार है:-

* माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण की अवधि का एक वर्षीय होना जो अनुपयुक्त है। NCFTE 2009 में कहा है कि ''माध्यमिक अध्यापक शिक्षा व्यवस्था के समीक्षात्मक पुनरीक्षण की आवश्यकता है ऐसा प्रतीत होता है कि एक वर्षीय बी. एड. मॉडल अब प्रासंगिक नहीं''[4]
* विद्यालयी शिक्षा में अपव्यय-अवरोधन की समस्या।
* पाठ्यचर्या में ऐसे बहुत से प्रकरण है जो वर्तमान में उपयोगी नहीं, उनसे पता चलता है कि केवल परम्परा ही निभाई जा रही है।

* दोषपूर्ण मूल्यांकन पद्धति का होना।
* भारतीय सन्दर्भ में शिक्षा में विविधता तथा विभिन्नता है तथा शैक्षिक असमानता के साथ ही सभी को अधिगम अवसरों की समानता उपलब्ध नहीं होती।
* भौतिक तथा मानवीय संसाधनों की कमी तथा शिक्षक छात्र अनुपात में असन्तुलन का होना।
* शिक्षण में नवाचारों की कमी।
* सेवाकालीन तथा सेवापूर्व अध्यापकों में आपसी सम्बन्ध न होना।
* प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों का विकास तो हो रहा है परन्तु प्रशिक्षित तथा योग्य अध्यापकों की कमी।
* व्याख्यान विधि पर अधिक बल किन्तु अन्य नवीन विधियां केवल सैद्धान्तिक रूप में प्रचलित हैं।
* उत्तम तथा प्रामाणित शोधकार्यों का अभाव।
* शिक्षकों द्वारा ICT के प्रयोग में न्यूनता।
* शिक्षणाभ्यास, Intership, प्रायोगिक क्रियाकलाप, परियोजना, दत्तकार्य पर पर्याप्त अवधान नहीं।

परन्तु इसके बाद भी हम वर्तमान अध्यापक शिक्षा के सकारात्मक पक्ष को नकार नहीं कर सकते। NCTE द्वारा पिछले दशक में अध्यापक शिक्षा के समन्वित विकास की प्राप्ति के लिए बहुत से कदम उठाये। यह NAAC के साथ मिलकर अध्यापक शिक्षा संस्थानों के पुष्ट तथा गुणात्मक विकास हेतु कार्यरत है साथ ही Distance Education Council (DEC) के साथ मिलकर NCTE ने दूरस्थ शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत सेवारत अध्यापक शिक्षा के विकास को निश्चित किया है। प्रशिक्षित तथा योग्य शिक्षकों की नियुक्ति हेतु राष्ट्रीय शिक्षक पात्रता परीक्षा (CTET) का आयोजन एक सराहनीय कदम है।

3. अध्यापक शिक्षा का भावी स्वरूप

अध्यापक शिक्षा के अतीत तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधययन से ज्ञात होता है कि अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न आयोगों तथा समितियों ने प्रस्ताव, सुझाव तथा सिद्धान्त दिये उनका व्यावहारिक अनुप्रयोग न के बराबर ही रहा है। अतः जैसा अभिकल्पित है यदि उसी तरह का बदलाव लाने का प्रयास किया जाये तो शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में पर्याप्त तथा सुव्यवस्थित सुधार लाया जा सकता है। वस्तुतः सरकार द्वारा शिक्षा का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए तथा ऐसी नीतियों का निर्धारण किया जाना चाहिए जो राष्ट्र तथा इसमें रहने वाले नागरिकों के अनुकूल हो इस हेतु कुछ सुझाव इस प्रकार हैं।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में अधिगम अनुभव छात्र प्रधान हो जिससे सीखने में विविधता, अपसारी चिन्तन, सृजनात्मकता तथा सूक्ष्मदृष्टि से अधिगम को बढावा मिले।

* सभी प्रकार के शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों को विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कर दिया जाए।
* 10+2 के बाद अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम पंचवर्षीय होना चाहिए जिससे सामान्य तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रम का सम्मिलित पाठ्यक्रम विकसित किया जाए।
* NCTE द्वारा प्रदत्त NCFTE 2009 Professional & Humane Teacher की प्राप्ति के लिए शान्ति शिक्षा (Peace Education) के सम्प्रत्यय को अध्यापक शिक्षा में सम्मिलित किया जाए।
* बी. एड. के एकवर्षीय कार्यक्रम के सुचारू रूप से संचालन हेतु कार्य दिवसों की संख्या को बढ़ाया जाये।
* बदलते परिवेश के अनुसार अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में अपेक्षित परिवर्तन किये जाये।
* शिक्षा के क्षेत्र में E- learning, M- Learning, ICT तथा उपग्रह-आधारित के शामिल होने से शिक्षक की भूमिका और

भी महत्त्वपूर्ण हो गई। अतः ICT का प्रयोग करने हेतु उन्हें सक्षम बनाया जाए।

संक्षेपतः यह कहा जा सकता है बदलते परिदृश्य में अध्यापक शिक्षा में भी बहुत से परिवर्तन हुए है। प्राचीन काल में अध्यापन योग्यता को एक जन्मजात स्वाभाविक योग्यता के रूप में माना जाता था, परन्तु आज की मान्यता है कि शिक्षक द्वारा मात्र वाचन और स्पष्टीकरण ही पर्याप्त नहीं इसी सम्बन्ध में कहना उपयुक्त होगा कि Average teacher tells, a good teacher explains, a better teacher demonstrates and the best teacher inspires अतः demonstrating तथा inspiring teacher तैयार करने होंगे।

वस्तुतः हमारी जैसी दृष्टि होती है सृष्टि भी वैसी ही नजर आती है हम जैसे देखते है वैसा ही सोचते हैं अतः सर्वप्रथम हमें अपनी सोच को बदलना होगा तथा चिन्तन को सही दिशा में ले जाना होगा निः सन्देह पत्तियों और फूलों पर जल-छिड़काव पौधों को पोषण कदापि नहीं दे सकता जब तक कि उसकी जड़ों में पानी न पहुंचे। मैं समझती हूँ, इस सुधार तथा परिवर्तन हेतु भी यदि मूल बात पर ध्यान दिया जाये तो समग्र विकास स्वतः होता चला जायेगा वह है NCTE प्रदत्त NCFTE 2009 में 'Professional & Humane Teacher' का सम्प्रत्यय। जिसमें Professional teacher के माध्यम से शैक्षिक तथा व्यावसायिक विकास और human teacher के जरिए नैतिक, सामाजिक तथा आध्यत्मिक विकास हो सकेगा।

सन्दर्भ

1. http:/ www.ncte-india.org, National Curriculum Framework on Teacher Education 2009, P.2
2. आचार्य लब्धानुज्ञा : साधवः उपसमीपेऽधीयतेऽस्मादित्युपाध्यायः (योगशास्त्र वि. 4/60) देखें- जैन लक्षणावली, वीर सेवा मन्दिर प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 280
3. 'शिक्षक शिक्षा' - राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, (2010) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली, पृ. 3
4. http :// www. ncte-india.org, P-10

आधुनिक युग में अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ

–सरिता
शोध छात्र, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

आज के इस आधुनिक, वैज्ञानिक एवं प्रतिस्पर्धा के युग में परिवर्तन की आवश्यकता एवं परिवर्तन की प्रक्रिया एक विश्व्यापी घटना हैं। इसने मानव जीवन के सभी पक्षो को प्रभावित किया है। इनमे से एक महत्वपूर्ण पक्ष है शिक्षण।

वैदिककालीन शिक्ष की ओर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन शिक्षा आश्रमों मे ऋषि तथा महात्माओं द्वारा दी जाती थी जिसमें कण्ठस्थीकरण तथा तर्क–विर्तक पर बल दिया जाता था। धीरे–धीरे वैज्ञानिक प्रगति तथा नीवन तकनीकियों के अविष्कार के फलस्वरूप शिक्षा के उद्देश्य और साथ ही साथ शिक्षण की प्रक्रिया में भी परिवर्तन अपेक्षित हो गया। अर्थात समाज का जैसा दार्शनिक चिंतन होता है, शिक्षा का स्वरूप तथा गठन की प्रक्रिया भी तनुरूप ही किया जाता हैं। समाज की दार्शनिक विचारधारायँ अनेक तत्वों से प्रभावित होती हैं जैसे–समाज की संस्कृति, आर्थिक स्थिति, भौगोलिक परिस्थितियाँ, वैज्ञानिक प्रगति, अन्य समाजों का दार्शनिक चिन्तन तथा समाज की स्वयं में व्याप्त समस्यायें आदि से समस्त तत्व सकल परिवर्तन लाते हैं,। परिवर्तनों को शिक्षण मे व्यवहारिक रूप में परिभाषित करना ही चुनौति हैं, इन सामाजिक परिवर्तनों का स्पष्ट तथा तुरंत प्रभाव समाज द्वारा व्यवस्थित शिक्षा तथा शिक्षण पर पड़ता हैं। समाज में नित नये–नये परिवर्तन होते हैं। अपने इसी गत्यात्मक स्वभाव के कारण शिक्षा अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सफल हो जाती हैं। वर्तमान समय में स्थिति कुछ–कुछ ऐसी ही हो रही हैं, शिक्षा का यह रूप किसी एक समाज में ही नही, अपितु विश्व के समस्त विकासमान समाजों में अत्यन्त ही तीव्र

व बहुत गति से परिवर्तन हो रहे हैं, इसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही जब प्रशिक्षण संस्थानों मे अध्यापक प्रशिक्षण दिया जाने लगा हैं।

आज के इस ज्ञान युग में जब हमारे चारों ओंर ज्ञान का भण्डार भरा पड़ा हैं, अनेको चुनौतियाँ हैं परन्तु उनमे से सर्वाधिक शिरोमणि प्रमुख चुनौति हैं अध्यापक में अध्यापन के समय अर्थात जब छात्राध्यापक को शिक्षण प्रशिक्षण दिया जा रहा है उसी प्रक्रम मे उसमे मूल्य का भी विकास कराया जाये अर्थात् अध्यापक शिक्षण में मूल्यों को विकसित किया जाय।

अध्यापक शिक्षा और मूल्य बोध-

जे. कृष्णमूर्ति के शब्दों में–"जानकारी इकट्ठा करना और तथ्यों को बटोरकर आपस में मिलाना ही शिक्षा नही हैं, शिक्षा तो जीवन के अभिप्राय को उसकी समग्रता में देखना–समझना हैं। पूर्णतः समन्वित प्रज्ञाशील मनुष्य तैयार करना हैं। परीक्षा और उपाधि प्रज्ञा का मानदण्ड नहीं है।

इस सन्दर्भ में आज की शिक्षा हमे (भौतिक) बौद्धिक और सूचना सम्पन्न अवश्य ही बना रही है। परन्तु यह भी सत्य है कि हमने संवेदना की कीमत पर बुद्धि का विकास किया है। शिक्षा देने का काम शिक्षक का है और एक सच्चे शिक्षक के लिये अध्यापन तकनीक नही, वह उसकी जीवन पद्धति है। क्या हमने कभी उन करणों को तलाशने की कोशिश की है जिनके कारण शिक्षा मूलभूत शिक्षक मूल्यों की अपेक्षा से दूर होती जा रही हैं? निश्चित रूप से हमने बहुत सी पुस्तक पढ़ी है, उन सूचनाओ को याद भी कर लिया हैं, परीक्षाएँ भी पास कर ली हैं, हमारे पास बहुत सारी उपाधियाँ भी हैं और इन उपाधियों ने हमे जीविका के साधन भी उपलब्ध करा दिये हैं। इसका अर्थ है कि यदि शिक्षा केवल रोजगार के लिए ही थी तो फिर आज तो निश्चित रूप से हम सफल हुए हैं, पर यह भी सच है कि आज हम मशीन तो बन गये हैं, पर इसी मशीनीयुग के कारण ही हमारी मनुष्यता कहीं पीछे छूट गई

हैं। और हमारी संवेदना दिन-प्रतिदिन मरती जा रही है। आज हमारे पास अपार भौतिक समृद्धि तो है पर हमारी संस्कृति, हमारे मूल्य तथा हमारे आपसी सम्बन्ध व हमारी जड़े धीरे-धीरे खोखली होती जा रही हैं, और समाज में आज सबसे बड़ा प्रश्न यही है।

शिक्षा प्रदान करने का कार्य आज मुख्य रूप से शिक्षक का है, शिक्षक एक निश्चित पाठ्यक्रम और निश्चित शिक्षण विधि के अनुसार एक सिस्टम मे बँधकर अपना कार्य कर रहा है, उसे केवल उतना ही करना है जितना उसके लिए निर्धारित है। वह उन अल्पज्ञ गोताखोरो के समान है जो समुद्र के तल मे न जाकर केवल किनारों पर ही तैराकी के रूप में ही अपना कार्य करता है परन्तु आज की इन परिस्थितियों में उसे एक कुम्भहार के समान कार्य करना है जिस प्रकार कुम्भहार एक मिट्टी के बर्तन को तैयार करके उसके कच्चे रूप को आग मे पकाकर तैयार करता है ठीक इसी प्रकार शिक्षक को भी स्वयं को इसी में प्रस्तुत करना होगा, अर्थात आज अध्यापक शिक्षण मे मूल्य महत्वपूर्ण चुनौति बन गयी है क्योकि मूल्य शिक्षा केवल पुस्तको का ही विषय नही है उसे व्यवहार मे प्रत्यक्ष रूप से लाना चाहिए समय का मूल्य सिखाने के लिए अध्यापक के पास दो उपाय हैं, एक यह कि वह अपने छात्रों को यह वाक्य अपनी कॉपी में दस बार लिखवा ले कि वह और याद करने को दे दे और दूसरा उपाय यह है कि अध्यापक स्वयं अपने दैनिक जीवन में इस आचरण का अनुपालन भी करे। इंटरेस्टीव मेथोडोलोजी को अपनाएँ। हम मूल्यों को सम्प्राषित करने के लिए पहले स्वयं तो संवेदित हो। इस बदलते परिवेश में पहले मूल्यों की निश्चित दिशा को तय करा जाये। अब परिवेश में भौतिक संसाधन ही तो बदले हैं, इनके साथ मूल्यों को हम कैसे नकार सकते हैं, वैसे भी शाश्वत मूल्य नही बदले जाते, मूल्य तक पहुँचने के साधन व कर्म जरूर बदल जाते हैं यदि हम चरित्र औरं व्यक्तित्व को स्थान ही नही देते तो प्रत्येक स्तर पर हमे इतने चरित्रों का अध्ययन व्यक्तित्व को स्थान ही नही देते तो प्रत्येक स्तर पर हमे इतने चरित्रो का अध्ययन करने की आवश्यकता ही नही होती। अर्थात् आज अध्यापक शिक्षा की प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

(i) जानने के (योग्य) लिए ज्ञान।

(ii) किसी भी कार्य को करने के लिए ज्ञान।

(iii) साथ रहने के लिए ज्ञान।

(iv) होने के लिए ज्ञान।

आज विज्ञान व तकनीकी के प्रभाव के फलस्वरूप शिक्षा (कला) से (विज्ञान) विषय की ओर परिवर्तित हो रही हैं। नई पेडॉगोजी मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, साइबरनेटिक्स, भाष विज्ञान एवं अनेक अनुशासना का आधार शिक्षा पर निर्भर हो रहा है। उस तकनीकी में नही संशैक्षिकी वैयक्त्वि सामूहिक संस्थागत संस्थाविहीन भी परिस्थितियों में शिक्षण के उपाय सुझा सकती हैं, साइबरनेटिक्स और जनसंचार के साधनों ने शिक्षा के सूचनात्मक पक्ष में क्रान्ति ला दी हैं। दूर संचार और उपग्रह-सम्प्रेषण को कम्प्युटर की सहायता से शिक्षण को अत्यधिक प्रभावी बनाया जा रहा है। अर्थात्-

1. चुनौति यह है कि इस ज्ञान युग मे पूर्ण मानव की कल्पना खण्डित हो रही है। चारों तरफ से वह बिखर रहा है, खण्डित हो रहा है, इसे बनाए रखना आज एक प्रमुख चुनौति बन गई हैं।

2. शिक्षण-प्रशिक्षण का वर्तमान स्वरूप विशेषतः किशोरो के व्यक्तित्व को खण्डित करने में पर्याप्त हैं। आज संकुचित प्रशिक्षण ने सीमित तकनीकी दृष्टिकोण को मानवीय गुणों से अधिक महत्वूपर्ण बना दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति शिक्षण -प्रतिमान अन्वेषण से लाभान्वित हो रहे हैं केवल इन्हें व्यवहार में लागू करने का प्रतिरूप बदलना है, तथा इसे इस चुनौति के रूप में स्वीकारना है।

3. अनु. जा/अ.ज. जाति तथा अल्पसंख्यक क्षेत्रों (ब्लौक अध्यापक शिक्षण संस्थान) मे अध्यापक शिक्षण क्षमता बढ़ाना।

4. सेवारत प्राथमिक और द्वितीयक अध्यापक का व्यवसायिक विकास

   (i) अप्रशिक्षित तथा सहायक अध्यापकों को प्रशिक्षण दिलाना।

   (ii) अध्यापनरत अध्यापकों को प्रशिक्षण और विषय की जानकारी को अद्यतन कराना।

5. अध्यापक शिक्षको का व्यवसायिक विकास

   (i) रिफ्रेशर पाठ्क्रम।

   (ii) फेलोशिप कार्यक्रम

6. एन.जी.ओ. के सहयोग

7. उत्तरपूर्व के लिए विशेष कार्यक्रम

8. अध्यापक शिक्षा में प्रौद्योगिकी।

9. उच्च्व शिक्षा के साथ एकीकृत प्राथमिक अध्यापक शिक्षा।

10. शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अध्ययन के नवीनतम उपकरणों और विधियों का पूरा उपयोग किया जाना भी एक चुनौति है।

11. शिक्षको को ज्ञान संचार के विशेषज्ञ-मात्र बनाने की बजाय उन्हे शिक्षाविद् बनने का प्रशिक्षण दिया जाये।

आज कक्षा कक्ष भरे हुए हैं पर मानव मस्तिक खाली है, विद्यालय की स्थिति विस्फारित होती जा रही है। शिक्षा उसके सामने संकुचित बन गई हैं। शिक्षा आयोग की सिफारिश यदि मान ली जाये तो यह निश्चित है कि शिक्षण के उचित प्रशिक्षण से शिक्षा का स्वरूप इतना बदल जाएगा कि उसे पहचान पाना मुश्किल होगा- शायद अध्यापक शिक्षा सम्पूर्णता के लिए शिक्षण बन जाये।

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में नवाचार

–कर्मपाल

शिक्षाचार्य छात्र, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

अध्यापक राष्ट्र के निर्माण, विकास एवं परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक कड़ी है। अध्यापक ही ज्ञान उत्पन्न कर छात्रों में स्वतंत्र चिन्तन, सद्भावना, समानता, भ्रातृत्व, विश्वबन्धुत्व आदि नैतिक मूल्यों का विकास कर समाज के लिए संवेदनशील एवं जिम्मेदार नागरिकों का निर्माण करता है। एक अध्यापक ही छात्रों में राष्ट्रीय एकता की भावनाओं एवं समाजोयोगी कुशलताओं का विकास कर उन्हें समाज के लिए उपयोगी बना सकता है। संस्कृत में शिक्षक को 'आचार्य' शब्द से सम्बोधित किया गया है जिसका अर्थ है–'आचिनोति अर्थान्। अचिरति। आचारान् कारयति'। अर्थात् सब विषयों का अध्ययन करता है, खुद आचरण करता है और दूसरों से कराता है। इसीलिए भारत में शिक्षक को विशिष्ट सम्मान देते हुए 'आचार्य देवो भव' का सन्देश दिया गया है। आचार्य विनोवा भावे के अनुसार ''प्राचीन काल से आज तक जो भारत बना है वह शिक्षकों ने ही बनाया है।'' शिक्षण कार्य अत्यन्त जबावदेही का कार्य है यहाँ तक कि हमारे यहाँ कहा गया है ''शिष्यापराधे गुरोर्दण्ड:'' वर्तमान में भी जो छात्र के असफल हो जाने पर शिक्षण व्यवस्था पर ही प्रश्नचिह्न लगाया जाता है संभवत: इसके पीछे यही प्राचीन अवधारणा निहित है कि ''विद्यार्थियों के कितने भी अपराध हो गुनाहगार शिक्षक है''। अध्यापक वर्तमान और भूत के बीच सेतु बन भावी समाज के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है। ये शिक्षकों की सच्चरित्रता एवं कर्त्तव्यपरायणता ही थी जिसके दम पर राजा अश्वपति घोषणा कर सका कि मेरे राज्य में कोई अशिक्षित, दुराचारी, मद्यपान करने वाला और जुआरी नहीं है।

चूँकि समाज एक परिवर्तनशील संबोध है एवं उसकी आवश्यकताएँ एवं अपेक्षाएँ भी उसके अनुसार ही परिवर्तित होती रहती है। अतः शिक्षा को भी ऐसा होना होगा कि वह समाज की आवश्यकताओं, परिस्थितियों एवं अपेक्षाओं का उचित समाधान प्रस्तुत कर सके। शिक्षक ही शिक्षा का सुव्यवस्थित ढाँचा प्रस्तुत कर सकता है जो समाज की बहुसांस्कृतिक परम्पराओं की रक्षा करते हुए एकता में अनेकता का भाव समाहित कर सके। शिक्षक की जबावदेही है कि वह किस तरह समानता सामाजिक न्याय, उत्कृष्टता के लक्ष्यों एवं राष्ट्रीय मुद्दों के प्रति छात्रों में संवेदनशीलता जागृत करे।

इस संदर्भ में चट्टोपाध्याय आयोग (1983-85) ने कहा है कि "यदि स्कूली शिक्षकों से उम्मीद की जाती है कि वे अपने पढ़ाने के उपागम में क्रान्ति लाएँ तो यह क्रान्ति पहले शिक्षा कॉलेजों में होनी चाहिए।" समिति ने जहाँ संसाधनों की अपर्याप्तता की बात की है वहीं शिक्षक-प्रशिक्षण की अवधि को 12वीं के पश्चात् पाँच वर्ष करने एवं सामान्य एवं पेशेवर शिक्षा को एक साथ लेने की आवश्यकता पर बल दिया है। इसी तरह यशपाल समिति ने अपने प्रतिवेदन में शिक्षण की गुणवत्ता में असंतोष व्यक्त करते हुए इसे प्रशिक्षण की कमी माना है, एवं इस बात पर जोर दिया है कि शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमें स्वतंत्र चिन्तन की योग्यता एवं स्व-अधिगम की योग्यता का विकास हो सके।

शिक्षा में नवाचार (पाठ्यक्रम)

इसी के मद्देनजर शिक्षक शिक्षा में नवाचार के प्रयास किए गये हैं जो सफल भी हुए हैं, लेकिन फिर भी क्षेत्र विशेष से बाहर उनका अनुप्रयोग नहीं किया जा सका। अतः आवश्यक है कि नवाचारी प्रयोगों के द्वारा प्राप्त परिणामों की विवेचना कर उनमें से वाञ्छनीय सुझावों को वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में स्थान देकर ऐसे चिन्तनशील शिक्षक तैयार किए जाएँ जो समाज एवं शिक्षा की बदलती आवश्यकताओं

के अनुरूप मूलभूत परिवर्तन लाने में सक्षम हों, एवं छात्रों को वस्तुस्थिति से सामना करने में सक्षम बना सके।

स्वतंत्रता के पूर्व तथा बाद अध्यापक शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम में नवाचार होते रहे हैं।

स्वतंत्रता पश्चात् किए गए नवाचार निम्नलिखित हैं–

1. NCERT में 1960 से माध्यमिक शिक्षक शिक्षा का चार वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है जो कि विषयकेन्द्रित दक्षता हासिल करने और पढ़ाने के तरीके में पेशेवर क्षमता प्राप्त करने पर केन्द्रित है।

2. 1968 में गुजरात के सूरत जिले के गाँधी विद्यापीठ में माध्यमिक शिक्षक के पाठ्यक्रम की शुरुआत की गयी इसकी विशेषताओं में गतिविधियों में सहभागिता द्वारा सीखना, कार्य और सामूहिक परिचर्चा द्वारा आत्मनिर्देशित शिक्षण एवं विद्यार्थी शिक्षकों में स्वतंत्र विश्लेषण तथा अनुभव–आधारित सीखने पर बल दिया है।

3. विज्ञान की पढ़ाई के लिए तथा शिक्षक प्रशिक्षण में उच्च सफलता के लिए HSTP (Hoshangabad Science Teaching Program) मध्यप्रदेश में शुरु किया गया इसमें प्रत्येक अध्यापक के तीन वर्षों के लिए गर्मियों में तीन सप्ताह तक आवासीय प्रशिक्षण दिया जाता है।

4. प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में अरविन्द शिक्षण सोसाइटी ने 1983 में एक एकीकृत उपागम को शुरु किया। इसका उद्देश्य भौतिक, भावात्मक और संज्ञानात्मक प्रभाव के गुणों का अधिकतम विकास है।

5. नवाचार के क्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय ने प्रारम्भिक शिक्षा का चार वर्षीय पाठ्यक्रम (B.El.Ed.) प्रारम्भ किया। जो उच्च माध्यमिक स्तर के बाद शुरु होता है। यह इस मान्यता पर

आधारित है कि वैयक्तिक रूपान्तरण ही सामाजिक रूपान्तरण का मार्ग प्रशस्त करता है।

6. शिक्षा विभाग वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान ने 1997 में अन्वेषण अनुभव सहभागी शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम B. Ed. (संवर्द्धित) प्रारंभ किया गया। इसमें सभी विद्यार्थी शिक्षकों के लिए अपने तरीके से सीखने में भागीदारी करने के अवसर उपलब्ध रहने की संभावना अधिक है।

7. विस्तृत–शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम का प्रारंभ मुम्बई विश्वविद्यालय द्वारा 2000 में किया गया। यह झुग्गी-झोपड़ी वासियों का वास्तविक अनुभव कराता है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य है कि शिक्षक–प्रशिक्षु गरीब और पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियो की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परम्पराओं से परिचित हो सकें और इससे बच्चों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का पता लगाकर उनमें कठिनाईपूर्ण परिस्थितियों से उभरने में सहायक कौशलों का विकास कर सके।

इनके अतिरिक्त NCERT और SCERT द्वारा सेवाकालीन संचालित सेवाकालीन अध्यापक प्रशिक्षण कार्य एवं अभी अपनी प्रारंभिक चरण में स्थित E-learning को भी शिक्षक प्रशिक्षण के प्रभावी नवाचारों की सूची में शामिल किया जा सकता है।

सुझाव

1. बदलते परिदृश्य की आवश्यकताओं के अनुरूप अध्यापकों और साथ ही सेवारत अध्यापकों के लिये न्यूनतम कम्प्यूटर साक्षरता का कार्यक्रम निश्चित किया जाए एवं इसे अध्यापक की ए. सी. आर. में स्थान दिया जाय। एवं न्यूनतम कम्प्यूटर साक्षरता के अभाव में अध्यापक की प्रोन्नति पर रोक लगा दी जाय, या अन्य किसी तरह की दण्डात्मक व्यवस्था की जाय ताकि अध्यापक कम्प्यूटर साक्षरता के प्रति प्रेरित हो सके।

2. नैतिक मूल्य एवं योग शिक्षा को शिक्षक शिक्षा में अनिवार्य स्थान दिया जाय ताकि छात्रों के सांवेगिक विकास को सुनिश्चित कर मानसिक दबाव, तनाव एवं संस्कारों के अभाव में आये दिन स्कूलों में होने वाली दुर्घटनाओं पर रोक लग सके एवं अध्यापक भी शिक्षण कार्य का निर्वहण कर्त्तव्य समझकर करें।

3. शिक्षक शिक्षा में कानूनी शिक्षा को शामिल किया जाए ताकि वे छात्रो को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सचेत कर सकें एवं स्वयं भी शोषण का शिकार होने से बच सकें।

4. पाठ्यक्रम में ऐसे शिक्षण-अनुभवों को भी शामिल किये। जाए जिनसे अध्यापक सहज भाव से और अनुभवों से जोड़कर शिक्षा देने में समर्थ हो सके।

5. शिक्षक शिक्षण पाठ्यक्रम में इस बात का ध्यान दिया जाना चाहिए कि शिक्षक प्रशिक्षणों का पाठ्यक्रम ऐसा हो कि वह बालकों के समग्र विकास को सुनिश्चित कर सके।

अध्यापक शिक्षा में तकनीकी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

–रेनू
शोध छात्र

अध्यापक शिक्षा उस ज्ञान, कौशल एवं योग्यता से सम्बन्धित है जो शिक्षक को 'शिक्षक' के रूप में सार्थकता प्रदान करती है। यह कार्यक्रम प्रशिक्षुओं को शिक्षोन्मुखी एवं वृत्तिकोन्मुखी बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम एक ऐसा कार्यक्रम है जो समय की माँग के अनुरूप योग्य एवं सक्षम अध्यापकों का निर्माण करता है।[1]

शिक्षाशास्त्री और दार्शनिक श्री अरविन्द ने कहा है कि–"शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति बनाता है। शिक्षक को देश का भावी कर्णधार व समाज का मार्गदर्शक माना गया है। वह राष्ट्र का शिरोमणि, निर्माता है।"

अध्यापक शिक्षा का अर्थ एवं महत्त्व

अध्यापक शिक्षा एक शैक्षिक आयोजन है जिसमें अध्यापकों को इस तरह से शिक्षित करने के लिए प्रयत्न किया जाता है कि अग्रिम प्रजन्म को ज्ञान एवं मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ ही उनके समस्त शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में वे सक्षम हो सकें तथा उनमें तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक चेतना, संसाधन सम्पन्नता तथा नवाचारिकता के साथ सांस्कृतिक उद्दीपना एवं मानवता बोध का समन्वयात्मक विकास करना संभव हो सके। अध्यापक शिक्षा वह आयोजन हो जिसमें दक्षता प्रदान करने की व्यवस्था हो।[2]

---

1. भारतीय आधुनिक शिक्षा, जनवरी 2006, शुक्ला, ग्रीष्मा, श्री सबल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान, पृ. 59
2. अध्यापक शिक्षा, पृ. 14

अध्यापक शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम ही नहीं है बल्कि एक ऐसा मिशन है या आयोजन है जिसके माध्यम से राष्ट्रीय संदर्भ में आधुनिक एवं परिवर्तित अध्यापकीय भूमिका के निर्वहण के लिए दक्षता तथा कुशलता प्राप्ति हेतु व्यक्तियों को शिक्षित किया जा सके।

महत्त्व

(i) शिक्षा को एक सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के माध्यम के साथ ही सामाजिक परिवर्तन का कारक भी माना जाता है। अतः अध्यापक शिक्षा सामाजिक शैक्षिक मार्गदर्शन सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए एक सक्षम अभिकरण है।

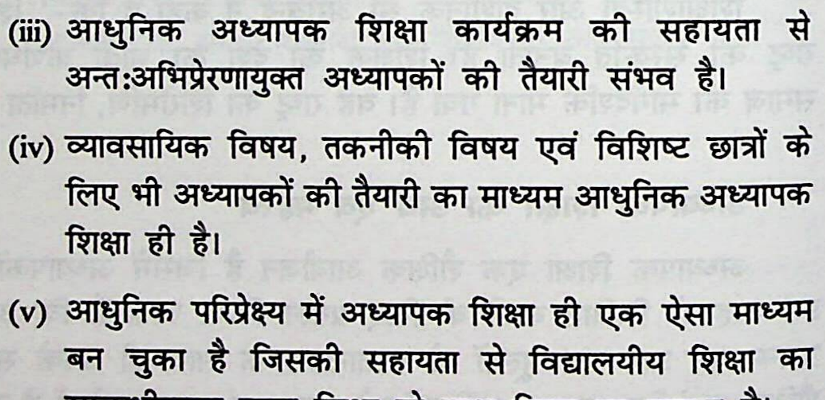
(ii) आधुनिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में पर्याप्त तन्मयता एवं लचीलापन का होना जरूरी है। अतः एक नवाचारिक प्रणाली के रूप में अध्यापक शिक्षा का आज अत्यधिक महत्त्व है।

(iii) आधुनिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की सहायता से अन्तःअभिप्रेरणायुक्त अध्यापकों की तैयारी संभव है।

(iv) व्यावसायिक विषय, तकनीकी विषय एवं विशिष्ट छात्रों के लिए भी अध्यापकों की तैयारी का माध्यम आधुनिक अध्यापक शिक्षा ही है।

(v) आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम बन चुका है जिसकी सहायता से विद्यालयीय शिक्षा का सम्बन्धीकरण उच्च शिक्षा के साथ किया जा सकता है।

अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता



1. **उद्यमगत आवश्यकता**—आज हम अध्यापन को एक उद्यम का स्थान दे चुके हैं। अध्यापन सम्बन्धी कौशल, तकनीकी प्रतिमान, विधि, सम्प्रेषण तकनीकी, अभिक्षमता, अभिवृत्ति, उत्तरदायित्व आदि को अनुकूल ढंग से विकसित करने के लिए अध्यापन शिक्षा को ग्रहण करना आवश्यक है।

2. **शैक्षिक आवश्यकता**—नवीन विषय क्षेत्र में भी निरन्तर विस्तार हो रहा है। अनेक नई विधाओं का समावेश विद्यालयीय स्तर पर पाठ्यक्रमों में किया जा रहा है ताकि शिक्षा का व्यावसायीकरण करना संभव हो सके। ऐसी स्थिति में अध्यापक शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम रह जाता है जो इन आधुनिक शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

3. **मनोवैज्ञानिक आवश्यकता**—अधिगमकर्ताओं की रुचि, अभिवृत्ति, आकांक्षा, आवश्यकता, अभिक्षमता, बौद्धिक योग्यता, वैयक्तिक विभिन्नता आदि के परिप्रेक्ष्य में ही उन्हें शिक्षित करने के लिए प्रयास करना उनका दायित्व है। आधुनिक अध्यापक के लिए मनोवैज्ञानिक ही नहीं शिक्षा मनोवैज्ञानिक होना भी अपरिहार्य है। अध्यापक के लिए नित्य नवीन शिक्षा मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं नवाचारिक खोज परिणामों से परिचित होते रहने की आवश्यकता है। ताकि वे अधिगमकर्त्ता के भावात्मक पक्ष को विकसित कर सके।

4. **सामाजिक आवश्यकता**—अध्यापक शिक्षा भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं के समाजीकरण के लिए प्रयत्न सामाजिक व्यवस्था, संरचना, मूल्य, प्रतिष्ठा को बनाये रखने के उद्देश्य से करती है। आज हमारी समाज व्यवस्था और संरचना ही असन्तुलित है जिसमें एक वस्तु अभियान्त्रिक को प्रतिष्ठा दी जाती है लेकिन एक मानव अभियान्त्रिक रूपी अध्यापक को नहीं क्योंकि वह भ्रष्टाचार के माध्यम से सम्पत्ति एकत्रित नहीं करता है। अतः आज अध्यापक वर्ग भी अपने सामाजिक दायित्वों से दूर होता जा रहा है।

5. **आर्थिक आवश्यकता**–प्रभावकारी अध्यापन के लिए विविध वर्ग की सहायक सामग्री एवं उपकरणों आदि को प्रयोग में लाया जाता है। उनका चयन, निर्माण एवं प्रयोग कैसे किया जाए, किन परिस्थितियों में किस शैक्षिक विधि, तकनीकी, व्यूह रचना, प्रतिमान, संगणक, **साहाय्यित प्रणाली** आदि का प्रयोग किया जाना उपयुक्त हो सकता है यह ज्ञान और सम्बन्धित अनुभव अध्यापक शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करते हुए अध्यापकगण न केवल सामग्री का सफलतापूर्वक प्रयोग अपितु रख-रखाव तथा पुनः प्रयोग कर आर्थिक संसाधन की रक्षा कर सकते हैं।

6. **दार्शनिक आवश्यकता**–दर्शन विचार, मान्यता, आदर्श आदि के मान्य समुच्चय को कहा जाता है। जिसके अनुसार व्यक्ति या समाज कार्य करने के लिए प्रयास करता है। बिना दर्शन के कार्य प्रणाली को विकसित कर पाना कठिन हो जाता है।[3]

अध्यापक शिक्षा में तकनीकी

तकनीकी या तकनीकी विज्ञान अंग्रेजी के Technology शब्द का पर्यायवाची है। तकनीकी का अर्थ है दैनिक जीवन में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रयोग करने की विधियाँ।[4] आधुनिक अधिगम सामग्रियों को निर्मित करने के क्षेत्र में भी अध्यापक/अध्यापिकाओं का दक्ष होना आवश्यक माना गया है। आधुनिक अनेकानेक शिक्षण अधिगम सामग्रियाँ अवश्य ही शैक्षिक तथा अनुदेशनात्मक तकनीकी, कौशल तथा पद्धतियों पर आधारित होती हैं। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक तकनीकी को समावेशित करना आज की अपरिहार्य आवश्यकता बन चुकी है। शिक्षण पूर्व

3. अध्यापक शिक्षा, पृ. 46-52
4. अध्यापक शिक्षा, पृ.0 393
5. शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, कुलश्रेष्ठा, एस.पी., विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण, 2007

अभ्यास के लिए भी जिन सूक्ष्म शिक्षण और लघु शिक्षण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है वे सभी शैक्षिक तकनीकी की ही देन है।[5]

शैक्षिक तथा अनुदेशनात्मक तकनीकी का अर्थ

NCTE ब्रिटेन (1969) के द्वारा सर्वप्रथम इस पद का प्रयोग करते हुए कहा गया कि शैक्षिक तकनीकी के अन्तर्गत उन प्रणालियों, तकनीकियों और सहायक उपकरणों का विकास, प्रयोग एवं मूल्यांकन करने के लिए प्रयास किया जाता है जो मानव अधिगम प्रक्रिया को सुधारने एवं उन्नत करने के लिए सहायक हो।

अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में शिक्षण और अधिगम दोनों ही क्षेत्रों में कुशलता की वृद्धि संभव हो सकती है। इसके आयाम में शिक्षण तकनीकी, अनुदेशनात्मक तकनीकी तथा व्यवहार तकनीकी तीनों को ही सम्मिलित किया जाता है। शैक्षिक तकनीकी के मशीनी अंग में क्लोज, सर्किट, टेलीविजन, शैक्षिक टेलीविजन, शिक्षण मशीन, टेपरिकार्डर, विडियो रिकार्डर, फिल्म प्रोजेक्ट, संगणक, मल्टीमीडिया आदि सभी आते हैं। इन अवयव को हार्डवेयर कहा जाता है। अधिगम के नियम और शिक्षण अधिगम के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का समावेश शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र में किया जाता है।

शैक्षिक तकनीकी का महत्त्व

शैक्षिक तकनीकी का महत्त्व अध्यापक शिक्षा में अत्यधिक है। शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी इस तकनीकी ने एक नवीन सूत्रपात किया है। शिक्षण के प्रतिमानों का विकास इस तकनीकी की प्रयुक्ति का ही परिणाम है। शिक्षण के क्षेत्र में अधिगमकर्ताओं की बढ़ती हुई संख्या और उसी अनुपात में दक्ष और कुशल अध्यापक/अध्यापिकाओं की कमी को देखते हुए शैक्षिक तकनीकीगत उपायों का प्रयोग करना अपरिहार्य बन रहा है।

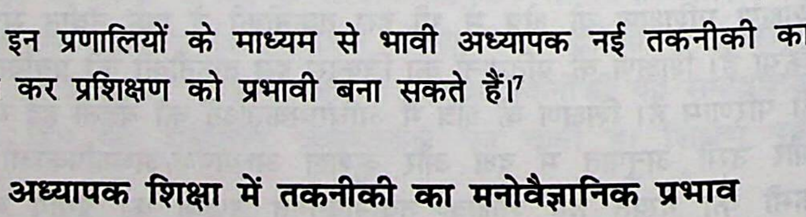
ध्वनि विस्तारक से लेकर रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, फिल्म प्रोजेक्ट, स्लाइड तथा ओवरहैड प्रोजेक्टर आदि का प्रयोग सर्वत्र (कक्षा

शिक्षण, शैक्षिक दूरदर्शन, प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता कार्यक्रम, दूरस्थ शिक्षा) औपचारिक, अनौपचारिक दोनों ही क्षेत्र में किया जा रहा है। छात्र शिक्षण की प्रविधियाँ (जैसे सूक्ष्म शिक्षण, लघु शिक्षण, अन्तर्क्रिया विश्लेषण, अनुरूपित शिक्षण, दलगत शिक्षण आदि) सभी प्रायः शैक्षिक तकनीकी की देन है।

शैक्षिक तकनीकी, मानवीय अभिवृत्ति, रूचि, तत्परता, आग्रह आदि में परिवर्तन उत्पन्न करने में सफल होने के कारण योग्य व्यक्तियों को अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में आने के लिए उत्साहित और आग्रही बनाने में सक्षम है। यह शिक्षक को आधुनिक प्रयुक्तियों से सज्जित करते हुए अधिगम कठिनाइयों को दूर करने के लिए व्यवहृत करती है।

तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास से शिक्षा का रूप परिवर्तित होता जा रहा है। उस पर औद्योगिक का काफी प्रभाव पड़ता है। ज्ञान का विस्फोट इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र में नवीन तकनीकी का प्रयोग कर अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है।[6]

नवीन तकनीकी के आयाम



इन प्रणालियों के माध्यम से भावी अध्यापक नई तकनीकी का प्रयोग कर प्रशिक्षण को प्रभावी बना सकते हैं।[7]

अध्यापक शिक्षा में तकनीकी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

शिक्षा आज 'बालकेन्द्रित' शिक्षा का रूप ले चुकी है। 'बालकेन्द्रित'

6. अध्यापक शिक्षा, पृ. 397
7. शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, पृ. 526

शिक्षा का सम्प्रत्यय मनोविज्ञान की देन है जिसका तात्पर्य है बालकों की योग्यताओं, क्षमताओं, रुचियों, मानसिक स्तरों तथा उनकी आयु आदि के आधार पर शिक्षा प्रदान करना।

बालकों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए मनोवैज्ञानिकों ने प्रभावशाली शिक्षण हेतु अध्यापक प्रशिक्षण के लिए निम्न बिन्दु प्रस्तुत किये–

1. **अभिप्रेरणा एवं रुचि**–अभिप्रेरणा तथा रुचि, शिक्षण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके अनुसार शिक्षक और छात्र दोनों अभिप्रेरित होकर कार्य करते हैं। फलस्वरूप अधिगम प्रक्रिया अधिक सजीव एवं प्रभावशाली होती है तथा भावी अध्यापकों के लिए एक उचित अवसर मिलता है इस प्रकार के अभिप्रेरित शिक्षण के माध्यम से।

2. **अभ्यास एवं आवृत्ति**–यदि अर्जित ज्ञान का अभ्यास एवं पुनरावृत्ति की जाये तो छात्र सफलता से स्मरण रख सकते हैं। अतः शिक्षण प्रक्रिया में पुनरावृत्ति तथा अभ्यास को प्रमुख स्थान देना चाहिए।

3. **तत्परता**–अध्यापक शिक्षा के अन्तर्गत भावी अध्यापकों को जो कुछ भी पढ़ाया जाए उसके लिए उनमें मानसिक तत्परता अवश्य होनी चाहिए विभिन्न तकनीकी विधियों के प्रयोग द्वारा उनके ज्ञान को स्थायी बनाया जा सकता है।

4. **प्रतिपुष्टि तथा पुनर्बलन**–भावी अध्यापकों को पुनर्बलन देकर प्रशिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। उन्हें उनके अच्छे व्यवहार हेतु पुरस्कृत किया जाना चाहिए। उनके द्वारा किये गये कार्यों की प्रगति के विषय में सूचनायें दी जानी चाहिए। छात्र ऐसी स्थिति में कार्य जल्दी करेंगे। इस प्रकार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को नूतन आयाम दिया जा सकता है।

5. **परिवर्तन, विश्राम व मनोरञ्जन**–शिक्षण कार्य यदि अधिक लम्बा हो तो छात्रों को थकान होने लगती है और वे शिक्षण में कम रुचि लेने लगते हैं इसके लिए यदि विषय वस्तु, शिक्षण विधियों व शिक्षण वातावरण में परिवर्तन लाया जाये तथा नई-नई विधियों का करे और कुछ विश्राम के बाद कुछ नवीन विषयों पर चर्चा की जाए तो छात्र शिक्षण कार्य में रुचि लेंगे तथा विषय का गहनता से अध्ययन करेंगे।

6. **स्व-अधिगम**–यदि छात्र स्वयं प्रयास करके सीखते हैं तो उनका सीखना अधिक प्रभावशाली होता है। अध्यापक को चाहिए कि वह छात्र को इस प्रकार निर्देशित करे कि छात्र स्वयं सीखने का प्रयास करेगा। स्व-अधिगम की प्रवृत्ति उचित परिस्थितियों तथा प्रशिक्षण द्वारा डाली जानी चाहिए।

7. **समूह गति शास्त्र**–मनोविज्ञान विश्वास करता है कि समूह में छात्र अधिक अच्छे ढंग से विषय को सीखते हैं। अतः समूह शिक्षण के माध्यम से अध्यापक शिक्षा में एक नवीन परिवर्तन लाया जा सकता है।

8. **सहानुभूति तथा सहयोग**–शिक्षक तथा छात्र के मध्य आत्मिक सम्बन्ध होना चाहिए। जिससे छात्र अपनी अनुभूति एवं विचारों को शिक्षक के समक्ष प्रस्तुत कर सके तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया अधिक सरल तथा प्रभावशाली बन सके।

9. **उद्दीपन**–एक अध्यापक अपनी कक्षा में छात्रों की अनुक्रियाओं के लिए समुचित उद्दीपनों की व्यवस्था करता है जिससे छात्रों की रुचि शिक्षण अधिगम में बनी रह सके। शिक्षण सूत्रों का प्रयोग कर अध्यापक प्रशिक्षण की प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सकता है।[9]

---

8. शिक्षा मनोविज्ञान, पाण्डेय, के.पी., अध्यापक शिक्षा

उपसंहार

अध्यापक शिक्षा को और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु निम्न बिन्दुओ पर ध्यान दिया जा सकता है–

1. पाठ्य–वस्तु विश्लेषण के साथ ही उन्हें तार्किक क्रम में विन्यस्त करने के कौशल को सिखाया जा सकता है जो कि पाठ–योजना के निर्माण के लिए अति आवश्यक होता है।
2. विषयवस्तु को पुनः लघु पद में स्थापित करने में भावी अध्यापक/अध्यापिकागण कुशलता की प्राप्ति स्वयं कर सकते हैं।
3. प्रत्येक अनुक्रिया के संदर्भ में उपयुक्त पुनर्बलन एवं प्रतिपुष्टि प्रदान करने के कौशल को वे सीख सकते हैं, ताकि कक्षाकक्ष शिक्षण व्यवहार का अनुकूलन कर पाना उनके लिए संभव हो सके।
4. अपेक्षित अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वे उपयुक्त परिस्थिति या अधिगम अनुभवों की संरचना-कौशल से परिचित हो सकते हैं जो शिक्षण प्रभावकारिता की वृद्धि के लिए आवश्यक होता है।
5. अधिगमकर्ताओं में निहित वैयक्तिक विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य को कर पाना उनके लिए संभव हो सकता है जैसा कि प्रायः अभिक्रम आदि के प्रयोग से संभव हो पाता है। इसका प्रयोग शिक्षण में सहायक और परिपूरक के रूप में ही किया जाना अपेक्षित होता है।

अध्यापक शिक्षा में तकनीकी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव अत्यधिक है और इसी से अध्यापक शिक्षा में एक नवीन विधा आई है। इस प्रकार अध्यापक शिक्षा एक ऐसा संप्रत्यय है जिसके माध्यम से भावी प्रशिक्षु को प्रशिक्षण दिया जा सके, तथा गुणवत्ता सम्पन्न अध्यापक की तैयारी की जा सके। संविधानगत लक्ष्यों की उपलब्धि हेतु भावी पीढ़ी को भारत

के संविधान तथा मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्यों का ज्ञान स्पष्ट कराया जाए जिससे वह स्वयं की भावनाओं के साथ-साथ दूसरों के अधिकारों का हनन न करे।

समाज तथा राष्ट्र में अनेक समस्यायें हैं जिनका समाधान उपयुक्त ढंग से शिक्षित भावी पीढी द्वारा ही कर पाना संभव है। सांस्कृतिक पुनर्गठन के माध्यम से सभी को एक साथ एक सूत्र में बाँधने का कार्य एक अध्यापक ही कर सकता है तथा इसे बनाने का कार्य अध्यापक शिक्षा करती है। इस प्रकार अध्यापक एक सूत्रधार है और अध्यापक शिक्षा उस सूत्र का आधार है।

ज्ञान प्रदान कर जीवन साकार बनाता है।
अध्यापक, अध्यापक शिक्षा में नए परिवर्तन लाता है।

ज्ञान युग में अध्यापक शिक्षा के मुद्दे एवं चुनौतियाँ

–हर्षवर्धन वशिष्ठ

एम. फिल. छात्र, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

भारतीय परम्परा में शिक्षक अर्थात् गुरु का स्थान बहुत ही ऊँचा माना गया है। गुरु ही हमें ज्ञान प्रदान करता है। हमें अन्धकार से प्रकाश में जाने के योग्य बनाता है। हमारी भारतीय संस्कृति में गुरु को पूजनीय बताकर, उसके प्रति विनीत और समर्पण भाव रखने का उपदेश दिया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में ''आचार्य देवो भव'' कहा गया है। बौद्ध तथा जैन युग में भी अध्यापक की प्रतिष्ठा महान थी क्योंकि वे आत्मज्ञान देते थे। सबके लिए शिक्षा का एक आवश्यक व अनिवार्य सत्य माना गया है, जिससे शत्–प्रतिशत् साक्षरता अर्जित की जा सके। यूनेस्को अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने 1972 में अपने प्रतिवेदन "Learning to be" में स्पष्ट किया था कि शिक्षा बच्चों (बालक) का मूल अधिकार है। इस विचार को भारत ने सहर्ष स्वीकारा है। आज शिक्षा दान नहीं, अपितु बालक का मूल अधिकार है।

यह सत्य है कि शिक्षा मानव संसाधन व राष्ट्रीय विकास का मूल साधन है। किन्तु व्यक्ति के मुक्त चिन्तन और समाज हित में व्यक्तित्व का विकास अत्यन्त महत्वपतूर्ण है। जिसके मुद्दे एवं चुनौतियाँ इस प्रकार हैं:-

* स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में शिक्षा का विस्तार हुआ है। 1947 में साक्षारता मात्र 17 प्रतिशत् थी और आज 74 प्रतिशत् है अर्थात् 26 प्रतिशत् निरक्षरों को साक्षरता की सीमा में लाना है।
* विद्यालयी शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन को रोकना है।

* छात्राध्यापक जिन पाठों द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं उनका नियोजन व निरीक्षण ठीक ढंग से न होना। शिक्षण अभ्यास अवधि 2-6 सप्ताह से बढ़ाकर 8 सप्ताह करना और लिखे पाठों को न मानना।

* शिक्षा के विकास के लिए आवश्यक है कि नए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाए तथा शिक्षा विषय को भारत के समस्त विश्वविद्यालयों में स्नातक व परास्नातक स्तर पर लागू किया जाए।

* प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण के समय प्रशिक्षणार्थियों को शिक्षण विधियों के साथ-साथ विषय ज्ञान दिया जाए। प्रशिक्षण काल के मध्य यह प्रश्न सदैव उठता है कि किसी भी स्तर पर प्रशिक्षण काल की अवधि कितनी होनी चाहिए। इस संबंध में कोठारी आयोग ने दो प्रकार की संस्तुतियाँ। प्रस्तुत की थी–

  • प्राथमिक स्तर पर प्रशिक्षण काल दो वर्ष का होना चाहिए।

  • माध्यमिक स्तर पर यह भी सुझाया जाता है कि जहाँ। पर एक वर्ष का पाठ्यक्रम है वह भी दो वर्ष का होना चाहिए।

* इस संबंध में सबसे अधिक कठिनाई यह है कि यह कार्य आर्थिक तथा व्यावसायिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है। शिक्षा आयोग ने इसका अच्छा उपाय यह बताया है कि एक वर्ष में कार्य दिवसों की संख्या बढ़ा दी जाए। आजकल यह 180-190 दिन है जिसे बढ़ाकर 230 दिन कर दिया जाए। कुछ प्रशिक्षण संस्थानों में कार्य दिवस बढ़ाने के परीक्षण अधिक सफल हुए हैं।

* सामान्य और व्यावसायिक पाठ्यक्रम का मिला-जुला कार्यक्रम विकसित करना। (इस दिशा में अमेरिका में प्रयोग हो चुका है। भारत में भी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हाईस्कूल के बाद

चार वर्ष का पाठ्यक्रम बनाया गया था और रीजनल कॉलेज ऑफ एजुकेशन में भी पांच वर्षीय पाठ्यक्रम चलाए गए। इन संगठित पाठ्यक्रमों को अभी तक विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा विभागों ने मान्यता नहीं दी है)।

* प्रशिक्षण संस्थानों में छात्राध्यापकों के कार्य का मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति परम्परागत प्रणालियों में प्रचलित है। छात्र प्रायोगिक परीक्षा में ही अच्छी श्रेणी प्राप्त करने के लिए सामान्यतः धन उपायों को अपनाते हैं– * प्राध्यापक की खुशामद करना * दूसरे प्राध्यापक की निन्दा करना * प्राध्यापक के घर अनावश्यक उपहार पहुँचाना। इसका परिणाम यह होता है कि जो छात्र वास्तव में प्रथम श्रेणी के योग्य है उन्हें न मिलकर अयोग्य छात्रों को प्रथम श्रेणी प्राप्त हो जाती है। मूल्यांकन व शिक्षण विधियों में आमूल-चूल परिवर्तन आवश्यक है।

* भारतीय संदर्भ में शिक्षा में विविधता है तथा शैक्षिक समानता की कमी के साथ-साथ समस्त छात्रों को समान अधिगम अवसर उपलब्ध नहीं होते, इसलिए समृद्ध तथा असक्षम में लगातार अन्तराल बना है, इसे कम करना।

* विद्यालयी शिक्षा में संसाधनों का बहुत अभाव है। संसाधनों की उपलब्धता की दृष्टि से विद्यालयों में अत्यधिक अन्तर है, इस अन्तर को दूर करना।

* बालिका शिक्षा पर बल देना।

आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं। अध्यापक को राष्ट्र निर्माता मानने वालों को अपने मत में परिवर्तन करना होगा। अध्यापक राष्ट्रीय शिक्षाा नीति के अभाव में राष्ट्र का निर्माता कैसे हो सकता है। शासन का पहला कर्तव्य यह हो जाता है कि शिक्षा का राष्ट्रीयकरण करे। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि समुदाय द्वारा उत्पन्न अनेक समस्याओं का अन्त हो जाएगा और समानता का भाव विकसित होगा। शिक्षा की घोषणा

राष्ट्रीय नीति में संशोधन कर उसे राष्ट्र के अनुकूल बनाए तथा शिक्षा की दलगत राजनीति से परे रखा जाए क्योंकि तात्कालिक लाभ के बजाय भावी समाज का निर्माण करने में सफलता प्राप्त होगी।

विद्यालयी शिक्षा का सीधा संबंध शिक्षक प्रशिक्षण से है यदि शिक्षक प्रभावी है तो सामान्य शिक्षा में स्वतः ही उत्तमता व गुणवत्ता आ जाती है। किन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक प्रशिक्षण रूढ़िवादिता आधारित है और इसमें शिक्षक नवाचारों की कमी है। भारत में शिक्षा में विभिन्न स्तरों में अध्यापक एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं रखते तथा कोई सहयोग नहीं देते जबकि सभी का उद्देश्य शिक्षा की प्रक्रिया को सम्पादित करना होता है। शिक्षण की पुनर्रचना में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक का कार्य बड़ा कठिन है, प्रत्येक व्यक्ति एक कुशल शिक्षक नहीं हो सकता।

यूनेस्को के अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग प्रतिवेदन ''अधिगम, अन्तर्निहित क्षमता'' 1986 में शिक्षा के चार स्तम्भ स्पष्ट किए गए हैं, जिनका उपयुक्त प्रयोग भारतीय शिक्षा में संभव है।

- ज्ञान के लिए अधिगम।
- कार्य के लिए अधिगम।
- कुछ बनने के लिए अधिगम।
- साथ रहने के लिए अधिगम।

उपर्युक्त शैक्षिक अवधारणा भारतीय संस्कृति व दर्शन में समाहित है जिसमें व्यक्ति मात्र भौतिक सुख के लिए नहीं, अपितु जीवन में प्रसन्नता व सुख की प्राप्ति हेतु किसी उच्च जीवन लक्ष्य के लिए देखता है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' एक भारतीय धरोहर है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत की जा रही है जिसमें कर्मयोगी होना एक साधना है।

इस प्रकार जब तक शिक्षण को प्रभावी नहीं बनाया जाएगा, व्याख्यान को कम नहीं किया जाएगा, छात्राध्यापकों को शैक्षिक वार्तालाप

में संलग्न नहीं किया जाएगा, उन्हें शैक्षिक सिद्धान्त और उनके प्रयोग के संबंध में निर्णय लेने योग्य नहीं बनाया जाएगा, तब तक हम समर्थ अध्यापक का निर्माण नहीं कर सकते। सबसे आवश्यक तथ्य यह है कि राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को प्रभावी बनाकर शिक्षा द्वारा प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास व जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना, तभी जिज्ञासु समाज में एक स्वतंत्र, संवेदनशील व्यक्ति यह कहने का साहस जुटा सकेगा कि "अधिगम मेरा अधिकार है।" इसे प्राप्त करना ही ज्ञान युग (Knowledge Era) की सर्वश्रेष्ठ चुनौती है।

महर्षि अरविन्द ने कहा था–"अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच–सींच कर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं।"

अध्यापकशिक्षा पाठ्यक्रम में नवाचार

—विचारी लाल मीना
शोध छात्र

अध्यापक शिक्षा में नवाचार का अर्थ

नवाचारों के प्रयोग से आश्रय उन नवीन वैज्ञानिक विधियों से एवं अन्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त क्रियाओं से लिया जाता है, जो कि शिक्षक शिक्षा को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। जैसे प्राचीन काल में शिक्षण विधि के रूप में व्याख्यान विधि का प्रयोग होता था, परन्तु वर्तमान में दल शिक्षण, योजना विधि एवं समस्या समाधान विधियों का प्रयोग प्रमुखता से होता है।

विगत तीन दशकों में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। यह परिवर्तन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर दिखाई देते हैं तथा इनका प्रयोग शिक्षा के हर स्तर पर है। कुछ प्रमुख परिवर्तन पाठ्यचर्या में नवाचार, शिक्षण विधियों में नवीनता तथा कक्षा में शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग आदि हैं। इनके साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण कदम शिक्षा की सामाजिक उपादेयता स्पष्ट करते हुए सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों को अवबोध कराना और शिक्षा पर किए जा रहे व्यय का औचित्य सिद्ध करना था।

विगत तीन दशकों में अनेक देश स्वतन्त्र हुए हैं और उनमें प्रचलित शिक्षा प्रणालियों में स्वतन्त्र देश की आवश्यकतानुसार मूल परिवर्तन का प्रयास किया गया है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि 1950 के आस-पास शिक्षा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयास पाठ्यचर्या के परिवर्तन के माध्यम से हुए हैं एवं पाठ्यचर्या के साथ-साथ शिक्षक

प्रशिक्षण एवं शिक्षण विधियों में महत्त्वपूर्ण नवीनता का समावेश हुआ है। प्रस्तुत लेख में पाठ्यचर्या सम्बन्धी नवाचारों पर चिन्तन का एक विनम्र प्रयास किया गया है।

आज यह सर्वमान्य है कि पाठ्यचर्या में वे समस्त अनुभव निहित है, जिनके द्वारा विद्यार्थियों को आवश्यक मानसिक, शारीरिक, नैतिक, बौद्धिक एवं भावात्मक विकास का अवसर प्राप्त होता है। ये अनुभव विद्यालय में अथवा विद्यालय के बाहर नियोजित किये जाते हैं तथा इनका सम्बन्ध विद्यार्थी के पर्यावरण से होता है। ये शैक्षिक क्रियाएँ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अनुभवों द्वारा दी जाती हैं।

पाठ्यचर्या को अनेक लेखकों ने भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है तथा अर्वाचीन धारणा में पाठ्यचर्या की परिभाषा विस्तृत एवं व्यापक रूप में की जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पाठ्यचर्या, पाठ्य विवरण की भाँति सीमित नहीं है। तथा इसकी सीमा, मात्र विद्यालय परिधि में ही समाप्त नहीं हो जाती। इस लेख में निम्न परिभाषा को विद्वानों के विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

पाठ्यचर्या में वे समस्त नियोजित अधिगम अनुभव सम्मिलित है, जिनको किसी एक सामाजिक संरचना में शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, छात्रों द्वारा प्राप्त किया जाता है। ऐसे अनुभव विद्यालय में एवं विद्यालय के बाहर दोनों औपचारिक एवं अनौपचारिक विधियों द्वारा प्राप्त होते हैं। इस परिभाषा के आधार पर पाठ्यचर्या के कतिपय आवश्यक तत्त्व निम्नलिखित है–

1. पाठ्यचर्या शिक्षा का आवश्यक साधन है।
2. पाठ्यचर्या शिक्षा का वह माध्यम है, जिसके द्वारा मानव मात्र को शिक्षित करना एवं उन्हें मानवीय गुणों से संयुक्त करना है।
3. पाठ्यचर्या एक अनवरत गतिशील प्रक्रिया है तथा वह कभी भी स्थिर नहीं होती।

4. पाठ्यचर्या में मात्र विषय वस्तु का ही उल्लेख नहीं होता, वरन् उसमें निर्धारित किए हुए सम्पूर्ण अधिगम अनुभव, अधिगम क्रियाए, शिक्षण सामग्री, शिक्षण सोपान तथा मूल्यांकन प्रक्रियाए सम्मिलित की जाती है, जिनके द्वारा विद्यार्थियों में मानवीय गुणों का विकास होता है।

पाठ्यचर्या में नवाचार

पाठ्यचर्या योजना स्थानीय, राज्य, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर बनाई जा सकती है। कभी-कभी विद्यालय स्तर पर भी नवीनीकरण का प्रयास सम्भव है। ऐसे प्रयास भिन्न-भिन्न स्तरों पर होते हैं, किन्तु इनका प्रभाव एक दूसरे पर होता है। इसी कारण से इनके विचारों में अनेक समानतायें मिलती है। यह कहना उपयुक्त होगा कि उत्तम नवाचार का प्रभाव एक विषय से दूसरे विषय पर तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर हो सकता है। यह सर्वविदित है कि सन् 1950-60 में संयुक्त राज्य अमरीका में विद्यालयीय पाठ्यचर्या में मूल परिवर्तन हुए। यह परिवर्तन प्रारम्भ में मात्र कुछ विषयों पर जैसे—विज्ञान एवं गणित में हुए और बाद में अन्य विषयों पर भी हुए। इन परिवर्तनों में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय संस्थानों ने पूर्ण सहयोग दिया और समस्त प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन सम्भव बना सके। इनका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लगभग सभी देशों की पाठ्यचर्या पर हुआ। इनमें भौतिकी पाठ्यचर्या में परिवर्तन (फिजीकल साइंस स्टडी कमेटी प्रोजेक्ट) एक मुख्य दिशा सूचक के रूप में माना जाता है। इसी संदर्भ में रसायन शास्त्र, जीव-विज्ञान, गणित आदि विषयों में नवीन पाठ्यचर्या की रचना की गई और इनमें मूल परिवर्तन किया गया। इन प्रयासों में अनेक शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों तथा विद्यालयीय शिक्षकों ने मिलकर एक साथ कार्य किया। इस प्रयास से समकालीन विषय को पाठ्यचर्या में सम्मिलित किया गया, नवीन शिक्षण प्रणालियों पर बल दिया गया तथा विषय वस्तु की संरचना में नवीनता लाई गई। प्रो. जे. ब्रूनर इस अभियान के अगुआ रहे हैं जिनकी पुस्तक 'दि प्रोसेस ऑफ एजूकेशन'

(1960) एक महान् कृति के रूप में इन प्रयासों की भूमिका को स्पष्ट करती है। इन प्रयासों के कतिपय नवाचार निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव हर देश की शिक्षा में प्रदर्शित हुआ है–

1. अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम उस विषय–वस्तु की संरचना का प्रतिनिधित्व करे।
2. पाठ्यक्रम में विषय–वस्तु की इकाईयाँ एक तार्किक अनुक्रम में क्रमबद्ध हों तथा उस विषय की संरचना की नींव बनाती हो।
3. शिक्षण विधियाँ उस विषय में नवीन ज्ञान को खोजने की विधियों का सही प्रतिनिधित्व करती हो।
4. विषय वस्तु एवं शिक्षण सामग्री क्रमबद्ध हो।
5. अधिगम के लिए विभिन्न सीखने की विधियाँ एवं शिक्षण परिस्थितियों का प्रयोग किया जाये।
6. स्वयं सीखने (Self-learning) पर अधिक बल दिया जाये।
7. आवश्यकतानुसार व्यक्ति की क्षमता के अनुसार शिक्षा हो।
8. पाठ्यक्रम में विविध शिक्षण सामग्री के उपयोग का प्रयोजन हो।
9. शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में विषय के प्रति रचनात्मक अभिवृत्ति जाग्रत की जा सके।
10. पाठ्यक्रम संरचना में मूल्यांकन अभिन्न अंग माना जाये।

इन नवाचारों को कार्य में परिणत करने के लिए अनेक देशों में अनुसंधान केन्द्र प्रारम्भ किये गये। ये केन्द्र अधिकतर विश्वविद्यालयों में स्थापित किये गये थे तथा किसी एक विषय के पाठ्यक्रम में कार्य करते थे।

संयुक्त राज्य अमेरिका में पाठ्यचर्या परिवर्तनों का प्रभाव ब्रिटेन पर हुआ तथा शिक्षक संघ द्वारा इस देश में पाठ्यचर्या में नवीनीकरण प्रारम्भ हुआ। 'नफील्ड' नामक संस्था द्वारा अनुदान दिए जाने के कारण अनेक विषयों के पाठ्यक्रम सुधारे गये तथा मूल परिवर्तन सम्भव हो सके।

इसी प्रकार के प्रभाव अनेक देशों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। इन नवाचारों को हर्ड (1969) द्वारा निम्न प्रकार लिखा गया है–

1. पाठ्यचर्या निर्माण कार्य मात्र स्थानीय स्तर पर न हो। यह राष्ट्रीय स्तर पर हो तथा विशेषज्ञ इस कार्य को शिक्षकों के साथ मिलकर करें।
2. शिक्षा का उद्देश्य परिवर्तन तथा भविष्य सम्बन्धी हो।
3. पाठ्यचर्या परिवर्तन सुधार तथा नवाचारों द्वारा हो।
4. पाठ्यक्रम संरचना संप्रत्यय योजना द्वारा हो जो अनुक्रम में जमी हों तथा विषय के तार्किक एकीकरण को प्रस्तुत करती हो।
5. विषय-वस्तु के चयन के लिए सम्प्रत्यय योजना को आधार माना जाये।
6. विषय-वस्तु का चयन विशेषज्ञों अथवा अन्वेषकों द्वारा किया जाये।
7. शिक्षा का कार्य सम्प्रत्यय रचना एवं क्रमिक वैचारिक शक्ति का निर्माण करना है।
8. विषय का ज्ञान विद्यार्थी उसी प्रक्रिया का प्रयोग करके करें, जिससे विषय में नवीन ज्ञान प्राप्त होता है।
9. शिक्षण विद्यार्थी केन्द्रित हो तथा खोज विधि का प्रयोग किया जाये।

10. सीखने के लिए प्रयोगशाला का प्रयोग किया जाये।

अध्यापक शिक्षा में नवाचारों की आवश्यकता

1. शिक्षण की प्रभावशीलता के लिए, 2. कौशलों के विकास के लिए, 3. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सरलता के लिए, 4. ज्ञान के स्थायित्व के लिए, 5. वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिए, 6. छात्रों में क्रियाशीलता का विकास, 7. नवीन शिक्षण विधियों का प्रयोग, 8. कुशल शिक्षकों के निर्माण हेतु, 9. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में रुचि हेतु।

सारांश एवं विवेचन

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम किसी भी देश के संविधान की भाँति उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है। इस लेख में पाठ्यक्रम की विस्तृत एवं व्यापक रूप से चर्चा की गई है तथा समकालीन कारकों के प्रभाव का वर्णन करते हुए अनेक नवाचारों को प्रस्तुत किया गया है। हमारे देश में स्वतन्त्रता के पश्चात् पाठ्यक्रम में अनेक परिवर्तन किए गये, किन्तु मूल परिवर्तन सम्भव नहीं हो सका। अब वक्त आ गया है कि पाठ्यक्रम के दोषों को दूर किया जाये। समाज में व्यक्ति सापेक्ष पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए उसमें लोच एवं गतिशीलता को प्राधान्य दिया जाये, अन्यथा तीव्रता से विस्तारमान विज्ञान और तकनीकी के ज्ञान और हमारे समाज की बदलती सामाजिक आर्थिक स्थिति के समक्ष किसी भी पाठ्यक्रम का जीवन क्षणिक रह जाने की सम्भावना है।

यहाँ यह कहना आवश्यक होता कि विकासशील देश में शिक्षा व्यावहारिक साक्षरता व व्यावसायिक कौशल पर अधिक बल देती है। विकसित देशों में माध्यमिक शिक्षा सर्वव्यापी होने के कारण इन बिन्दुओं को निहित मानते हुए अनेक अन्य उद्देश्यों पर भी बल दिया जाता है। उनका उद्देश्य एक समृद्ध, सुसंस्कृत समाज की रचना है। एक जिज्ञासु समाज की रचना का प्रयास है। इन उद्देश्यों की भिन्नता के कारण विकसित एवं विकासशील देशों की पाठ्यचर्या में अनेक मूल्यों में भेद

हो जाता है, और यह आवश्यक भी है। किन्तु हर देश की शिक्षा का प्रयोजन एक उत्तम मानव बनाना तथा जिज्ञासु समाज की रचना है। आज आवश्यकता इस बात की है शिक्षा के स्वरूप को परिवर्तित करके उसे जन-जीवन की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से जोड़ा जाए उसे सामाजिक परिवर्तन का एक साधन बनाया जाए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या राष्ट्रीय एकता, सामाजिक न्याय, उत्पादन, समाज के आधुनिकीकरण एवं सहज और आध्यात्मिक मूल्यों में योगदान प्रदान करने वाली होनी चाहिए। पाठ्यचर्या मानवीयता की ओर अग्रसर करने वाला साधन होना चाहिए। इस संदर्भ में कुछ अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या नवाचारों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया गया है-

1. पाठ्यचर्या देश के विकास से सम्बन्धित होनी चाहिए। इसका सम्बन्ध सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों से होना चाहिए।
2. इस युग में किसी भी विषय का पृथक् अस्तित्व सम्भव नहीं है। विषय वस्तु के संगठन में भिन्न-भिन्न विषयों का पारस्परिक सम्बन्ध बनाए रखना चाहिए।
3. पाठ्यचर्या द्वारा विद्यार्थियों में अर्वाचीन ज्ञान का सीखना ही सब कुछ नहीं मानना चाहिए। उनमें आवश्यक कौशल के साथ-साथ अनुकूलता की योग्यता भी आवश्यक है। आशा है भविष्य में वे नवीन तकनीकी परिवर्तनों को सरलता से सह सकेंगे।
4. पाठ्यचर्या द्वारा विद्यार्थियों से प्रबुद्ध अन्तर्दृष्टि का विकास होता है तथा उनका ज्ञान सामाजिक औचित्य का प्रतिबिम्ब होता है।
5. अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (यूनेस्को) की रिपोर्ट लर्निंग टू बी (1972) के अनुसार शिक्षा जीवन और कर्म से जुड़ी हो तथा विद्यालय के हर पक्ष इतने लचीले हो कि वे समुदाय के निकट आ सकें। इस प्रकार पाठ्यचर्या द्वारा हर छात्र-छात्रा की शिक्षा और सामाजिक जीवन एक-दूसरे के पूरक बनने चाहिए।

6. पाठ्यचर्या अधिक व्यावसायिक झुकाव के लिए होनी चाहिए।
7. पाठ्यचर्या के संगठन का मुख्य सम्बन्ध शिक्षण एवं अधिगम से होता है। इस पक्ष के लिए जीन पियाजे एवं प्रो. ब्रूनर के विचारों का उपयोग आवश्यक है। इन शिक्षाविदों के विचारों पाठ्यचर्या में अधिगम का क्रम, पदार्थों का संगठनात्मक स्वरूप, विषय-वस्तु की व्याख्या, तथा मूल्यांकन के विविध प्रकारों के निर्माण आदि में देखा जा सकता है। इनके विचार शिक्षण एवं सीखने से निहितार्थ है।
8. पाठ्यचर्या शहरी जीवन अथवा समुदाय के उपयुक्त होनी चाहिए क्योंकि पाठ्यचर्या सामाजिक जीवन को प्रतिबिम्बित करती है।

पाठ्यचर्या संरचना में मूल्यांकन एक आवश्यक नवाचार तत्त्व है जिसमें निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative evaluation) तथा संयुक्त मूल्यांकन (Summative evaluation) अपना-अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। निर्माणात्मक मूल्यांकन द्वारा पाठ्यचर्या रचना करने वालों की सही प्रतिपुष्टि सम्भव है, जिसमें आवश्यकतानुसार उत्तमता लाई जा सके तथा उसे व्यावहारिक बनाया जा सके। संयुक्त मूल्यांकन मात्र प्रामाणिकता का साधन नहीं है, किन्तु किस सीमा तक निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हुई है, उसका लेखा जोखा उपलब्ध कराता है।

संदर्भ

1. शिक्षा में नवचिन्तन, डॉ. रामपाल सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथम संस्करण, 1983
2. शिक्षा में नवाचार एवं नवीन प्रवृत्तियाँ, प्रो. आर. के. चौबे, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004
3. शिक्षा में नवाचार, डॉ. विश्वनाथ बिहारी लाल, डॉ. नरेश चन्द्र त्रिपाठी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. शैक्षिक तकनीकी एवं नवीन प्रवृत्ति, एस. पी. कुलश्रेष्ठ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
5. अध्यापक शिक्षा, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित

अध्यापक-शिक्षा में प्रभावी गुणवत्ता

–गीता
शोध छात्र

शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है जिसे मात्र किसी कौशल या कार्य के निष्पादन तक सीमित नहीं किया जा सकता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति में निहित आन्तरिक क्षमताओं का विकास समग्र रूप से करने के साथ ही वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि या सन्दर्भ में उपयोगी तथा संसाधान सम्पन्न व्यक्तित्व के निर्माण के लिए प्रयत्न किया जाता है।

शिक्षा मानव संसाधन व राष्ट्रीय विकास का मूल साधन है किन्तु व्यक्ति के मुक्त चिन्तन और समाज हित में व्यक्तित्व का विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षा द्वारा ही आवश्यक ज्ञान कौशल तथा अभिवृत्ति का विकास सम्भव है जिससे भावी चुनौतियों को समझने और समाधान निकालने की क्षमता अर्जित होती है। शिक्षा द्वारा शान्ति, स्वतंत्रता तथा सामाजिक न्याय जैसे आदर्शों की प्राप्ति संभव है। इसलिए शिक्षा वैधानिक व सामाजिक भूमिका में अहम् भूमिका निभाती है। आज अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के सामने गुणात्मक सुधार की सबसे बड़ी चुनौती है। यदि अध्यापकों की शिक्षा का गुणात्मक विकास नहीं होता तो उसका परिणाम भावी पीढ़ी के लिए अच्छा नहीं होगा। इससे शिक्षा का स्तर और भी गिरता है। वास्तव में शिक्षा वह है जिसमें भौतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों में सामंजस्य स्थापित हो तथा जो विद्यार्थियों को चरित्रवान् श्रमसाध्य व स्वावलंबी बनाए। इसके लिए अध्यापकों का निपुण होना अत्यन्त आवश्यक है अतः इस हेतु अध्यापक-शिक्षा की आवश्यकता होती है।

अध्यापक-शिक्षा वह शैक्षिक आयोजन या व्यवस्था है जिसमें अध्यापकों को इस प्रकार से शिक्षित करने के लिए प्रयत्न किया जाता है कि अग्रिम पीढ़ी को ज्ञान एवं मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ ही उनके समस्त शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में वे सक्षम हो सकें तथा उनमें तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक चेतना, संसाधन-सम्पन्नता तथा नवाचारिता के साथ सांस्कृतिक उद्दीपन एवं मानवताबोध का समन्वयात्मक विकास करना सम्भव हो सके अर्थात् अध्यापक-शिक्षा वह आयोजन है जिसमें दक्षता प्रदान करने की व्यवस्था हो। इसके लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं समस्त चारित्रिक मर्यादाओं के साथ ही राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक मूल्यों को विकसित करने के लिए सफल प्रयास करना इस आयोजन का लक्ष्य होगा। इस प्रकार अध्यापक-शिक्षा को निम्न रूप से परिभाषित किया गया है–

"अध्यापक-शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम ही नहीं है बल्कि एक ऐसा मिशन या आयोजन है जिसके माध्यम से राष्ट्रीय सन्दर्भ में आधुनिक एवं परिवर्तित अध्यापकीय भूमिका के निर्वहन के लिए दक्षता तथा कुशलता प्राप्ति हेतु व्यक्तियों को शिक्षित किया जा सके।"[1]

प्रशिक्षण की गुणवत्ता का बड़ा संकेतक शिक्षक के लिए उसकी आवश्यकता और प्रासंगिकता है क्योंकि किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यही कारण है कि अध्यापन को सर्वोत्तम व्यवसाय की संज्ञा दी जाती है। इसलिए शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों को व्यवसायिक रूप से तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान परिस्थितियों में परम्परावादी अध्यापक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं जबकि आधुनिक अनुदेशन के नवीन एवम् गत्यात्मक विधियों की आवश्यकता है। इसे प्रभावपूर्ण व्यावसायिक शिक्षक के द्वारा परिष्कृत किया जाना चाहिए जो अध्यापक को अध्यापन के लिए आवश्यक क्रान्ति के लिए प्रेरित करेगी तथा उसके भावी विकास के लिए आधार का कार्य करेगी।

---

1. अध्यापक-शिक्षा : डॉ.जी.सी. भट्टाचार्य, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पञ्चम-संस्करण-2010-2011, पृ. सं.-13

गुणवत्ता को शिक्षक-शिक्षा की आत्मा घोषित करते हुए कोठारी आयोग (1964-66) ने सुझाव दिया कि-"विश्वविद्यालयों में सामान्य व पेशेवर शिक्षा के समाकलित पाठ्यक्रम पढ़ाए जाएँ, जिसमें स्वाध्याय और चर्चा तथा इंटर्नशिप के विस्तृत कार्यक्रम का महत्वपूर्ण स्थान हो।"[2]

समीक्षात्मक रूप से आचार्य राममूर्ति समिति (1990) ने कहा कि शिक्षक-शिक्षा में इंटर्नशिप का ढाँचा पूरी तरह से वास्तविक परिस्थिति में किए गए व्यावहारिक अनुभव के प्राथमिक मूल्य पर आधारित होता है जिसमें कुछ समय के लिए शिक्षण का अवसर देकर अध्यापन के गुणों के विकास का अवसर दिया जाता है। शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम (T.E.P.) द्वारा भी शिक्षा क्षेत्र में गुणात्मक सुधार लाना है।[3]

अधिकांश आधुनिक विद्यार्थी अध्यापकों द्वारा दिए गए ज्ञान का केवल प्राप्तकर्त्ता बनकर रह जाते हैं। वास्तविक गुणवत्ता तो 'प्रदाता' के साथ-ही-साथ 'प्राप्तकर्त्ता' की गुणवत्ता पर भी निर्भर होती है। सभी विद्यार्थी शिक्षक के लिए अपने तरीके से सीखने व भागीदारी करने के अवसर उपलब्ध कराने के लिए संभावनाएँ बनी होती है। वे केवल 'प्राप्तकर्त्ता' न बने अपितु सहभागी बने, पाठ्यचर्या बनाए और आपस में ज्ञान-कौशल का आदान-प्रदान करे। सीखने वाले की आवश्यकता के अनुसार सीखने के लिए अनुभव की संख्या व उसका स्वरूप भी बढ़ेगा। ऐसा कार्यक्रम प्रत्येक विद्यार्थी अध्यापक के लिए व्यक्तिगत तौर पर अर्थपूर्ण व समृद्धशाली होगा।

(T.E.P.) व अन्य शैक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा पाठ्यचर्या निर्माण, सीखने वाले पर केन्द्रित सहभागिता परक उच्च प्रासंगिक बोध, व्यक्ति और समूह के तौर पर निर्धारित गति और सीखने के तरीके, निरंतर मूल्यांकन एवं फीडबैक, विद्यार्थियों के लिए व्यक्तिगत रूप से संतुष्टि,

---

2. शिक्षक-शिक्षा : राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, 2.4 NCERT, दिल्ली, पृष्ठ-3-4
3. शिक्षा के लक्ष्य : राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र NCERT, 2005, 2. 1, पृ.-5

आत्म-विकास में वृद्धि आदि प्रक्रमों में सम्पूर्णतावादी और अनुभवजनित तथा आत्मसातीकरण को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। इसके साथ ही समय सीमा को बिना बढ़ाए उपलब्ध संसाधनों के भरपूर उपयोग का अवसर शिक्षक-शिक्षा सम्बन्धी गुणवत्ता को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिये।

अध्यापकों द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिये। इसके लिए अध्यापक शिक्षण से सम्बन्धित कार्यक्रम को सफलतापूर्वक प्रभावी ढंग से सम्पादित किया जाना चाहिए। अति जटिल कार्यों के लिए विशिष्ट ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल एवम् व्यवहार को महत्त्व दिया जाना चाहिए। सुव्यवस्थित एवम् प्रणालीबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम का निश्चित समय में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य का ज्ञान करना चाहिए। अध्यापक के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक मन्तव्य यह होना चाहिए कि यह छात्रों को पढ़ाने के लिए विषय की प्रवीणता तथा विषय-वस्तु, कौशल, स्पष्टीकरण एवम् तर्कपूर्ण शृंखलाबद्ध प्रस्तुतीकरण को करना आवश्यक होना चाहिए।

अन्ततः सारांश रूप में कहा जा सकता है कि विद्यालयी शिक्षा का सीधा संबंध शिक्षक, प्रशिक्षण तथा छात्रों में उनकी प्रभाविता से होता है। यदि शिक्षक प्रभावी है तो सामान्य रूप से शिक्षा में स्वतः ही उत्तम गुणवत्ता आ जाती है। शिक्षण को प्रभावी बनाकर शिक्षक द्वारा प्रत्येक व्यक्ति प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास व जीवन पर्यन्त शिक्षा के समुपलभ्य संसाधनों एवं अवसरों का उपयोग करके एक जिज्ञासु समाज का स्वतंत्र एवं संवेदनशील व्यक्ति ही भारतीय समाज प्रदत्त समान शिक्षा के अधिकार को समझ सकेगा। अतः शिक्षण की पुनर्रचना में अध्यापक-शिक्षा एवं उसकी प्रभाविता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

शिक्षणशास्त्र में नवाचार

–दीपा रानी
शोध छात्र

शिक्षणशास्त्र (Pedagogy) वास्तव में कोई नया प्रत्यय नहीं है, अपितु 1960 के दशक तक इसे ''शिक्षण कला'' की पाठ्यवस्तु के रूप में बी.एड. कक्षाओं में अनिवार्य विषयों में सम्मिलित किया गया था। परन्तु 1980 के दशक में पुनः 'शिक्षण कला' अथवा शिक्षण शास्; (Pedagogy) का नवीन प्रत्यय के रूप में विकास हुआ। आज शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण शास्त्र का नवीन प्रवर्तन के रूप में अध्ययन किया जाने लगा है। शिक्षणशास्त्र की प्रकृति कलात्मक तथा वैज्ञानिक दोनों प्रकार की है। इसलिए आज फिर से शिक्षण शास्त्र को महत्व दिया जाने लगा है। इसी आधार पर शिक्षणशास्त्रीय संस्थान (Pedagogical Institute) की स्थापना होने लगी है, जिससे प्रभावी शिक्षक तैयार किये जा रहे है।

''शिक्षणशास्त्र, शिक्षण की एक प्रक्रिया तथा प्रणाली है।''

Pedagogy is a process and system of teaching.

शिक्षणशास्त्र के उत्पाद ''शिक्षक'' के विकास के लिए चार मुख्य बातें आवश्यक है। प्रथम आवश्यकता मानसिक विकास करना और अतीत के अनुभवों का विश्लेषण करके उनके महत्व को समझना है। द्वितीय आवश्यकता है कि पाश्चात्य विकास को ध्यान में रखा जाए। आलोचनात्मक कौशल का विकास किया जाए, जिसमें संस्थाओं की गतिशीलता को समझ सके। समाज के शक्ति के स्वरूप अपनी क्रियाओं हाव-भाव के अनुरूप सम्पादन कर सके और समुचित विधियों तथा प्रविधियों का चयन करके उपयोग कर सके। कक्षा में ऐसी परिस्थितियों का सृजन किया जाए, जिससे समय के अनुरूप योग्यताओं एवं कौशलों

को विकसित कर सके। तृतीय आवश्यकता के रूप में शिक्षकों के लिए आवश्यक है कि भाषा की कल्पना तथा उसके स्वरूप की योग्यता होनी चाहिए। शिक्षण की प्रक्रिया में सम्प्रेषण की सक्षमता (Communicative competency) सबसे अधिक महत्व रखती है। प्रभावशीलता का यह महत्वपूर्ण घटक होता है। यह सक्षमता समाज की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। सम्प्रेषण की सक्षमता आदर्शों के अनुरूप होनी चाहिए। अध्यापक को छात्रों के सामाजिक कौशलों का विकास करने की आवश्यकता है, जिससे वह सामाजिक न्याय के प्रति जागरूक हो सके एवं उसमें प्रजातांत्रिक जीवन के मूल्यों का विकास हो सके।

अध्यापकों की ''चतुर्थ आवश्यकता'' होती है कि योजनाओं का नियोजन करके उनका सम्पादन करें।

शिक्षण शास्त्र का प्रमुख कार्य प्रभावी शिक्षकों का निर्माण करना है तथा उपरोक्त शिक्षक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षणशास्त्र का उत्तरदायित्व ओर भी अधिक बढ़ जाता है। शिक्षक तथा शिक्षा दोनों ही समुन्नत राष्ट्र की आधारशिला होती है। अतः राष्ट्र के विकास हेतु शिक्षणशास्त्र में नवाचारों का प्रयोग आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है।

शिक्षणशास्त्र में नवाचार

''नवीन तथा आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रयोग ही नवाचार है।'' नवाचार ऐसे विषय की ओर संकेत करता है जो प्राचीन पद्धतियों से भिन्न तथा आधुनिकता से सम्बद्ध होता है। अतः ''शिक्षण पद्धतियों में नवीन प्रवृत्तियों का प्रयोग ही शिक्षणशास्त्र में नवाचार है।'' नवाचार के दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) सैद्धान्तिक नवाचार (2) संगठनात्मक/प्रायोगिक नवाचार।

सैद्धान्तिक नवाचार–सैद्धान्तिक नवाचार से तात्पर्य शिक्षा तथा शिक्षण में प्रयोग की जाने वाली नवीन शैक्षिक नीतियों से है। जिसमें तकनीकीयन्त्रों का महत्व नहीं होता। जैसे–C.C.E.P सतत् मूल्यांकन

परीक्षा, सत्रीय परीक्षा, तथा शिक्षा का अधिकार आदि।

संगठनात्मक/प्रायोगिक नवाचार–संगठनात्मक अथवा प्रायोगिक नवाचार से तात्पर्य शिक्षा अथवा शिक्षण में यान्त्रिक शिक्षण विधियों के प्रयोग से है। प्रायोगिक नवाचारों को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है (1) आधुनिक नवाचार तथा (2) अत्याधुनिक नवाचार। आधुनिक नवाचार के अन्तर्गत आकाशवाणी, दूरदर्शन, टेपरिकार्डर, व्यक्तिनिष्ठानुदेशन प्रणाली, अभिक्रमितानुदेशन, कम्प्यूटर, प्रणाली उपागम आदि।

अत्याधुनिक नवाचार आधुनिक 3G की अवधारणा से अभिप्रेरित है इसके अन्तर्गत निम्नलिखित नवाचार प्रयुक्त किए जा सकते है।

* **ई-अधिगम**–कम्पयूट में मोडेम् तथा दूरभाष के संयोजन द्वारा इन्टरनेट में विद्यमान सभी समाचार सूचनाएँ आदि उपलब्ध हो जाती है। E-mail के द्वारा विचार विनिमय का लिखित रूप भी सम्भव हो जाता है तथा इससे शिक्षण सुसाध्य हो जाता है। विडियो कान्फ्रेन्स के द्वारा कक्षा शिक्षण सुलभ होता है। इस प्रकार का शिक्षण ई-अधिगम कहलाता है।

* **एम अधिगम**–आधुनिक शिक्षा पद्धति में m learning के सम्प्रत्यय को भी देखा जा सकता है। एम अधिगम से तात्पर्य से मोबाइल द्वारा शिक्षण इसके अन्तर्गत Text messege, multimedia msg, Audio talk तथा Vedio chat, Vedio call आदि के माध्यम से भी शिक्षण को प्रभावी तथा रोचक बना सकते है।

* **Smart class**—इसके अन्तर्गत छात्रों को P.P.T. तथा O.H.P. आदि माध्यम से सुलभ शिक्षण प्रदान किया जाता है।

उपरोक्त नवाचारों के माध्यम से निःसन्देह शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है। तथा शिक्षण में इनके प्रयोग से पूर्वोक्त शिक्षक आवश्यकताओं को भी पूरा किया जा सकता है।

यद्यपि विगत वर्षों में भारत देश ने अभूतपूर्व विकास किया है

तथापि जनसंख्याधिक्य इस देश में अत्याधुनिक नवाचार तथा आधुनिक नवाचारों का प्रयोग सभी विद्यालयों तथा स्तरों के लिए करना कठिन है। फिर भी भारत सरकार द्वारा कई ऐसी नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया है जिससे शिक्षण में आधुनिक तथा अत्याधुनिक नवाचारों का प्रयोग सम्भव हो पाएगा। जैसे "टेबलेट" पी.सी. तथा "आकाश" आदि। किन्तु नवाचारों के संगठनात्मक/प्रायोगिक रूप की अपेक्षा सैद्धान्तिक नवाचारों का प्रयोग व्यापक तथा व्यावहारिक रूप में अधिक किया जा सकता है।

अन्त में सुझाव रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षणशास्त्र में नवाचारों का प्रयोग नितान्त अनिवार्य है। शिक्षक आधुनिक नवाचारों से युक्त शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग करें जिससे छात्रों को सरल व्यावहारिक अवबोध तथा अधिगम प्राप्त हो सके। तथा मुख्य रूप से सैद्धान्तिक नवाचारों के अन्तर्गत शिक्षाविदों द्वारा ऐसी नीतियों का निमाण किया जाए जिससे शिक्षण को व्यापक व्यावहारिक तथा प्रभावी बनाया जा सके और यह तभी सम्भव हो पाएगा जब शिक्षणशास्त्रीय संस्थानों में नवाचार के विषय के रूप में हो जहाँ नवाचारों के सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक दोनों रूपों का सकारात्मक तथा व्यावहारिक अध्ययन हो सके।

अध्यापक शिक्षा में ई-अधिगम की महत्ता

–चेतन वेदिया
शोध छात्र

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्‌गुरुं तं नमामि।

(स्कन्दपुराणम्)

भारतीय संस्कृति सदैव गुरुओं की महिमा से निनादित रही है। यह ही वह संस्कृति है जहाँ गुरु को साक्षात् ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठा दी गई है। जिस प्रकार ज्ञान का विकास होता रहा उसी प्रकार ज्ञानोपार्जन व ज्ञान सम्प्रेषण की विधा का विकास होता गया। समय के साथ शिक्षा ने अपने कई मौलिक लक्ष्य बदले तो वहीं शिक्षा प्रदान करने के अभिकरणों में भी पर्याप्त परिवर्तन देखने को मिला। शिक्षा की प्रक्रिया में एक नूतन शाखा का विकास हुआ, जो थी अध्यापक शिक्षा (Teacher Education)। समय के सातत्यता के अनुसार गुरुओं के ज्ञान सम्प्रेषण की विधा में भी पर्याप्त परिवर्तन आया। प्राचीन काल से ही गुरु शिक्षण के द्वारा जिज्ञासा तृप्ति, ज्ञान प्राप्ति में सहायता, स्वतन्त्र चिन्तन की प्रेरणा, ध्यान केन्द्रण में सहायता, दशा-सुधार, विचारों की अस्पष्टता दूर करने में सहायता, शब्दों व अर्थों का सही विश्लेषण, वास्तविक सत्य की खोज व जीवन के विभिन्न पक्षों से जुड़ी जानकारी प्रदान करता आ रहा है। अध्यापकीय शिक्षा ने भी विभिन्न कालों में प्राचीन कालीन अध्यापकीय शिक्षा (लगभ्र 2500 ई. पू. 500 ई. पू.) से स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय अध्यापकीय शिक्षा के समस्त रूपों को जीया है। समय के

अनुसार परिवर्तमान विश्व में एक नई क्रांति का आगाज हुआ और यह क्रान्ति थी **प्रौद्योगिकी क्रान्ति**। प्रौद्योगिक क्रान्ति का विस्तार इतने व्यापक रूप में हुआ कि आज यह आधुनिकता का पर्याय बन गई है। संसार की सभी शाखाओं को समयानुसार जीवित रहने के लिए इस शाखा का प्रश्रय लेना ही पड़ा और ज्ञान की शाखा भी इससे अछूती नहीं रही। शिक्षणाधिगम रूपी संसार में इस परिवर्तन का न केवल समुचित स्वागत किया गया अपितु इसे व्यापकार्थ में लाने के लिए शैक्षिक प्रक्रिया में समुचित स्थान भी प्रदान किया गया। यह वही शाखा जो आज अन्तर्जालीय अधिगम, ई-अधिगम या ई-लर्निंग के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्रौद्योगिकी क्रान्ति में कम्प्यूटर का इतना प्रभाव पड़ा कि आज शैक्षिक उत्थान के लिए यह अनन्यतम आवश्यकता बन गई है।

ई-लर्निंग अनिवार्य रूप से कौशल एवं ज्ञान का कम्प्यूटर एवं नेटवर्क समर्थित अन्तरण है, ई-लर्निंग इलेक्ट्रॉनिक अनुप्रयोगों और सीखने के प्रक्रियाओं के उपभोग को संदर्भित करता है, ई-लर्निंग के अनुप्रयोगों और प्रक्रियाओं में वेब-आधारित शिक्षा, कम्प्यूटर-आधारित शिक्षा, आभासी कक्षाएँ और डिजीटल सहयोग शामिल है। पाठ्य-सामग्रियों का वितरण इंटरनेट, इंट्रानेट/एक्स्ट्रानेट, ऑडियो या वीडियो टेप, उपग्रह, टी वी और सीडी-रोम (CD-ROM) के माध्यम से किया जाता है। इसे अपने आप या अनुदेशक के नेतृत्व में किया जा सकता है और इसका माध्यम पाठ, छवि, एनीमेशन, स्ट्रीमिंग वीडियो और ऑडियो है।

ई-लर्निंग के समानार्थक शब्दों के रूप में सीबीटी (CBT) (कम्प्यूटर आधारित शिक्षण) आईबीटी (IBT) (इंटरनेट आधारित शिक्षण) या डब्ल्यूबीटी (WBT) (वेब आधारित शिक्षण) जैसे संक्षिप्त शब्द रूपों का इस्तेमाल किया जा सकता है।

शिक्षार्थियों की सुविधा एवं नम्यता कई परिस्थितियों में ई-लर्निंग खुद से भी किया जाता है और इसका शिक्षा सत्र 24x7 उपलब्ध रहता है। शारीरिक रूप से कक्षाओं में भाग लेने के लिए शिक्षार्थी किसी विशेष दिन/समय के अधीन नहीं होते हैं। वे अपनी सुविधानुसार शिक्षा सत्रों को

कुछ देर के लिए रोक भी सकते हैं सभी ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के लिए उच्च प्रौद्योगिकी की आवश्यकताा नहीं होती है। इसके लिए आम तौर पर केवल बुनियादी इंटरनेट उपयोग, ऑडियों और वीडियो की जानकारी होना ही काफी है। प्रयोग किए जाने वाले प्रौद्योगिकी के आधार पर छात्र काम के वक्त भी अपना पाठ्यक्रम शुरू कर सकते हैं और इस पाठ्यक्रम को किसी दूसरे कम्प्यूटर पर अपने घर में भी पूरा कर सकते हैं।

21वीं सदी में शिक्षार्थियों के अनुशासन, पेशे या कैरियर में आवश्यक डिजीटल साक्षारता कौशल की मौजूदगी को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कौशल एवं क्षमताओं को विकसित करना है। ई–लर्निंग के हित में एक प्रमुख तर्क यह है कि यह पाठ्यक्रम के भीतर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के उपयोग को अन्तःस्थापित कर ज्ञान के आधार पर काम करने वाले लोगों के लिए आवश्यक कौशल को विकसित करने में शिक्षार्थी को समर्थ बनाता है। हम यह भी तर्क दे सकते हैं कि इस तरह से ई–लर्निंग के उपयोग में शिक्षार्थियों के पाठ्यक्रम डिजाइन और मूल्यांकन का प्रमुख आशय निहित होता है।

कई उच्च शिक्षा अर्थात् लाभकारी संस्थान अब ऑनलाइन कक्षाओं की सुविधा प्रदान करते हैं। इसके विपरीत निजी और गैर लाभकारी स्कूलों में से लगभग आधे स्कूल ही यह सुविधा प्रदान करते हैं। अकादमिक नेताओं के एक सर्वेक्षण के आधार पर स्लोन की रिपोर्ट से पता चलता है कि आम तौर पर पारम्परिक कक्षाओं की तुलना में अपने ऑनलाइन कक्षाओं से छात्रों को बहुत कम संतुष्टि प्राप्त होती है। हो सकता है कि निजी संस्थान इन ऑनलाइन प्रस्तुतियों में और रुचि लेने लगें क्योंकि इस तरह की प्रणाली के संस्थापन की लागत कम होती है। छात्रों के साथ ऑनलाइन काम करने के लिए अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर्मियों को ही काम पर रखना चाहिए। इन कर्मचारियों को सामग्री क्षेत्र को समझने की जरूरत है और इन्हें कम्प्यूटर एवं इंटरनेट के उपयोग के मामले में भी बहुत ज्यादा प्रशिक्षित होने की जरूरत है। ऑनलाइन शिक्षा तेजी से बढ़ रही है और प्रमुख शोध विश्वविद्यालयों में ऑनलाइन

शिक्षा का विकास किया जा चुका है।

ई–लर्निंग शब्द सीएससीएल (CSCL), प्रणालियों का एक नवनिर्मित प्रयोग है जिसकी उत्पत्ति वेब 2.0 के उद्भव के दौरान हुई थी। अगर ई–लर्निंग 2.0 के नजरिए से देखा जाए तो पारम्परिक ई–लर्निंग प्रणालियाँ अनुदेशात्मक पैकेटों पर आधारित थी। जिन्हें इंटरनेट प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल करने वाले छात्रों को वितरित किया जाता था। छात्र की भूमिका में पठनीय सामग्रियों से शिक्षा ग्रहण करना और सौंपे गए कामों की तैयारी करना शामिल था। इन कामों का मूल्यांकन शिक्षक करते थे। इसके विपरीत नई ई–लर्निंग प्रणालियों के तहत सामाजिक शिक्षा और सामाजिक सॉफ्टवेयर जैसे ब्लॉग, विकी, पॉडकास्ट एवं आभासी विश्व, जैसे–सेकंड लाइफ (दूसरा जीवन) के इस्तेमाल पर और अधिक जोर दिया जाता है। आभासी कक्षा के वातावरण बनने के अलावा ये सामाजिक नेटवर्क ई–लर्निंग का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन गए हैं। परीक्षण की तैयारी एवं भाषा शिक्षा जैसी विविध विषयों के इर्द–गिर्द ऑनलाइन शिक्षा समुदायों को प्रोत्साहित करने के लिए सामाजिक नेटवर्कों का इस्तेमाल किया जाता है। मिश्रित शिक्षा सेवाओं की एक प्रवृत्ति होती है जहाँ कम्प्यूटर आधारित गतिविधियों को व्यावहारिक या कक्षा आधारित परिस्थितियों के साथ एकीकृत किया जाता है।

वर्तमान में प्रौद्योगिकी व कम्प्यूटर एक दूसरे के पूरक है। शिक्षा में कम्प्यूटर का निवेश आज समय की माँग है। कम्प्यूटर आधारित शिक्षा जिसे कभी–कभी संक्षेप में सीबीएल (CBL) भी कहा जाता है। शैक्षिक वातावण के एक मुख्य घटक के रूप में कम्प्यूटर के उपयोग को संदर्भित करता हैं। जबकि यह एक कक्षा में कम्प्यूटरों के इस्तेमाल को संदर्भित कर सकता है। यह और अधिक व्यापक तौर पर एक संरचनात्मक वातावरण को संदर्भित करता है। जिसमें अध्यापन के प्रयोजनों के लिए कम्प्यूटरों का इस्तेमाल किया जाता है। इस अवधारणा को आम तौर पर उन मायनों में कम्प्यूटरों के इस्तेमाल से अलग रूप में देखा जाता है। जहाँ शिक्षा कम से कम अनुभव का एक परिधीय

तत्त्व हैं

वर्तमान समय में जब शिक्षण के प्रजातान्त्रिक पक्ष पर अत्यन्त बल दिया जाता है तो आवश्यक है कि अध्यापक शिक्षा में उन सभी पक्षों का सन्निवेश हो जो शिक्षण को मनोरञ्जनात्मक, रुचिकर व प्रभावी बनाने में सहयोग दे सके। सीबीटी (CBT) मुद्रित शिक्षा सामग्रियों का एक अच्छा विकल्प हो सकता है क्योंकि शिक्षा में वृद्धि करने के लिए वीडियो या एनीमेशन संपन्न माध्यम को बड़ी आसानी से अंत:स्थापित किया जा सकता है। सीबीटी का एक और लाभ यह भी है कि एक बार आरंभिक विकास कार्य पूरा हो जाने पर इन्हें व्यापक दर्शकों को अपेक्षाकृत कम लागत पर आसानी से वितरित किया जा सकता है।

ई–लर्निंग स्वाभाविक रूप से दूरस्थ शिक्षा एवं नम्य शिक्षा के लिए अनुकूल होता है, लेकिन आमने–सामने या प्रत्यक्ष अध्यापन के साथ भी इसका प्रयोग किया जा सकता है, इस मामले में आम तौर पर 'मिश्रित शिक्षा' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। ई–लर्निंग के अग्रदूत 'लेस्किन' कहते हैं कि 'ई' की व्याख्या या अनुवाद इस तरह से किया जाना चाहिए कि इसका अर्थ एक परम्परागत राष्ट्रीय व्याख्या या अनुवाद के रूप में 'इलेक्ट्रॉनिक' के अतिरिक्त रोमाञ्चक (Entertain), ऊर्जावान (Energetic), उत्साही (Enthusiasm), भावुक (Emotional), विस्तृत (Elaborate), उत्कृष्ट (Excellent) एवं शैक्षिक (Educational) शैक्षिक शब्दार्थ के रूप में निकले इस तरह की विस्तृत व्याख्या इक्कीसवीं सदी के अनुप्रयोगों की अनुमति प्रदान करती है तथा शिक्षा एवं मीडिया मनोविज्ञान को समानता के स्तर पर लाकर खड़ा कर देता है। इसत तरह शैक्षिक प्रबन्धन व शैक्षणिक सामग्री प्रबन्धन अध्यापक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। जो E-learning, शैक्षिक रिकॉर्ड प्रबन्धन व ऑनलाइन शिक्षा सामग्री यथा–संलेखन, संपादन, सूचीकरण उपलब्ध कराता है।

प्रस्तुत पत्र में दिये हुए संकलनात्मक व तथ्यात्मक साक्ष्यों के आधार पर वैश्विक शिक्षा व्यवस्था में E-learning शिक्षा का विशिष्टतम अंग साबित हुआ है। अध्यापकीय शिक्षा में ई–अधिगम एक अनन्यतम आवश्यकता है।

अध्यापक शिक्षा का उपार्जनोन्मुखीकरण

–मायाराम उनियाल
शोध छात्र

शिक्षा माँ सरस्वती का दिया एक ऐसा वरदान है, जो हमारे भविष्य को संवारता है तथा हमें संस्कारवान् बनाकर एक जिम्मेदार नागरिक बनाता है। यह देवी व्यक्ति को केवल किताबी ज्ञान ही नहीं वरन् व्यावहारिक ज्ञान भी देती है। भारतीय परम्परा में इस बात का ज्वलन्त और प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सहस्राब्दियों पूर्व भी हमारे यहाँ उत्कृष्टतम चिन्तन, विद्या–साधन और श्रेष्ठतम शिक्षा व्यवस्था थी। निर्विवाद रूप से मानव के पुस्तकालय की सर्वप्रथम पुस्तक के रूप में सम्मानित 'ऋग्वेद' ही है। वस्तुतः शिक्षा मानव में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। अतः शिक्षा जीवन के मार्ग पर आने वाली समस्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है।

भारतीय परम्परा में गुरु शब्द को विविध विशेषण देकर ईश्वरवत् माना है। आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक की यात्रा में मानव के सर्वांगीण विकास हेतु गुरु की महत्ता सर्वत्र प्रतिपादित है। शिक्षा जगत में गुरु को अध्यापक, शिक्षक आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

शिक्षण–कार्य समस्त कार्यों में पवित्रतम और परमावश्यक माना जाता है क्योंकि ज्ञानदान के समान इस संसार में कोई भी परहिताय निर्दिष्ट कर्म नहीं है। यह शिक्षण की प्रक्रिया निश्चयेन अध्यापक शिक्षा पर ही निर्भर है। शिक्षा की इस अवधारणा को दृष्टिगत करते हुए प्राचीन समय में ज्ञानी गुरुओं द्वारा अपने शिष्य को शिक्षा दी जाती थी और अब अध्यापक द्वारा छात्रों को शिक्षा दी जाती है।

विद्यालय समाज का लघु एवं गतिशील सामुदायिक केन्द्र है जिसका आधार सद्भावना है, समाज परिवर्तन की प्रक्रिया का जन्म भी

विद्यालय से ही होता है। अतः **विद्यालय ही वह साधना केन्द्र है जिसमें देश के भाग्य का उदय होता है** और अध्यापक शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके कारण भावी अध्यापकगण कौशलों तथा तकनीकों से परिचित हो सकते हैं।

यहाँ पर एक बात यह भी विचारणीय है कि पश्चिम देशों की भांति हमारे देश में भी व्यक्तिवाद बढ़ रहा है। व्यक्ति जितना अधिक शिक्षित होता जाता है उतना ही वह समाज से दूर होता चला जाता है। इस प्रकार वह समाज की समस्याओं और उत्थान में रुचि नहीं लेता है आज बौद्धिक एवं यान्त्रिक विकास हो रहा है और इस यान्त्रिक विकास की प्रक्रिया में समाज में बिखराव देखने में आता है। पारिवारिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में ह्रास होने के कारण नई और पुरानी पीढ़ी में तनाव दृष्टिगत होता है। जीवन मूल्यों में तालमेल न होने के कारण नवयुवक परम्परागत जीवन धारा से अलग हो जाते हैं अतः वर्तमान परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि अध्यापक शिक्षा में जीवन मूल्यों पर आधारित नैतिक शिक्षा सम्मिलत की जाये जिससे देश का भविष्य नैतिकता से संवलित हो और इसके साथ ही अध्यापक का आचरण भी आदर्श होना चाहिए। शिक्षक व्यवहार की प्रकृति बहुविध एवं बहुआयामी होने के कारण अधिक मूल्यवान और व्यावहारिक होते हुए भी अधिगमकर्ता के लिए ग्रहण योग्य बनती है।[1]

मनु से लेकर महात्मा गाँधी तक भारत में तथा सुकरात से लेकर जॉन ड्यूवी तक पश्चिम में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अभूतपूर्व परिवर्तन हुए लेकिन जब भी भारतीय अध्यापक शिक्षा को प्रायः आजीविकामूलक बनाये जाने के विषय में चर्चा की जाती है तो उसका आशय इसे अवश्य ही उपार्जनोन्मुखीकृत करना होता है। उपार्जन उन्मुख बनाये जाने का तात्पर्य इसके व्यवसायीकरण से कदापि नहीं है बल्कि किसी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से शिक्षित-प्रशिक्षित होने वाले व्यक्तियों को स्वयं उपार्जन करके या रोजगार करने के लिए सक्षम बनाना होता है।

1. नैड फ्लिण्डर्स (1963)

विकसित राष्ट्र जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अध्यापक शिक्षा को मात्र एक उपार्जन उन्मुख विषय के रूप में महत्त्व प्रदान किया जाता है। जबकि शिक्षाशास्त्र को एक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक विषयवस्तु के रूप में स्वीकृति दी जाती है। **शिक्षाशास्त्र यदि सैद्धान्तिक अवयव है तो अध्यापक शिक्षा उसका व्यावहारिक या अनुप्रयुक्त भाग (Aspect) माना जाता है।**

शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य आत्मा का विकास करना है। यदि शिक्षा चरित्र के विकास में मजबूती नहीं लाती, आत्मा को विशुद्ध नहीं करती, नवयुवकों के लिए आदर्शवाद प्रस्तुत नहीं करती, मात्र आजीविका के लिए योग्य बनाती है तो शिक्षा अधूरी है, तब यह कहा जायेगा कि शिक्षा प्रणाली में जंग सी लगी हुई है।

जिस प्रकार एक चिड़ियाघर में सभी पशु पक्षियों को एक सा भोज्य पदार्थ घास आदि देकर उन्हें जीवित नहीं रखा जा सकता उसी प्रकार समस्त छात्रों को कक्षाकक्ष में एक ही शिक्षण विधि द्वारा अधिगम नहीं कराया जा सकता। फलस्वरूप अधिकांश विद्यार्थियों की कुछ कालावधि पश्चात् शैक्षणिक मृत्यु हो जायेगी। अतः अध्यापकों की शिक्षा इस प्रकार होनी चाहिए कि व्यक्तिगत-भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए समान रूप से ज्ञान का आदान-प्रदान हो। साथ ही अध्यापक शिक्षा में अध्यापक एवं छात्रों का अन्तः सम्बन्ध भी मधुर होना चाहिए। इसके लिए अन्तर्क्रियात्मक परिवेश का निर्माण भी होना चाहिए। क्योंकि शिक्षक व्यवहार आकलनात्मक होता है। शिक्षक व्यवहार विश्लेषणात्मक होता है।

अतः अध्यापक शिक्षा में कौशलगत एवं तकनीकी ज्ञान प्रदान करना आवश्यक है। इसलिए शिक्षा का आधुनिकीकरण होना परम आवश्यक है। इसमें दक्षता, दायित्त्व, प्रतिबद्धता, व्यवहारगत कुशलता आदि आवश्यक है।[2]

---

2. Not Gold but only men can make a Nation Great & Strong

इसलिए शिक्षा को समाजोपयोगी बनाने के लिए समय-समय पर शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। आधुनिक विश्व को दृष्टि पथ में रखते हुए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभिनव परिवर्तन अपेक्षित हैं और अध्यापक शिक्षा को उन्नत एवं सार्वभौम बनाने के लिए शिक्षा संस्थानों को भी पाठ्यक्रम में अपेक्षित परिवर्तन करने चाहिए।

संदर्भ

1. शिक्षा की आवश्यकतायें — डॉ. नरेश कुमार
2. अध्यापक शिक्षा — डॉ. जी. सी. भट्टाचार्य
3. अध्यापक शिक्षा में प्रायोगिक कार्य — प्रो. एम. के. शर्मा
4. शिक्षा एवं भारतीय समाज — डॉ. रामपाल सिंह वर्मा
5. शैक्षिक प्रगति विशेषांक — डॉ. रामशकल पाण्डेय (सम्पादक)

भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा कल, आज और कल

–विवेक कुमार तिवारी

शोध छात्र

शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मानव की उत्तरोत्तर उन्नति को प्रदर्शित करता है। पुराकाल के पाषाणयुग से लेकर वर्तमान काल के नैनो प्रौद्योगिकी तक की महायात्रा का मूलाधार शिक्षा ही है। शिक्षा प्रदान करने का कार्य अध्यापक के द्वारा किया जाता है जो अपने अन्दर आत्मसात किये हुए ज्ञान व अनुभव को विभिन्न पद्धतियों तकनीकियों आदि द्वारा अत्यन्त सरल व सहज रूप में छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता है जिसको अधिगमित कर छात्र विकासपथ पर अग्रसर होता है इस प्रकार अध्यापक का स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है अतः अध्यापकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता के आधार पर भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ किए गए जो धीरे-धीरे विकसित होकर वर्तमान में अपने मूर्त रूप में है। भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा की भूतकालिक, वर्तमानकालिक तथा भविष्यकालिक स्थितियों पर निम्नप्रकार से प्रकाश डाला जा सकता है।

प्राचीनकाल अथवा वैदिक काल–

सर्वप्रथम ईसा पूर्व 2500 से लेकर ईसा पूर्व 500 तक को विस्तृत अवधि को विभिन्न विद्वानों ने प्राचीनकाल की संज्ञा से अभिहित किया है। इस काल में शिक्षा वैदिक ज्ञान की प्राप्ति से सम्बद्ध होने के साथ ही उस पर समाज के श्रेष्ठ लोगों विशिष्टतया ब्राह्मण वर्ग का आधिपत्य था। मनुस्मृति में आचारयुक्त ब्राह्मण को हीं सम्पूर्ण फल को प्राप्त करने वाला बताया गया है–

"आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्ण फल भाग भवेत्।"[1]

अध्ययन-अध्यापन का मुख्योद्देश्य वेदाध्ययन करना ही था।

अध्यापक शिक्षा के विषय में कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होने के कारण निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रचलन के कारण गुरूकुल में रहकर ज्ञानार्जन करने वाले श्रेष्ठ तथा योग्यतम शिष्य को शिक्षण कार्य करने का दायित्व सौंपा जाता था। गुरू वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के आधार पर श्रेष्ठतम शिष्य को अध्यापक के रथ में चयनित करता था न कि परम्परा के अनुसार पीढ़ी-दर-पीढ़ी पिता-पुत्र। गुरू द्वारा योग्य शिष्य को पुत्र के समान मानते हुए उसको श्रेष्ठ स्थान दिया जाता था जिसका उदाहरण है गुरू द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र अश्वत्थामा को नहीं प्रत्युत् शिष्य अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाया।

अथर्ववेद के अनुसार गुरू अपने गर्भ में शिष्य को तीन रात्रि तक रखकर कलुषित संस्कारों से मुक्त कर ज्ञान प्रदान करता था-

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भयन्तः।
तं रात्रितिस्र उदरे विभर्ति तं जातं दुष्टुभभिसंयन्ति देवाः।।"[2]

श्रुति व स्मृति पर आधृत होने से तत्कालीन विद्या गुरूमुखी मानी जाती है। अथर्ववेद में गुरू को ज्ञान का अथाह सागर मानते हुए शिष्य को पृथ्वी से आकाश तक की छिपी शक्तियों का ज्ञान कराने वाला अद्वितीय व्यक्ति कहा गया है-

"आचार्यस्ततक्ष नभसि उभे इमे।
उर्वी गम्भीरे पृथिवी दिवं च।।"[3]

वेदाध्यायी एवं वेदाध्यापक दोनों के लिए ब्राह्मण होना मनुसंहिता में आवश्यक माना गया। वर्ण के स्थान पर जाति का प्रादुर्भाव हुआ, कर्मणा

1. मनुस्मृति-1/109
2. अथर्ववेद-11/5/3
3. अथर्ववेद-11/5/8

निर्दिष्ट वर्ण जन्मना निर्दिष्ट जाति में परिवर्तित होने लगा। ब्राह्मण के अधीन वेदों के अभ्यास, शास्त्रार्थ, आलोचना तर्क इत्यादि शैक्षिक क्रियाकलाप रहने के कारण कर्मणा शिक्षक के स्थान पर जन्मना।

बौद्धकाल–

लगभग 501 ई.पू. से 1200 ई. के कालखण्ड में बुद्ध की धार्मिक शिक्षाओं को प्रसारित करने के लिए योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। प्राचीन काल में शिक्षा की वंचित जातियों को भी इस काल में विद्याध्ययन की अनुमति दी जाने लगी। सर्वप्रथम औपचारिक रूप से धार्मिक शिक्षा के लिए शिक्षकीय प्रशिक्षण की व्यवस्था इस कालावधि में की गई। जातिभेद विहीन समाज की स्थापना को बौद्ध धर्म में अधिक महत्त्व दिया गया जिसमें सबको भिक्षु बनने के योग्य माना जाने लगा।

प्रव्रज्या, पबज्जा तथा उपसम्पदा जैसे संस्कारों के मध्यवर्ती काल में विद्याभ्यास पूर्ण होने के बाद दो आचार्यों की देखरेख में अध्यापन हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती थी। वरिष्ठता व श्रेष्ठताधार पर आचार्य अथवा उपाध्याय स्तरीय योग्यतार्जन के बाद ही भिक्षुओं को अध्यापन हेतु अधिकार प्राप्त हो पाता था। आचार्यों की अध्ययन-अध्यापन में सहायता करने वाले संघों के वरिष्ठ व योग्यतम छात्र को पित्थिचार्य अर्थात् सहायक शिक्षक के रूप में देखा जाता था इसी अग्रशिष्य प्रणाली को (Monitorial System) इस काल में औपचारिक अध्यापक शिक्षा के रूप में सर्वप्रथम स्वीकृति दी गई। यद्यपि बौद्धकालीन अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित प्रणाली काा विशेष योगदान विद्यालयीय शिक्षा और सामाजिक जीवन के संदर्भ में नहीं था तथापि-औपचारिक तौर पर इस काल की अध्यापक प्रशिक्षण प्रणाली को आधारशिला के रूप में मान्यता दी जाती है।

मध्य या इस्लाम काल–

1200 ई. से लेकर 1700 ई. की 500 वर्षीय इस कालावधि को मूलतः मुस्लिमकालीन शिक्षा व्यवस्था के रूप में देखा जाता है। इस

काल में मकतब और मदरसा जैसी धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से मौलवियों द्वारा कुरान का धर्मोपदेश जनसाधारण तक पहुँचाने का कार्य किया जाता था परन्तु औपचारिक रूप में अध्यापक शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध नहीं किया गया था तथा मकतब या मुकलिस में स्थानीय अरबी तथा मदरसों के लिए उच्च शिक्षित या अरबदेशीय मौलिवयों की प्रायः नियुक्ति की जाती थी। विद्वान के रूप में स्थापित होने के लिए इस काल में अरबी, फारसी का ज्ञान आवश्यक माना जाता था। सम्भवतः इसी संदर्भ में ''पढ़े फारसी बेचे तेल'' जैसी कहावतें प्रचलन में आई।

इस प्रकार औपचारिक दृष्टि से देखा जाए तो ऐतिहासिक कालखण्ड में अध्यापक शिक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध लगभग नगण्य ही था।

पूर्व स्वातन्त्र्यकाल–

इस काल के प्रारम्भ में अग्रशिष्य प्रणाली का व्यवहार करते हुए गुरू शिक्षा प्रदान करते थे। आगे चलकर डॉ. एण्ड्रयू बैल ने 1787 में अपनी पुस्तक ''एन एक्सपेरिमेन्ट इन एजुकेशन'' में इस प्रणाली को बेल लेंकेस्टिरियन प्रणाली के रूप में स्थापित करते हुए मद्रास में प्राथमिक स्तर पर प्रयोग हेतु संस्तुत किया। डैनिश और ब्रिटिश संयुक्त प्रयास के अन्तर्गत कैसी साहब ने अपने सहयोगी मार्शमैन तथा वार्ड के साथ 1793 में सबसे पहले बंगाल के सेरामपोर (श्रीरामपुर) नामक स्थान में एक औपचारिक अध्यापकीय-प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की जिसे 'नार्मल स्कूल' के रूप में जाना गया। ऐसे ही कलकत्ता तथा बम्बई में भी प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये।

1854 में वुड घोषणा पत्र के साथ ही ब्रिटिश सरकार के द्वारा अध्यापकीय प्रशिक्षण की दिशा में ठोस व सार्थक प्रयत्न प्रारम्भ हुए। लार्ड कर्जन (1902-05), कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917-19) ने अध्यापक शिक्षा में सुधार हेतु अनेकों प्रयास किए जिससे प्रशिक्षण विद्यालयों का उत्तरोत्तर विकास हुआ।

स्वातन्त्र्योत्तर काल–

स्वतन्त्रता के पश्चात् भी गठित अनेक आयोगों व समितियों द्वारा अध्यापक शिक्षा के उन्नयन हेतु सुझाव एवं प्रयास किए गए। 1947 में केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली, 1948 में विश्वभारती विश्वविद्यालय में विनय भवन की स्थापना तथा 1948 में ही गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग एवं 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा शिक्षक–प्रशिक्षण के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण संस्तुतियाँ की गई। एन.सी.ई.आर.टी. का गठन 1961 में तथा इसके अधीन चार प्रादेशिक महाविद्यालयों की स्थापना 1963 में हुई ताकि अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में नवीन कार्यक्रमों का प्रारूपण हो सके।

5 अक्टूबर 1968 को यूनेस्कों की संस्तुति में यह स्पष्ट किया गया कि ''अध्यापक तैयारी का यह उद्देश्य है कि प्रत्येक छात्र में उनकी सामान्य शिक्षा तथा वैयक्तिक संस्कृति को विकसित किया जा सके उनमें शिक्षण करने तथा दूसरों को शिक्षित करने की योग्यता को विकसित करना सम्भव हो सके।

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा 1969 में व्यापक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया गया, जिसमें सामान्य उद्यमगत पाठ्यक्रम, छात्र शिक्षण, कार्यानुभव तथा सत्रीय कार्य पर बल दिया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् शिक्षा संस्थाओं के समस्त क्रियाकलापों पर नजर रखने का कार्य करता है। यू.जी.सी. के द्वारा 1990 में पाठ्यक्रम विकास के सन्दर्भ में कार्य किया गया। दूरस्थ शिक्षा माध्यम पर राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषदीय समिति का गठन 1990 में किया गया जिसने अध्यापक प्रशिक्षण पर अपने विचार प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय परामर्शदात्री समिति भी बनाई गई तथा पंचवर्षीय योजनाओं में भी अध्यापक शिक्षा में विकास के प्रति सुझाव दिए इस प्रकार अध्यापक प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्त क्रियाकलापों पर अनेक समितियों व संगठनों का सुझाव प्राप्त हुआ जिससे इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हुई।

वर्तमान सन्दर्भ में अध्यापक शिक्षा पर प्रकाश डालें तो अनेक ऐसी समस्यायें दृष्टिगोचर होती है जिनका निदान अपरिहार्य है। प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में वृद्धि इनमें अव्यवस्थायें, प्रशिक्षुओं की संख्या में लगातार वृद्धि ज्ञान व मूल्य के स्तर में लगातार गिरावट अत्यन्त चिन्तनीय है। समसामयिक समस्याओं के समाधान हेतु निम्न सुझाव ध्यातव्य हैं–

* प्रशिक्षण संस्थाओं पर पूर्ण नियन्त्रण हो तथा उसका निरीक्षण हमेशा होता रहना चाहिए।
* प्रवेश परीक्षा पूर्णतः अनिवार्य हो तथा ऐसी हो कि अध्यापक बनने के इच्छुक ही प्रशिक्षण प्राप्त करें।
* पाठ्यक्रम को सामाजिक परिवर्तनानुरूप निर्धारित किया जाए तथा नवाचारों का अधिकाधिक प्रयोग कर शिक्षा का विकास किया जाए।
* शिक्षणाभ्यास में अपेक्षित सावधानी बरती जाए, पाठों की गणना न हो अपितु शिक्षण प्रक्रिया की कुशलता में विकास किया जाए।

यद्यपि अध्यापक शिक्षा का विकासशील स्वरूप हमारे सामने है तथापि इनमें व्याप्त समस्याओं का परिष्करण अत्यन्त आवश्यक है जिससे भविष्यगामी मार्ग को प्रशस्त किया जा सके तथा ज्ञान एवं मूल्यों का आधारभूत विकास कर अपने राष्ट्र को विकसित राष्ट्र का दर्जा दिलाया जा सकें।

संदर्भ

1. शिक्षण कला एवं नवीन पद्धतियाँ–डॉ.एस.एस. माथुर
2. अध्यापक शिक्षा–डॉ. जी.सी. भट्टाचार्य
3. वैदिक शिक्षा मीमांसा–डॉ. भास्कर मिश्र
4. यू.जी.सी. शिक्षाशास्त्र–डॉ. बी.एल. शर्मा और डॉ. आर.एन. सक्सेना

अध्यापक शिक्षा संस्थानों में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का उपयोग

–नितिन भाल
एम. फिल.

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला–कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। और यह कार्य मनुष्य के जन्म समय से ही प्रारम्भ हो जाता है, वैसे सीखने और सिखाने की प्रक्रिया मनुष्य के जीवन में निरन्तर चलती रहती है। परन्तु औपचारिक शिक्षा के रूप में जहाँ सिखाने की बात आती है तो वहाँ विद्यालय–महाविद्यालयों का स्मरण आता है।

शिक्षण की प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन कारकों को माना गया है 1. छात्र 2. शिक्षक 3. पाठ्यक्रम। इन तीनों के द्वारा ही कक्षा में अन्तःक्रिया होती है। शिक्षण प्रक्रिया में अध्यापक की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है अध्यापक की महत्ता प्राचीन समय से ही ईश्वर से बढ़कर मानी गई है। कहा गया है–गुरुर्बह्मागुरुर्विष्णुः गुरुर्देवोमहेश्वरः। गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।। गुरु गोविन्द दोउ, खडे, काके लॉगू पाय। बलिहारि गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

इस प्रकार इन श्लोको से प्रतीत होता है कि पौराणिक काल से ही अध्यापकों का बहुत आदर रहा है। हजारों की संख्या में अध्यापकों का अभी भी उनके छात्रों और समुदायों में सम्मान किया जाता है। परन्तु फिर भी कुछ समय से अध्यापकों की स्थिति में गिरावट आयी हुई है। इसमें कारणों का पता लगाना कठिन कार्य है। उनकी सेवा शर्तो में कमी,

शिक्षा पद्धति का असाधारण विस्तार, अध्यापक प्रशिक्षण का निम्न स्तर तथा, यह सामान्य धारणा कि अध्यापक अपने कर्त्तव्य को समुचित रूप से नहीं निभाते है आदि।

इन सभी कारणों के पीछे जो मुख्य कारण प्रतीत होता है वह कारण है **"अध्यापक शिक्षा संस्थानों में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन"** की कमी। इस प्रकार इस मुख्य कारण को जानने के लिए हमें यह जानना आवश्यक कि अध्यापक शिक्षा क्या है? संस्थानों में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन क्या है?

अध्यापक शिक्षा

अध्यापक शिक्षा का प्रमुख कार्य कुशल एवं प्रभावी अध्यापक को तैयार करना है जिससे वह विद्यार्थियों को सही प्रकार का अधिगम करा सके। प्रभावी अध्यापक वह माना जाता है जो सामाजिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षणार्थियों की प्रमुख आवश्यकताओं के अनुरूप लाभ दे तथा विद्यार्थी और ज्ञान दोनों को केन्द्र बिन्दु मानते है।

सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन (Total Quality Management)

सम्पूर्ण गुणवत्ता

शिक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास अर्थात्, उसकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास की सम्भावनाओं को ईष्टम स्तर पर विकसित करना व्यक्ति का सम्पूर्ण गुणवत्तापूर्ण विकास है। वैसे प्रबन्धन के रूप में किया जाता है।

गुणवत्ता

गुणवत्ता की बात करते है तो गुणवत्ता को बताना तो आसान है परन्तु उसको परिभाषित करना कठिन है जैसे मनुष्य की हमेशा यह आदत रही है कि वह हमेशा प्रत्येक वस्तु में, सेवा में विशिष्टता को

खोजता है और उसे देखता भी है पहचानता भी है परन्तु वह उसको परिभाषित नहीं कर सकता क्योंकि कोई वस्तु किसी व्यक्ति के लिए विशिष्ट, किसी के लिए सामान्य हो सकती है इसलिए इस गुणवत्ता या विशिष्टता को एक निश्चित परिभाषा में बाँधना मुश्किल है।

शैक्षिक प्रबन्धन

प्रबन्धन के विभिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित अनेक अर्थों में से पाँच अर्थ मुख्य है—प्रक्रिया के अर्थ में, एक वर्ग के रूप में, अनुशासन के रूप में, आर्थिक संसाधन के रूप में एवं अधिकार और सत्ता प्रणाली के रूप में।

प्रक्रिया के अर्थ में—प्रबन्धन किसी संस्थान के सदस्यों के प्रयत्नों का नियोजन संगठन, नेतृत्व व नियंत्रण करने और उस संस्थान के समग्र संसाधनों का उपयोग करते हुए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया है।

प्रबन्धन एक वर्ग के रूप में—कुछ प्रबंध शास्त्री-प्रबन्धन को एक वर्ग के रूप में देखते है। वे प्रबन्ध करने वाले व्यक्तियों के समूह को प्रबन्धन के रूप में देखते है। जिसमें प्रबन्धन को उस समूह वर्ग के रूप में मानते हैं जो किसी संस्थान के कार्यरत कर्मचारियों के लिए निर्णय, निर्देशन, समन्वय व मूल्यांकन आदि करता है।

प्रबन्धन एक अनुशासन के रूप में—प्रबन्धन को एक अनुशासन के रूप में भी लिया जाता है।

प्रबन्धन आर्थिक संसाधन के रूप में—इस दृष्टिकोण के अनुसार इसे आर्थिक संसाधन के रूप में (प्रबन्ध, भूमि, पूंजी आदि) भी देखा जाता है।

प्रबन्धन अधिकार व सत्ता के रूप में—निर्णय व नेतृत्व के अधिकार को सत्ता के रूप में स्वीकारा जाता है।

इस प्रकार हमारे द्वारा सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन के सम्प्रत्ययों को जाना गया अब हमें यह विचार करना है कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है तथा अध्यापक शिक्षा में किस प्रकार गुणवत्ता, उत्कृष्टता लाई जा सके इसको निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा रेखांकित किया गया है:-

उत्पादन एवं सेवाओं में सुधार के उद्देश्य को निरन्तर कायम रख कर प्रतियोगी बने–हमारे अध्यापक शिक्षा संस्थानों को चाहिए कि ज्ञान विस्फोटक युग में अपने प्रतिमानों तथा अधिगम शैलियों को समय के अनुसार परिवर्तन करते हुए लगातार सुधार करते रहना चाहिए और समय के अनुसार अपने उत्पाद (शिक्षक) को नवीन ज्ञान प्रदान करते रहना चाहिए तथा विकास की दिशा में निरन्तर बढते रहना चाहिए।

नए दर्शन को स्वीकार करना–गुणवत्ता की यात्रा निरन्तर चलती रहती है इसे संस्था के सेवा लक्ष्य का अंग बना ले और नए दर्शन को स्वीकार करके छात्रों के सर्वांगीण विकास सम्बन्धी उपागम को अपनाएँ। इस में एक विधि का प्रयोग न करके बहुविधियों का प्रयोग करना चाहिए जिसमें सेमिनार विधि, परिचर्चा, प्रोजेक्ट आदि विधियों का उपयोग अपने संस्था के पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए।

गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए सामूहिक निर्भरता समाप्त करें–संस्थाओं में गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए सामूहिक रूप से निरीक्षण के द्वारा गुणवत्ता प्राप्ति पर निर्भर न रहे और बाहरी परीक्षण के स्थान पर गुणवत्ता आश्वासन तथा आन्तरिक मूल्यांकन कार्य-प्रणाली को अपनाएं तथा परीक्षण के लिए पुराने तरीके अर्थात् केवल लेखन परीक्षा (पेपर पेन्सिल टेस्ट) से हट कर उनका मूल्यांकन अभिव्यक्ति के आधार पर तथा सावधि कार्यों के आधार पर भी करे।

कीमतों के आधार पर व्यापारिक सौदा कम–अध्यापक शिक्षा संस्थानों में सबसे अच्छे शिक्षकों को व्यय और क्षमता के आधार पर स्वीकार करें अर्थात् अध्यापक शिक्षकों को उनकी योग्यता के आधार पर अधिक वेतन देकर रखे जिससे गुणवत्ता की अपेक्षा की जा सके और

अध्यापक NCTE के मानदण्डों पर अपनी योग्यता पूरी रखने वाला होना चाहिए जिससे वह ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्रदान कर गुणवत्ता को बनाये रखे।

कार्यरत स्टाफ के लिए प्रशिक्षण–शिक्षण संस्थाओं में सेवा कार्य प्रशिक्षण प्रदान करें शिक्षको के लिए संस्थानों में ही प्रशिक्षण की व्यवस्था करें अर्थात् सम्पूर्ण गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए संस्थानों को आवश्यकता है कि वे सेमिनार, कार्यशाला, संगोष्टि आदि का कार्यक्रम करते रहें तथा विषय-विशेषज्ञों के द्वारा उनके ज्ञान का संर्वधन करें।

नवाचार के लिए प्रेरित करें–शिक्षण संस्थाओं में शिक्षको को नवाचार के लिए प्रोत्साहित करें और उन्हें भय से सुरक्षा प्रदान करके असफलता के अधिकार के प्रति आश्वस्त करें। समान रूप से सफलताओं एवं नवाचारों के प्रयोग की असफलताओं का भी सम्मान करें।

बाधा की समाप्ति–शिक्षण संस्थाओं में संरचनाओं का निर्माण करते हुए विषयों के विभाग तैयार करें और अन्तर्विषयी-कार्यदलों का गठन करके अन्तर्विभागीय गतिविधियों का आयोजन करें जैसे पार्टनरशिप-किसी भी विषय पर प्रोजेक्ट बनवाना उससे आपसी सहयोग की भावना के विकास के लिए दो या तीन अध्यापकों के कार्यदल का गठन कर गतिविधियों का आयोजन करें।

संस्था में ऐसी कार्यप्रणाली विकसित करें जिससे प्रत्येक कर्मचारी अपने विकास का पथनिर्माण करे और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की विधि का सृजन स्वयं करे अर्थात् अध्यापक और छात्र दोनों को 'सशक्त' बनाने का प्रयास संस्था के द्वारा करना चाहिए क्योंकि ''ज्ञान ही शक्ति'' है तथा ''सम्पूर्ण ज्ञान अन्दर विद्यमान है'' ज्ञान कोई बाहर की विषय वस्तु नहीं है।

- प्रत्येक शिक्षक को नवचारी परिकल्पना सेवा तथा कार्यों के लक्ष्य निर्धारण में सहभागिता प्रदान करे।

- जिस क्षेत्र में वह शिक्षक विद्वान् है उस क्षेत्र में किताब लिखे तथा U.G.C. की तरफ से अनुदान का लाभ ले।
- संस्था के प्रत्येक शिक्षक का कर्तव्य होना चाहिए कि वे अपने संस्था की कमी को पहचाने तथा उसमें सुधार का प्रयास करें तथा उन विद्वज्जनों से भी सलाह लेनी चाहिए जो इस क्षेत्र में अपना अधिकार रखते हो तथा उनके विचारों को सुधार कार्यक्रमों में शामिल करना चाहिए।
- शिक्षण संस्थाओं में उत्तरदायित्व एवं प्रशासनिक अधिकार विकेन्द्रित करें और इसके माध्यम से कर्मचारियों में नेतृत्व की स्थापना करें।

उपसंहार

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण गुणवत्ता के प्रबन्धन के लिए शिक्षण संस्थाओं में उन सभी बिन्दुओं, मानको आदि का होना नितान्त आवश्यक है जो शिक्षण संस्थाओं में रीढ़ (आधार) का कार्य करती है अतः इस गुणवत्ता को बनाये रखने से देश का भविष्य तैयार होगा तथा देश के भावी अध्यापक तैयार होंगे और महाहिम अब्दुल कलाम जी की कल्पना 2020 के संदर्भ में सार्थक सिद्ध हो सके।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा का गुणात्मक विकास

–डॉ. दयाशंकर मिश्र
टी.जी.टी., रा. सह-शिक्षा मा. विद्यालय, नेब सराय, नई दिल्ली

किसी भी समाज, राष्ट्र और देश की प्रगति वहाँ के कुशल व योग्य अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। अध्यापन को सर्वोत्तम व्यवसाय की संज्ञा दी जाती है। अध्यापन गुणवत्ता के कारण प्राचीन भारत के गुरु विश्व में विख्यात हैं। विख्यात गुरु अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए शिक्षा देते थे। प्राचीन काल में गुरु महत्ता का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद् के 'तीर्थकाक' में वर्णित है। जिस प्रकार पानी ढाल की ओर बह जाता है उसी प्रकार विख्यात गुरु के यहाँ शिष्य दौड़कर चले जाते थे।

पाराशर माधवीय में नारद का वचन उद्धृत करते हुए कहा गया है–

पुस्तकं प्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
भाजते न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियाः॥[1]

गुरु से अध्ययन न कर जो व्यक्ति पुस्तक से अध्ययन करता है वह सभा में शोभा नहीं पाता है। इस प्रकार पुस्तकों पर आश्रित रहकर प्राप्त ज्ञान को ज्ञानार्जन की संज्ञा नहीं दी गई। अपितु गुरु पर आश्रित रहकर ज्ञानार्जन की उपादेयता पर बल दिया गया। आज के सन्दर्भ में पुस्तकीय ज्ञान व सूचना को शिक्षा के पहले पायदान पर रखा गया और अध्यापक को बाद में। शेल्डन ई. डेविस के अनुसार–"किसी भी विद्यालय की महत्ता उसके शिक्षकों पर निर्भर है। संस्था व्यक्ति को गौरवान्वित नहीं करती बल्कि व्यक्ति संस्था को गौरवान्वित करता है।"

1. पाराशर माधवीय भाग 1, पृ. 164

यहाँ व्यक्ति से तात्पर्य गुरु से है। किसी स्कूल, कॉलेज व विश्वविद्यालय की शोभा उसकी गगनचुम्बी व आकर्षक इमारतों से नहीं बल्कि कुशल व योग्य अध्यापकों से होती है। यदि ऐसा होता तो आज हम नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला और प्राचीन विश्वविद्यालयों के आचार्यों का नाम नहीं लेते।

अंग्रेजी के एक कवि सर वाल्टर स्कॉट ने भी कहा है–

"Not gold but only men can make a nation great and strong"

बुद्ध, ईसा, गाँधी, सुकरात, मोहम्मद, कन्फ्यूशियस और भगवान श्रीकृष्ण ये सभी सच्चे अर्थ में मानव जाति के महान् शिक्षक थे। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण स्वयं एक महान् अध्यापक शिक्षक थे।

इस युग के अध्यापक भी इनके पद-चिह्नों का अनुगमन करके अपने देश एवं राष्ट्र के लिए अधिक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में शिक्षण को एक उदात्त व्यवसाय माना गया है। उत्तम शिक्षण से ही उत्तम नागरिकों का निर्माण होता है। उत्तम नागरिकों से राष्ट्र उन्नति व विकास करता है। मानव इतिहास की श्रेष्ठतम विभूतियों ने इस व्यवसाय को अपनाकर इसे गौरवान्वित किया। इस व्यवसाय से ही देश के गौरव में अभिवृद्धि हुई है। इस सम्बन्ध में श्री एम.सी. छागला ने लिखा है–"प्रशिक्षित एवं योग्य अध्यापकों की सहायता के बिना कोई भी शिक्षा-क्रम प्रगति नहीं कर सकता। योग्य अध्यापकों का देश एक उज्ज्वल भविष्य का देश है।"

इसी सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित शिक्षक संघ की कान्फ्रेन्स में कहा गया–"उत्तम अध्यापन अच्छे शिक्षकों पर अवलम्बित है। शिक्षकों की गुणात्मक उन्नति करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।"

स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा की जो संज्ञा दी गयी है, उसे स्वतन्त्रता से पूर्व 'शिक्षक-प्रशिक्षण' कहा जाता था। शिक्षक-शिक्षण का प्रादुर्भाव प्राचीन भारत में माना जाता है। उस समय से आज तक इसका विकास निम्नलिखित चार चरणों में हुआ है–

1. छात्राध्यापक पद्धति (Pupil Teacher System)
2. शिष्यता प्रशिक्षण (System of Apprenticeship)
3. शिक्षक प्रशिक्षण (Teacher-Training)
4. शिक्षक शिक्षा (Teacher-Education)

अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक विकास करने हेतु निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं–

1. **विषय ज्ञान का पुनः स्थापन**–प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण के समय छात्राध्यापकों को विषय ज्ञान कराया जाए। इस विषय में शिक्षा आयोग ने भी कहा है-प्रशिक्षण कार्यक्रम में लगभग 20% समय विषय-वस्तु के अध्यापन हेतु दिया जाना चाहिए।

   माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण के समय विश्वविद्यालय के योग्य एवं अनुभवी अध्यापकों का सहयोग लिया जाए।

   आयोग के अनुसार यह अभिनव कार्यक्रम विषय से सम्बन्धित शिक्षण विधि एवं विशेष तकनीकी से युक्त होना चाहिए।

2. **शिक्षण एवं मूल्यांकन पद्धतियों में सुधार**–शिक्षण एवं मूल्यांकन पद्धति में नवीन प्रणालियों का प्रयोग किया जाए।

   व्यक्तिगत कार्य, वैयक्तिक अध्ययन, योजना-कार्य, परिचर्चा, कान्फ्रेन्स आदि को प्रशिक्षण संस्थान का अभिन्न अंग बनाया जाए। मूल्यांकन में नवीन प्रणाली से परिचित कराना व आन्तरिक प्रगति-पत्र व्यवस्था के संबंध में जानकारी प्रदान की जाए। अनुभव, अध्ययन एवं परिचर्चाओं के द्वारा प्रशिक्षणार्थियों में परिपक्वता का विकास किया जाए।

3. **छात्र-शिक्षण में सुधार**–छात्राध्यापकों द्वारा पढ़ाया जाने वाले पाठों के निरीक्षण में सुधार किया जाए। पाठों का नियोजन भी ठीक प्रकार से किया जाए।

4. **विशेष पाठ्यक्रमों की व्यवस्था**–शिक्षा के विकास हेतु नवीन पाठ्यक्रमों का विकास किया जाए। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों पर समन्वित पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाए।

5. अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम संशोधन एवं विकास जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण का विकास करने वाला हो, और पाठ्यक्रम छात्राध्यापकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला होना चाहिए।

6. पाठ्यक्रम ऐसा निर्मित किया जाना चाहिए जिससे उसका सम्बन्ध अध्यापकों के दायित्व, भारतीय परिस्थितियों, समस्याओं व अध्यापकों से प्रत्यक्ष रूप से रहे।

डॉ. राधाकृष्णन् आयोग ने कहा है कि "सच्ची शिक्षा मात्र सम्पूर्ण पाठों को पढ़ना एवं स्मरण करना ही नहीं है अपितु जीवन यापन के उद्देश्यपूर्ण कार्यों में भाग लेना भी है।"

उपर्युक्त विवेचनानुसार कहा जा सकता है कि बदलते परिवेश में अध्यापक शिक्षा का पदृिश्य भी बदल रहा है। जहाँ प्राचीन काल में अध्यापक का स्थान गौरव, श्रद्धा एवं विश्वास से युक्त था, अब यह सेवा के साथ जुड़ गया है। आज जितने भी व्यवसाय विकसित हो रहे हैं उनमें शिक्षा को भी एक व्यवसाय के रूप में माना गया है। मेरे विचार से अध्यापकों को जितनी सुविधाएँ मिल रही हैं, पहले नहीं थी। अल्प सुविधाओं में भी शिक्षा गुणात्मक रूप से जीवन्त रहती है। लेकिन अधिक सुविधाओं में अध्यापन शिक्षा की गुणात्मकता का ह्रास हो रहा है। यह एक चिन्तनीय विषय है। इस पर पुनः चिन्तन एवं मनन करने की आवश्यकता है।

कहाँ गये वो अध्यापक जिन्हें समाज श्रद्धा, त्याग व सम्मान की दृष्टि से देखता था और वे शिष्य भी कहाँ चले गये जो अध्यापकों पर अपने प्राण न्यौछावर कर देते थे। अध्यापक के गुणात्मक विकास की बिखरी लड़ियों को हमें पुनः जोड़ने की जरूरत है। सूचना प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान के आविष्कार के इस भौतिक युग में हमें अपने भारतीय संस्कारों व मूल्यों के साथ अध्यापक-शिक्षा की खोई हुई गरिमा व प्रतिष्ठा को पुनजीर्वित करना है।

अध्यापक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में ई. लर्निंग

–राजेश कुमार शर्मा
शेरवावटी बी.एड. कालेज, राजस्थान

अशिक्षित समाज से राष्ट्र के सफल भविष्य के लिए कुछ आशा नहीं की जा सकती है! शिक्षा से ही राष्ट्र को आत्मनिर्भरता, विकास, पूर्ण रोजगार, राजनैतिक विकास, सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण की ओर ले जा सकते है! राष्ट्र के नागरिकों को शिक्षित करने के कार्य में अध्यापकों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

कोठारी आयोग के शब्दों में–

शिक्षा के स्तर को जो बाते प्रभावित करती है तथा इसका जो योगदान राष्ट्र के विकास में है उसमें सबसे महत्वपूर्ण बात शिक्षक के गुण, योग्यता तथा चरित्र है।

अतः मानव समाज एवं देश की उन्नति अध्यापकों द्वारा ही की जा सकती है। अध्यापक वह धूरी है जिसके द्वारा पाठ्यक्रम का सम्पादन होता है अथवा विद्यार्थी में होने वाले परिवर्तन साक़ार एवं सजीव होते है, यही कारण है कि औपचारिक शिक्षा प्रक्रिया के विकास के साथ–साथ उसकी सफलता हेतु अध्यापक शिक्षा को निरन्तर प्रभावित करते है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि अध्यापक शिक्षा सम्पूर्ण समाज को गुणात्मक शिक्षा की दृष्टि से उन्नत करने के केन्द्र के रूप में देखी गयी।

अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए शिक्षा क्षेत्र में जो प्रशिक्षण इलेक्ट्रानिक माध्यम से दिया जाता है उसे ई लर्निंग माध्यम कहा जाता है। इसमें कम्प्यूटर, मोबाईल फोन, रिकोर्ड प्लेयर आदि प्रणालियों का शिक्षा प्रदान करने में उपयोग होता है। इन माध्यमों से

सीखने वाले किसी भी समय व कहीं पर भी सीखने का लाभ ले सकते हैं ई-लर्निंग द्वारा तत्काल सूचनाओं का आदान-प्रदान, प्रशिक्षण व विषय-विशेषज्ञों का मार्गदर्शन प्राप्त करने में किया जा सकता है।

इस प्रकार के कार्यक्रमों को विभिन्न प्रकार से ई-लर्निंग द्वारा सीखने वाले तक पहुँचाया जा सकता है। परन्तु प्रत्येक कार्यक्रम में अलग-अलग विधियाँ उपयोग में ली जाती है यह न केवल कार्यक्रम पर परन्तु सीखने वाले पर भी निर्भर करता है और साथ-ही-साथ विषय वस्तु पर भी आधारित होता है सीखने की विधियों में ई-लर्निंग के साथ-साथ पारम्परिक शिक्षण पद्धितियों का भी उपयोग किया जाता है। तथा इन्टरनेट की सहायता से अत्यन्त अल्प व्यय में विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में चाही गई जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

आधुनिक युग में रोजगार प्राप्ति के अवसरों को खोजना, रोजगार हेतु आवेदन करना, विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए ज्ञान अर्जित करने में ई-लर्निंग एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। आने वाले वर्षों में या कहें 2020 तक सभी शिक्षित लोगों के लिए कई नये अवसर मिलेंगे या नये द्वार खुलेंगे, जिसमें ई-लर्निंग एक उत्कृष्ट पायदान पर अपना स्थान बना चुका है। आने वाले समय में विद्यार्थी को अपनी दक्षताओं को सशक्त कर ई-लर्निंग को अपनाना होगा। हमें शिक्षा के आधुनिक माध्यमों के अनुसार परम्परागत शिक्षण विधियों में बदलाव लाने होगे। साथ ही समाज के विभिन्न वर्गों को जोड़ने के लिए अनेक सूचनाओं के आदान प्रदान, संस्कृति ज्ञान एवं भिन्न योजनाओं को जानने के लिए एक सामाजिक नेटवर्क का भी निर्माण करवाना आवश्यक हो जायेगा।

ई-लर्निंग के महत्वपूर्ण उद्देश्य-

जीवन में काम आने वाली शिक्षण पद्धतियों के आधुनिकीकरण द्वारा ज्ञान, कौशल एवं दक्षता परिवर्तित किये जा सकते है, जिनके द्वारा औपचारिक-अनौपचारिक एवं सूचनाओं पर आधारित शिक्षा प्रसारित की जा सकती है। ई-लर्निंग द्वारा हम निम्न बातों से जान सकते हैं-

- आम लोगों तक शिक्षा को ई-लर्निंग द्वारा दूरस्थ स्थानों तक बिना कठिनाई के पहुंचाया जा सकते है।
- ई-लर्निंग से शिक्षा एवं प्रशिक्षणों की गुणवत्ता को बढावा दिया जा सकता है।
- शिक्षा के क्षेत्रों में नवाचारों व रचनात्मकता के साथ प्रायोगिकता को भी ई-लर्निंग से बढाया जा सकता है।
- आधुनिक शैक्षिक एवं व्यवसायिक दक्षताओं को बढावा देने के लिए अध्यापकों को ई-लर्निंग द्वारा ज्ञान एवं प्रशिक्षण उपलब्ध कराने से गुणवत्तापूर्ण आधुनिकतम तकनीक का उपयोग करना सिखाया जा सकता है।

यह देखने को भी आया है कि अध्यापकों में प्रारम्भिक शिक्षा-शिक्षक, शिक्षा के समय उन्हें महत्त्वपूर्ण ज्ञान नहीं होता है—इसकी पूर्ति रिफ्रेशर कोर्स द्वारा अर्जित कर करवा सकते है, जो सक्षम संस्थाओं एवं दक्ष प्रशिक्षकों द्वारा ही हों।

ई. लर्निंग द्वारा विद्यार्थियों के अधिगम में सुधार–

- ई. लर्निंग के द्वारा अध्यापकों की सहायता से विद्यार्थियों के कार्यों को परिवर्तन करने की क्षमता एवं समस्या हल करने के प्रयास को बढ़ावा देना।
- ई. लर्निंग के द्वारा अध्यापकों की सांस्कृतिक जागरूकता एवं भावाभिव्यक्ति को बढावा देना।
- किसी भी परिस्थिति में सिखाने के लिए सीखना आवश्यक है(तकनीकी दौड़ में अध्यापकों को पकड़ मजबूत करनी होगी क्योंकि नवाचारों द्वारा ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सकता है।

ये सभी तथ्य सम्भवतः केवल ई-लर्निंग एवं सूचना प्रौद्योगिकी के प्रशिक्षण और साधनों के माध्यम से अध्यापकों का कम्प्यूटर के सी.डी. रोम के साथ्र सहयोगात्मक जुड़ाव एवं सम्प्रेषण के माध्यमों के साथ

घनिष्ठ सम्बन्ध और विद्यालयी विषयों के अधिगम क्षेत्रों के साथ कठिन समस्याओं का समाधान तलाश कर, अपने शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए, ई. लर्निंग का उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक है।

अध्यापक को अपने अध्यापन में प्रारम्भिक से उच्च स्तर पर हार्डवेयर एवं साफ्टवेयर प्रयोग व रख रखाव कैसे करना है यह सब जानना एक अध्यापक के लिए जरूरी है।

अध्यापक सरकार द्वारा चलायमान अभियानो के माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षा के अवसर प्राप्त कर और प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है।

ई. लर्निंग के तहत योजना निर्माण–

सबसे पहले विषय वस्तु का अध्यापन करके विद्यार्थी एक अध्यापक की आवश्यकताओं को ज्ञात कर कठिन तथ्यों की पहचान की जाती है तथा उसका अनुसरण किया जाता है।

- अध्यापन संरचनात्मक एवं रचनात्मक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत परिस्थिति एवं अधिगम तरीकों की पहचान कर प्रसंगानुसार उदाहरण व गतिविधियों के मध्य सामंजस्य स्थापित कर प्रान्तीय भाषाओं का विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए ई. लर्निंग पाठ तैयार किये जाते हैं।

- इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम अध्यापकों द्वारा स्क्रिप्ट तैयारी की जाती है जिसमें मल्टीमीडिया के साथ अन्तर, गतिविधि आधारित समस्त सिद्धांतों व नियमों को जोड़ा जाता है जो एक अधिगकर्ता अर्थात् सीखने वाले के इर्द गिर्द होता है।

- ई. लर्निंग में विषय वस्तु, श्रव्य-दृश्य, ग्राफिक्स, एनिमेशन, अन्त्याक्षरी, शैक्षिक प्रसंग एवं अभिनय प्रमुख होते हैं।

- इसके अन्तर्गत सी.डी. तैयार की जाती है जिसमें स्वाध्याय एवं समुह अधिगम हेतु 15-20 कठिन बिन्दु विषय वार लिए जाते है जिन्हें विषय अध्यापक कक्षा में उपयोग में ले सकते है तब जाकर एक सी.डी. न केवल शिक्षक, अधिगमकर्ता, शिक्षक-

प्रशिक्षकों आदि के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, लेकिन व्यापक स्तर पर ई. लर्निंग पाठ में ज्यादा मददगार होती है। कक्षाकक्ष शिक्षण तथा सुविधायुक्त अधिगम के लिए विषय वार पाठ सोच समझकर, स्तर के अनुसार पाठ के प्रारूप तैयार या निर्मित किए जाते हैं। इस प्रकार का अधिगम विद्यार्थी के व्यक्तिगत समुह शिक्षण में प्रेरणा बढ़ाने व व्यस्त रखवाने में सहायक होते हैं।

अध्यापक शिक्षा में ई. लर्निंग से लाभ–

- प्रशिक्षुओं को उच्च स्तरीय कार्यकलापों के लिए अभिप्रेरित करना।
- आधुनिक वैश्विकरण को ई. लर्निंग की सहायता से अधिक से अधिक जान सकते है।
- विश्व के किसी भी नवीनतम ज्ञान, वैज्ञानिक गतिविधियों एवं नवीन खोजों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी इटरनेट से तुरन्त प्राप्त की जा सकती है।
- वीडियों कान्फ्रेन्सिग की सहायता से अध्यापक एवं शिक्षार्थी दूरस्थ क्षेत्रों की भाषा, संस्कृति, रहन सहन एवं भौगोलिक ज्ञान के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- जटिल से जटिल कार्यों को अधिक सुगमतापूर्वक व्यवस्थित किया जा सकता है।
- इससे किसी भी विषय की समग्र जानकारी को नवीन उदाहरणों की सहायता से प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है।
- कठिन से कठिन विषयों को प्रभावी ढंग से समझने व समझाने में ई. लर्निंग एक तटस्थ भूमिका निभाती है।
- इसके अन्तर्गत कक्षा प्रोग्रामों में ई मेल, वेब क्वेस्ट एवं मोबाइल फोन से आधुनिकतम सूचनायें व जानकारी उपलब्ध की जा सकती है।

अध्यापक शिक्षा में ई. लर्निंग से सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में परिवर्तन–

आज के प्रौद्योगिकी के युग में आई.सी.टी. शिक्षा हमारे जीवन का अहम हिस्सा है। यह शिक्षा 21वीं सदी के शिक्षार्थी का एक आधुनिक नागरिक के रूप में तैयार करती है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन के लिए ई. लर्निंग को वर्तमान पाठ्यक्रम में सम्मलित कर शिक्षा-शास्त्र में सहायक की भांति शामिल करना होगा। शिक्षण एवं अधिगम के क्षेत्र में ई. लर्निंग को एक महत्त्वपूर्ण उपकरण माना जा रहा है जो अध्यापक के कक्षा कक्ष में विषय सामग्री व व्यावसायिक स्रोतों के रूप में अधिकृत है। ई. लर्निंग अध्यापक व विद्यार्थी को भावी सम्प्रेषण के अवसर प्रदान करता है साथ ही साथ शिक्षण कौशलों का विकास करता है।

वर्तमान समय में यह देखा गया है कि अध्यापक सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से नवीनतम ज्ञान प्राप्त कर सकता है और साथ ही साथ तकनीकी जानकारी भी प्राप्त करता है तथा मल्टीमीडिया द्वारा विषय वस्तु का निर्माण कर विषयवस्तु की प्रस्तुतीकरण करने की नवीनतम विधियों का विकास करता है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावी सम्प्रेषण का प्रयोग तथा ज्ञान, अवबोध एवं कौशलात्मक बिन्दुओं को विकसित करता है।

- अध्यापक ई. लर्निंग पाठों में लेखन के लिए कुछ विशेष प्रकार के उपकरणों व वर्ड प्रोसेसिंग की प्रणालियों का उपयोग करते है। जैसे-कम्प्यूटर के अन्तर्गत फोल्डर में ग्राफिक्स व इमेजेस का निर्माण करना।
- अध्यापक विभिन्न दस्तावेजों एवं डॉक्यूमेन्टस के प्रारूप तैयार करता है।
- अध्यापक द्वारा उच्च कोटी की मुद्रित सामग्री को तैयार करने के लिए ग्राफिक्स को काम में लिया जाता है। साथ-ही-साथ वेबपेज, मल्टीमीडिया, प्रस्तुतीकरण, योजना प्रारूप का सही मूल्यांकन एवं प्राकल्प तैयार करने में अहम भूमिका निभाता है।

- अध्यापक कक्षा कक्ष में सूचना सम्प्रेषण के माध्यम से न केवल अपने अध्यापन में नवीन विचारों को गति देता है बल्कि अपने शिक्षण को सफलतापूर्वक करा सकता है। इसके लिए उसे निम्न आवश्यक बातों की जानकारी होना आवश्यक है–

- विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ई–लर्निंग का प्रयोग कैसे किया जाये।

- ई. लर्निंग की उपयोगिता एवं उसकी सफलता के लिए शिक्षक शिक्षार्थी को यह जानना होगा कि कक्षा–कक्ष के बाहर कम्प्युटर के बारे में सोचे, विचार करे और एक दूसरे से अन्त:क्रिया भी करें।

- ई. लर्निंग में विषय वस्तु को प्रस्तुत करने का नवीनतम तरीका पावर पाइन्ट प्रजेन्टेशन है। जिसके तहत अध्यापक अपनी विषय वस्तु को ग्राफिक्स, चित्रों, नक्शो आवास आदि से अधिक से अधिक रोचक तरीके से प्रस्तुत कर सकता है इस प्रकार शिक्षार्थी कठिन से कठिन विषय वस्तु को कम समय में अधिक प्रभावी तरीके से अधिगम करता है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ई. लर्निंग अपने आप गुणवत्ता में बदलाव नहीं करती है बल्कि इसके लगातार नवीनतम प्रयोगों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार लाए जा सकते है। आज प्रत्येक अध्यापक को शिक्षा से संबंधित नवीनतम सूचनाओं तकनीकी की जानकारी प्राप्त करते रहना चाहिए जिससे शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाने के लिए देश में संचालित प्रशिक्षण महाविद्यालयों को तकनीकी से परिचित किया जा सके। शिक्षा के क्षेत्रों में ऐसे पाठ्यक्रमों एवं शिक्षण विधियों का निर्माण किया जाना चाहिए। जिससे हर व्यक्ति के मस्तिष्क का अच्छा विकास हो सके तथा वर्तमान समय के अध्यापक के अपने विद्यार्थियों के रचनात्मक विकास के लिए ई. लर्निंग का प्रयोग अधिक से अधिक करते रहना चाहिए। जिससे आने वाली पीढी शिक्षा के क्षेत्र में अपनी सफलता का परचम लहरा सकें।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नवाचार

–विजय कुमार
शोध छात्र

विद्यालयों में कई प्रकार के शिक्षक मिलते हैं। कुछ बहुत प्रभावशाली तो कुछ बहुत कम प्रभाव वाले। शिक्षक की प्रभावशीलता उसके सामान्य तथा कक्षागत क्रिया-कलापों पर आधारित होती है। ये क्रिया-कलाप शिक्षक के व्यवहारों की ओर संकेत देते हैं। पूरी शिक्षक-तकनीकी, शिक्षक के व्यवहारों में सुधार लाने, परिमार्जन करने तथा उनमें वांछित परिवर्तन लाने की प्रक्रिया पर विशेष बल देती है।

जी. रायन के अनुसार–

शिक्षक का व्यवहार परिवर्तनीय है, उसमें सुधार तथा परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रभावशाली शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य छात्रों के व्यवहारों में वांछित परिवर्तन लाने के लिए शिक्षक अपनी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को संगठित तथा व्यवस्थित बनाने का प्रयास करता है। शिक्षण व्यवस्था में अधिगम के उद्देश्यों तथा अधिगम स्वरूपों को आधार माना जाता है। शिक्षक इसके अन्तर्गत विभिन्न अच्छी शिक्षण युक्तियों, समुचित सम्प्रेषण विधियों तथा उपयुक्त दृश्य-श्रव्य सामग्री का चयन करता है, और प्रयास करता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावशाली बन सके।

शिक्षाशास्त्र का अर्थ शिक्षण के विज्ञान से होता है। एक शिक्षक अपनी पाठ्यवस्तु का विश्लेषण किस तरह से करता है। यह पूरी तकनीकी शिक्षक के व्यवहारों में परिवर्तन व शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में सहायक होती है।

नवाचार एक ऐसा विचार है जिसमें व्यक्ति नवीनता का अनुभव करता है। यह पूर्व नियोजित, नवीन एवं विशिष्ट परिवर्तन है, जिसमें विशिष्टता के गुण निहित रहते हैं और इनका उद्देश्य वर्तमान परिस्थितियों में सुधार करना होता है। वास्तव में–

"नवाचार नवीन व पुरातन का एक ऐसा संगम है जो एक नवीन इकाई के रूप में अपनी विशिष्टताओं के साथ प्रकट होता है।"

तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास में शिक्षा का रूप परिवर्तित होता जा रहा है। उस पर औद्योगिकीकरण का काफी प्रभाव पड़ता है, जनसंचार एवं यातायात के साधनों ने शिक्षा की सार्वभौमिकता को बढ़ाया है। ज्ञान का विस्फोट इतनी तीव्र गति से हो रहा है। एक अच्छे शिक्षक को इन नवाचारों से अवगत होना चाहिए और आवश्यकता अनुसार प्रभावशाली शिक्षण के लिए इनका उचित उपयोग करना चाहिए। इस हेतु वे कौन–कौन से उपगामों का प्रयोग करें, यह निर्णय लेने के लिए उन्हें अग्रांकित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

– उनके यहाँ कौन–कौन से उपागम माध्यम उपलब्ध हैं।
– इन उपागमों में से किन उपागमों का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं।
– वे कक्षा में किस प्रकार का अधिगम अनुभव देना चाहते हैं।
– कक्षा का आकार कितना बड़ा है–उसके अनुसार कौन–सी सामग्री अच्छी रहेगी।
– छात्रों के स्तर, आयु, आवश्यकता तथा गति के अनुरूप कौन–सा उपागम सर्वोत्तम रहेगा।
– क्या नवाचार उपागमों के प्रयोग की आवश्यकता है।

एक प्रशिक्षित अध्यापक को नवाचार उपागमों के प्रयोग में सिद्धहस्त होना चाहिए और आवश्यकता अनुसार प्रभावशाली शिक्षण के लिए इनका उचित प्रयोग करना चाहिए।

कुछ महत्वपूर्ण नवाचार निम्नांकित हैं–

– अनुकरणीय सामाजिक कौशल प्रशिक्षण।

– टी–समूह प्रशिक्षण।

– सूक्ष्म शिक्षण।

– अन्तक्रिया विश्लेषण।

– अभिक्रमित अनुदेशन।

– सहयोगात्मक अधिगम।

– व्यक्तिगत अनुदेशनात्मक प्रशिक्षण।

– प्रणाली उपागम

– कम्प्यूटर आधारित अनुदेशन

अध्यापक शिक्षा में व्यावसायिकता

—हापिना पात्र
शोध छात्र

प्राचीन काल में अध्यापन या शिक्षण को एक सेवा के रूप में देखा जाता था जब ज्ञानदान को एक परमपवित्र एवं महत्वपूर्ण सामाजिक हित के कार्य के रूप में स्वीकृती दी जाती थी। कोई भी गुरु अपने शिष्य को धनार्जन की दृष्टि से शिक्षा प्रदान नहीं करता था शिक्षक का लक्ष्य अपने छात्र का सर्वाङ्गीण विकास करना होता था। परन्तु अर्वाचीन काल में शिक्षक शिक्षा में व्यवसायिक दृष्टि कोण का समावेश हुआ। समाज एवं मानव की आवश्यकता के अनुरूप आज शिक्षक शिक्षा ने व्यावसायिक रूप ग्रहण कर लिया है। आज एक कुशल शिक्षक वही होता है जो शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ धन का अर्जन भी करें। इसलिए शिक्षक शिक्षा में छात्र उन विषयों को प्राथमिकता देता है जिनकी समाज में माँग की उपयोगिता होती है। अतः वर्तमान युग में शिक्षक शिक्षा व्यावसायिकता की ओर झुक रही है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के द्वारा मान लिया गया है कि अध्यापन एक व्यवसाय (वृत्ति) है। वास्तव में किसी उद्यम या आजीविका में कुछ मूलभूत तथ्यों पर ध्यान अवश्य दिया जाता है जो न्युनत्तम कौशलगत दक्षता, कार्याधारित प्रतिवद्धता, एवं व्यवहारगत निष्पादन से सम्बन्धित होते हैं। इन के अभाव में कोई व्यक्ति किसी आजीविका में न तो आर्थिक दृष्टि से सफल हो सकता है और न ही गुणवत्ता की दृष्टि से राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के द्वारा अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता स्तरोन्नयन को ध्यान में रखते हुए दक्ष एवं प्रतिबद्ध अध्यापकीय तैयारी को आवश्यक माना गया।

आजीविका की दृष्टि से अध्यापकीय तैयारी के लिए आवश्यकताधारित कार्यक्रम को अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में स्थान देने की अपरिहार्यता को स्वीकार करते हुए परिषद ने स्पष्ट किया है कि निम्न दक्षता और प्रतिबद्धता क्षेत्रों से सम्बन्धित व्यापक शिक्षण प्रशिक्षण इस हेतु अपरिहार्य है।

प्रमुख दक्षता क्षेत्रः-

(1) सन्दर्भगत दक्षता (Contextual)

(2) संकल्पनात्मक दक्षता (Conceptual)

(3) विषयवस्तुगत दक्षता (Content)

(4) सम्प्रेषण सम्बन्धी दक्षता (Trensactional)

(5) अन्य शैक्षिक क्रिया कलाप सम्बन्धी दक्षता (Other Educational Activities)

(6) शिक्षणाधिगम सामग्री निर्माण सम्बन्धी दक्षता (Denlop Teaching Learning Materials)

(7) मूल्यांकन दक्षता (Evaluation)

(8) प्रबन्धन दक्षता (Management)

(9) अभिभावक सह कार्यसम्बन्धी दक्षता (Working with Parents)

(10) समुदाय तथा अन्य अभिकरण सह कार्यसम्बन्धि दक्षता। (Woreking with Community and other Agencies)

प्रतिबद्धता के क्षेत्रः-

आधुनिककालीन अध्यापकीय तैयारी के लिए परिषद के द्वारा दक्षता के साथ ही कई प्रतिबद्धता को भी स्पष्ट किया गया है। जैसे–

अधिगमकर्त्ताओं के प्रति प्रतिबद्धताः-

अध्यापकों के चरित्र और व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष प्रभाव छात्रों के मन

एवं मस्तिष्क पर पड़ता है। अधिगम अभिवृति का निर्माण विद्यालय में होता है और यह तभी सम्भव है जब अधिगमकर्ता को यह प्रतीत हो कि अधिगम एक कष्टकारी न होकर आनन्ददायक एवं उपयोगी अनुभव है। अधिगम कर्त्ताओं के प्रति प्रतिबद्ध अध्यापक ही अधिगम को सरल एवं रोचक बना सकता है। जिन्हें न केवल अपनी विषय वस्तु, के प्रति प्रेम हो बल्कि अधिगमकर्त्ता भी प्रिय हो।

समाज के प्रति प्रतिबद्धता:-

अध्यापन में सफलता के लिए सामाजिक प्रतिबद्धता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है। जिन समाज में व्यक्ति निवास करता है। उसके प्रति अवश्य ही उसका कुछ ना कुछ दायित्व होता है अतः किसी भी सामाजिक वर्ग से अधिगमकर्त्ता क्यों न आया हो, अध्यापक का दायित्व सभी को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करना उनका कर्त्तव्य होता है।

जिस प्रकार अधिगमकर्त्ताओं के प्रति प्रतिबद्धता से अध्यापकगण उनमें प्रशंसित हो सकते हैं वैसे ही समाज के प्रति प्रतिबद्धता के प्रदर्शन से वे समाज और समुदाय के सदस्यों के द्वारा सम्मानित भी हो सकते हैं।

आजीविका के प्रति प्रतिबद्धता:-

एक अध्यापक अवश्य ही अपनी व्यवसायगत नैतिकता और कर्त्तव्य का अनुपालन करता है। चाहे उसे सामाजिक प्रतिदान मिले या ना मिले। जो मानव को दानव बनने से रोककर एक संस्कारवान मानव बनने की शिक्षा देने में समर्थ हो। उसे समाज या राष्ट्र क्या और कितना प्रतिदिन दे सकता है। कहा जाता है कि विद्या का कोई मूल्य निर्धारण नहीं कर सकता है। उसी प्रकार अध्यापक के ज्ञानदायिनी आजीवीका का प्रतिदान देना किसी अरबपति से भी सम्भव नहीं है। फिर हीन भावना का क्या स्थान इस पवित्र आजीविका में हो सकता है। कोई भी औपचारिक शिक्षा न देकर भी एक अध्यापक या अध्यापिका अपने आदर्श चरित्र एवं सद्व्यवहार के माध्यम से अपने छात्रों के जीवन को

दिशा निर्देशित करने में जितना सक्षम हो सकता है उतना अन्य कोई भी आजीविका वाला व्यक्ति नहीं हो सकता है।

मात्र इतना ही ज्ञान उनमें आजीविका के प्रति एक आन्तरिक प्रतिबद्धता उत्पन्न कर सकता है।

व्यवसायगत क्रियाकलाप में उत्कृष्टता की प्राप्ति सम्बन्धी प्रतिबद्धता:-

सेवा पूर्व तथा सेवा कालीन अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से यदि ज्ञान प्राप्ति के आग्रह को अध्यापक एवं अध्यापिकाओं में जाग्रत करने और उसकी निरन्तरता को बनाये रखने के लिए प्रयास कर पाना सम्भव हो पाता है। तो कोई कारण ऐसा नहीं हो सकता है कि शिक्षणाभ्यास के द्वारा एक अध्यापक सफलता के प्राप्ति को सुनिश्चित न कर सके। जैसा कि एक चिकित्सक अपने चिकित्सा आजीविकागत अभ्यास के माध्यम से क्रमशः उत्कृष्टता स्तर को प्राप्त करने के लिए प्रयास कर पाता है। उत्कृष्टता के प्रति हार्दिक प्रतिबद्धता के रूप में इस क्षेत्र को स्पष्ट किया जा सकता है।

अध्यापकीय भूमिका निष्पादन का आकलन:-

एक अध्यापक को सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए विभिन्न भूमिकाओं का निष्पादन करना होता है-

(1) कक्षाकक्ष भूमिका

(2) विद्योन्नय स्तरीय निष्पादन

(3) विद्यान्नयेतर शैक्षिक क्रियाकलाप सम्बन्धि निष्पादन

(4) अभिभावक सम्बन्धित निष्पादन

(5) समुदायसम्बन्धित निष्पादन

(6) अध्यापक शिक्षा की व्यापक प्रकृति

अध्यापक शिक्षकों की तैयारी:-

अध्यापक शिक्षक ही व्यवसायिकता दृष्टि से कुशल अध्यापकों की तैयारी के लिए सेवापूर्ण तथा सेवा कालीन स्तर पर उत्तरदायि होता है। अतः उनके लिए इस दिशा में ठोस और मानक शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता अवश्य है। समुदाय और समाज के साथ अन्तःक्रियात्मक और गत्यात्मक सम्बन्ध को विकसित करते हुए वे भावी अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को एक आदर्श एवं अनुकूल वातावरण में शिक्षित बनाने के लिए प्रशिक्षण दे सकता है। ताकि उन्हें स्थानीय सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य के बारे में यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके।

अध्यापक शिक्षकों की तैयारी के लिए दक्षतापूर्ण और प्रतिबद्धता उन्मुख ठोस पाठ्यक्रम की आज आवश्यकता है। ताकि वे दक्षता, प्रतिबद्धता और भूमिका निष्पादन के पहचाने गये समस्त क्षेत्र तथा तत्त्वों से परिचित हो सकें। वे अध्यापक शिक्षा तथा विद्यान्नयिय शिक्षा दोनों के लिए ही निर्दिष्ट किये गये उद्देश्यों से परिचित होते हुए उन्हें सम्प्राप्त करने की दिशा में अपनी भूमिका को निर्धारित कर सकें। इस हेतु उन्हें विशेष शिक्षण-प्रशिक्षण प्रदान किये जाने की आज आवश्यकता है।

बदलते हुए सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तनशील अध्यापकीय दायित्व और स्तम्भ के बारे में तथा साथ ही साथ सूचना प्रौद्योगिकी एवं शिक्षण तकनीकी आदि के क्षेत्र में व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने के लिए भी आज यह अपेक्षित है कि अध्यापक शिक्षा में प्रचलित कार्यक्रम प्रारूप में सुधार किये जायें।

अन्त मैं यह कहना चाहुँगी कि प्राचीन काल में शिक्षा को मोक्ष का साधन माना जाता था-"सा विद्या या विमुक्तये" परन्तु आज शिक्षा को रोजगार का साधन माना गया है। यथा-सा विद्या या नियुक्तये। उसी प्रकार आज यदि अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम को अधिक व्यावहारिक, व्यवसायमूलक, शिक्षणदक्षता सन्दर्भित बनाना है। तो अवश्यमेव अध्यापक शिक्षा को व्यवसायगत शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम देखना होगा।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नवाचार प्रविधियाँ

—महेश उनियाल
एम. एड.

अध्यापक शिक्षा : बदलता परिदृश्य

वैश्विक इतिहास में यदि देखा जाए तो प्रत्येक राष्ट्र ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कई प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता अनुभव की है, हमारा देश भी इसका अपवाद नहीं है, हमारी सरकार के सामने कई प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और इस प्रकार की अन्य समस्याएँ आई। इस परिवर्तन के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन आए। शिक्षा के महत्त्व पर बल दिया गया। प्रशिक्षित अध्यापकों और स्कूलों की आवश्यकता में वृद्धि हुई। साथ ही आवश्यकता शिक्षा का प्रत्यय विकसित हुआ। राष्ट्रीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के संदर्भ में हमारी शिक्षा की व्यवस्था को एक बड़े परिवर्तन की आवश्यकता थी। कहा गया कि हमारी शिक्षा व्यवस्था आवश्यकताओं को परिपूरित नहीं कर पा रही है। यह परिवर्तन हमेशा अध्यापक प्रशिक्षण का जो प्रत्यय विकसित हुआ था, उसमें परिवर्तन केवल अध्यापक शिक्षा का स्वरूप आया। यह माना गया कि अध्यापक शिक्षा केवल प्रशिक्षण ही नहीं था। इसके लिए अध्यापक स्नातकों की आवश्यकता महसूस की गई। इस माँग को पूरा करने के लिए अधिक प्रशिक्षण स्कूलों को भी शुरू करने पर बल दिया गया।

अध्यापक शिक्षा को औपचारिक स्वरूप में प्रत्येक स्तर के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम को होना अति आवश्यक है, ताकि निर्धारित उद्देश्यों की सम्प्राप्ति उसके माध्यम से कर पाना सम्भव हो सके। वर्तमान सन्दर्भ में पाठ्यक्रम के क्षेत्र में नित्य नवीन समावेश की आवश्यकता को किसी

भी स्तर पर आज स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि नये प्रयोग और नवाचारिक प्रयत्नों के कारण नित्य ज्ञान के क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन विद्यालयीय शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर किया जाना अपेक्षित है। ताकि भविष्य में आने वाले अध्यापक नवीनतम विद्यालयीय पाठ्यक्रम व सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण कार्य सम्पादित कर सकें। किसी भी संस्था से प्रशिक्षित अध्यापकों की क्षमता उस संस्था के द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पर निर्भर करती है परन्तु वर्तमान समय में भी विभिन्न संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में सम्पूर्णता का अभाव है। यदि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखें तो अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में निम्नलिखित दोष सामान्यतया दिखाई देते हैं–

* अध्यापक शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम की समय–सीमा बहुत अल्प है।
* पाठ्यक्रम का अनुप्रयोग व अध्यापक प्रशिक्षण का ढंग भविष्य के अनुरूप नहीं है।
* अध्यापकीय शिक्षा में अध्यापकों के विषय–वस्तु सम्बन्धी ज्ञान की अपेक्षा शिक्षा विधियों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
* इसका सम्बन्ध विद्यालय एवं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति से नहीं है।
* अध्यापक शिक्षा में सैद्धान्तिक व प्रयोगात्मक कार्यों में परस्पर सम्बन्ध नहीं है।
* साथ ही इसका प्रयोगात्मक पक्ष भी पूरी तरह से उपयुक्त अवसर उपलब्ध नहीं कराता है।
* संस्थाओं में अधिकतर अध्यापक प्रशिक्षक वर्ग परिपक्व नहीं है।
* यह वर्तमान शिक्षा पर आधारित नहीं होता तथा साथ ही इसमें लचीलेपन का अभाव है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है। किन्तु इसमें सुधार की बात करते समय बहुत सावधानीपूर्वक निर्णय लेने की आवश्यकता है। वस्तुतः अध्यापक शिक्षा के दो मुख्य भाग है–सैद्धान्तिक व प्रायोगिक। दोनों ही पक्षों में एक सकारात्मक तथा उचित समन्वय को स्थापित करने की आवश्यकता है। साथ ही राष्ट्रीय उद्देश्यों एवं सामाजिक आवश्यकताओं को भी ध्यान देने की आवश्यकता है। अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में सुधार के लिए निम्नलिखित आधारभूत तथ्यों पर ध्यान देने की जरूरत है–

* भारतीय दृष्टिकोण से प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए है।
* प्रशिक्षित अध्यापकों के परिवर्तनशील भारतीय समाज में क्या उत्तरदायित्व है।
* कार्यकुशल अध्यापकों के लिए सामान्य व व्यावसायिक शिक्षा की कितनी आवश्यकता है।
* भारत देश में शिक्षक प्रशिक्षण किस प्रकार शिक्षा के स्तरों को प्रभावित करता है।
* वर्तमान में कितने प्रकार के शिक्षकों की विद्यालयों में आवश्यकता है।
* समाज, विद्यालय एवं अभिभावकों के साथ उचित सम्प्रेषण के लिए शिक्षकों को किन कौशलों तथा योग्यताओं की आवश्यकता हैं।
* देश के विकास कार्यक्रम में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों पर व्यय हो।
* राष्ट्रीय बजट का कितना प्रतिशत ऐसे कार्यक्रमों पर व्यय किया जाए।

* शिक्षा व्यवस्था में इन कार्यक्रमों को किस प्रकार सञ्चालित व्यवस्थित तथा नियन्त्रित किया जाए।

निम्नलिखित तथ्यों में हम बढ़ोतरी तो कर सकते हैं परन्तु हमारे पास इसके संदर्भ में कोई निश्चित जानकारी व सूचना नहीं है। हमारे देश में कोई उपयुक्त पद्धति अध्यापकीय शिक्षा बनाने के लिए या वर्तमान पद्धति में सुधार के लिए कोई वैज्ञानिक विधि है? हमारे पास अध्यापकीय शिक्षा कार्यक्रम को सही दिशा देने के लिए न तो उपयुक्त सरकारी नीति है और न ही कोई व्यावसायिक संस्थान।

पूर्व प्राथमिक स्तरीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम

शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्यापकीय शिक्षा के लिए अलग-अलग पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गयी है। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के द्वारा 1970 में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिए यह पाठ्यक्रम का प्रारूप प्रस्तुत किया गया था जिसके अन्तर्गत–

भाग 'अ' सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम जिसके अन्तर्गत पूर्व प्राथमिक शिक्षा के दार्शनिक आधार एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पूर्व प्राथमिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, स्वास्थ्य पोषण तथा शालापूर्ण छात्र कल्याण, शिक्षण विधि तथा साधन, शालापूर्व संगठन तथा सामुदायिक सम्बन्ध, भाषा विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन एवं सृजनात्मक कला तथा क्राफ्ट **भाग 'ब' नर्सरी विद्यालय निरीक्षण एवं सहभागिता के अन्तर्गत** छात्र, कार्यक्रम, शिक्षण विधि और साधन-निरीक्षण एवं प्रतिवेदन, क्षेत्र भ्रमण और अभिभावक तथा सामुदायिक कार्यक्रम वितरण, शिक्षण अभ्यास कार्यक्रम, शिक्षण सामग्री (खिलौने, कला, हस्तकला सामग्री) निर्माण, सैद्धान्तिक कार्याधारित प्रायोगिक कार्य, एवं पाठ्यसहगामिक्रियाकलाप में सहभागिता (नृत्य, गीत, नाटक, खेल) इत्यादि।

1978 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने पाठ्यक्रम रूपरेखा में इस स्तर के लिए कई वैकल्पिक व्यवस्थाओं को स्थान दिया गया है।

दो वर्षीय पाठ्यक्रम में 20% समय सिद्धान्त के लिए तय किया गया। जिसमें उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा तथा शिक्षक, बाल विकास और विशिष्ट पाठ्यक्रम को स्थान दिया गया। सामुदायिक कार्य के लिए 20% समय निर्दिष्ट किया गया। जिसमें कार्यानुभव को सम्मिलित किया गया। 60% समय तीसरे भाग के लिए निर्धारित किया गया है। जिसमें शिक्षण विधि, शिक्षण अभ्यास और प्रायोगिक कार्य को ध्यान दिया है। इस प्रकार इस पाठ्यक्रम योजना में सिद्धान्त को कम और विधिगत भाग को अधिक महत्त्व दिया गया है।

माध्यमिक स्तरीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम

माध्यमिक स्तर पर अध्यापकीय तैयारी के लिए प्रायः एकवर्षीय बी.एड. या समकक्ष उपाधि को ध्यान दिया जाता है। एन. सी. टी. ई. के प्रारूप के अनुसार पाठ्यक्रम में शिक्षा सिद्धान्त, शिक्षा मनोविज्ञान, विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विभिन्न विद्यालयीय विषयों के लिए शिक्षण विधियाँ, शिक्षा का इतिहास तथा समस्याएँ तथा एक वैकल्पिक विषय से सम्बन्धित प्रश्न पत्रों को स्थान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रायः 30 से 60 शिक्षण पाठों का अभ्यास भावी अध्यापकों को शिक्षण अभ्यास के दौरान या इन्टर्नशिप या ब्लॉक टीचिंग के द्वारा करना होता है। 20% समय को सैद्धान्तिक पक्ष के लिए तथा 20% सामुदायिक एवं अन्य व्यावहारिक कार्यों के लिए तथा शेष 60% समयावधि को विषयवस्तु केन्द्रित शिक्षण अैर सम्बन्धित प्रायोगिक कार्य आदि के लिए आवंटित किया जाता है। वास्तविक परिस्थितियों में इसके विपरीत प्रायः सैद्धान्तिक पक्ष के लिए ही अधिकांश समय का उपयोग कर लिया जाता है शेष 30 से 40% समयावधि में अन्य सभी कार्य किसी तरह सम्पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हम समयावधि और सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक भाग में समन्वय की कमी के कारण अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम वास्तविक लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर पाता है। इस सम्बन्ध में

कोठारी आयोग के सुझाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। कोठारी आयोग के अनुसार-योग्यता, 'गुण' शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम की जान है और इसकी कमी से अध्यापक शिक्षा न केवल एक वित्तीय बर्बादी होगी, वरन् यह शैक्षिक स्तर में गिरावट का महत्त्वपूर्ण कारण बन जाएगा। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कोठारी आयोग ने अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में गुणात्मक उत्थान के लिए कुछ आवश्यक निर्देश दिये हैं जो निम्न प्रकार से हैं–

* विश्वविद्यालयों में सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों को आरम्भ किया जाएगा।
* शिक्षा में अनुसन्धान के विकास द्वारा व्यावसायिक शिक्षा को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप बनाया जाय।
* विषय का पूर्ण नियोजित समायोजन या विश्वविद्यालयों का स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के सहयोग से शिक्षण के मूल तत्त्वों के बारे में गहन अध्ययन।
* शिक्षा तकनीकी में सुधार जिसमें स्वाध्याय तथा वाद-विवाद को पूरा स्थान मिल सके और मूल्यांकन के तरीकों में सुधार किया जाए जिसमें आन्तरिक प्रयोगात्मक कार्य का सही तरीके से मूल्यांकन किया जा सके।
* शिक्षण अभ्यास में सुधार कर इसे व्यापक कार्यक्रम बनाया जाये।
* विशेष पाठ्यक्रमों तथा कार्यक्रमों का विकास किया जाए।
* शिक्षा पद्धति में शिक्षक की बहुमुखी जिम्मेदारियों को ध्यान रखते हुए प्रत्येक शिक्षा पाठ्यक्रम में सुधार किया जाए।

आयोग की निम्नलिखित बातों में भारतीय परिप्रेक्ष्य में कोई ऐसा ठोस निर्देश नहीं है जो अध्यापक शिक्षा का आधार बन सके। इन सुझावों में कुछ बातें बहुत प्रभावशाली है। जैसे प्रशिक्षण कार्यक्रम को व्यापक

करना, विशेष पाठ्यक्रम इत्यादि महत्त्वपूर्ण है परन्तु इन सबमें समन्वय का अभाव दिखता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में कुछ सुझाव दिये जो निम्न प्रकार से है–

* शिक्षक प्रशिक्षण एक सतत् प्रक्रिया है और इसके सेवापूर्व व सेवारत घटक अविभाज्य है, एक पहले उपाय के रूप में शिक्षक शिक्षा प्रणाली की पूरी जाँच की जाएगी (अनुच्छेद 9.4)।
* शिक्षक शिक्षा के नये कार्यक्रम सतत् शिक्षा और इस नीति की महत्त्वपूर्ण बातों पर बल देंगे (अनुच्छेद 9.5)।
* राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् को शिक्षक संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने की क्षमता और संसाधन उपलब्ध कराये जायेंगे। तथा पाठ्यचर्या और प्रविधियों से सम्बन्धित मार्गदर्शन दिया जाएगा। शिक्षक शिक्षा संस्थाओं तथा विश्वविद्यालय शिक्षा विभागों के बीच ताना बाना बुनने से सम्बन्धित प्रबन्धों का सृजन किया जाएगा (अनुच्छेद 9.6)।

इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अध्यापक समुदाय पर पूर्ण आस्था को व्यक्त किया गया साथ ही उनकी कार्य दशा और गुणवत्ता उन्नयन के सुझाव दिये गये।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नवाचार

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम देखते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समय-समय पर विभिन्न आयोगों ने अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में सुधार के सुझाव दिये। परन्तु वर्तमान में भी सत्य यह है कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों में शिक्षक प्रशिक्षण अभी भी गुणवत्तापूर्ण नहीं है। साथ ही भारत जैसे विकासशील देश को विकसित बनाने के लिए इसमें तत्काल गुणवत्ता उन्नयन करना परमावश्यक है, इसके लिए पाठ्यक्रम में नवाचार करने होंगे, जिसमें भावी अध्यापकों को सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप ढाला जा सके। इसके लिए कुछ नवाचारिक

प्रविधियाँ निम्न है। जैसे–प्रणाली उपागम का प्रयोग, संगणकीय अनुप्रयोग, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य, मस्तिष्क उद्वेलन, दूरस्थ शिक्षा इत्यादि।

अध्यापक शिक्षा में प्रणाली उपागम (System Approach in Teacher Education) : अध्यापक शिक्षा, सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करने वाली एक उपप्रणाली है। जिसमें वाञ्छित स्तरोन्नयन हेतु प्रणाली उपागम का प्रयोग करते हुए यह प्रयास किया जाता है कि–प्रभावकारी योजना का निर्माण, अध्यापक शिक्षा में नियन्त्रण व समन्वयन को प्रोत्साहन, अनुकूलतम संसाधनों का उपयोग, क्रियात्मक एवं कौशलगत प्रशिक्षण, मूल्यांकन का अनुप्रयोग एवं गुणात्मक पक्ष का उन्नयन।

अध्यापक शिक्षा में तीन प्रकार के अदा कार्यरत हैं। 1. अध्यापक शिक्षक, 2. भावी अध्यापक तथा 3. अध्यापन प्रणाली/साधन। अदा के इन तीनों अवयवों के गुणात्मक स्तर को नियन्त्रित करने के प्रयास से प्रणाली के आधारभूत कारक को नियन्त्रित कर पाना सम्भव हो सकता है। इस प्रकार इन तीनों तत्त्वों को प्रणाली विश्लेषण के माध्यम से नियन्त्रित कर प्रभावी बनाया जा सकता है। प्रतिपुष्टि केन्द्रित यह नवाचारिक व्यवस्था उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करती है।

सङ्गणक साहाय्यित अनुदेशन (Computer Assisted Instruction) : यह एक महत्त्वपूर्ण नवाचारिक उपक्रम है। यह वह व्यवस्था है जिसमें संगणक की सहायता ली जाती है और अभिक्रम आदि को प्रस्तुत करने के लिए प्रयास होता है। यह एक श्रव्य–दृश्य साधन के रूप में स्थित है। भावी अध्यापकों के लिए इसका ज्ञान आज के तकनीकी युग में परमावश्यक है। तथा अपनी क्षमता व तत्काल प्रतिपुष्टि के कारण अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में परमोपयोगी है।

कार्य अनुभव (Work Experience) : किसी विशेष क्षेत्र के किसी उत्पादक कार्य में प्रतिभागिता के आधार पर प्राप्त होने वाले अनुभव को कार्य अनुभव कहते हैं। यह किसी कार्यक्षेत्र विद्यालय, कल–कारखाने, गृहस्थी आदि से सम्बन्धित हो सकता है। जहाँ जीवनोपयोगी

अनुभव की प्राप्ति होती है। N.C.E.R.T. द्वारा इस संदर्भ में प्रकाशित पुस्तिका "The Curriculum for the Ten year's School : A Framework" (1975) में इस संकल्पना को स्पष्ट किया गया है। गामक कौशल के साथ समाज-सेवा व उपयोग वस्तुनिर्माण को इस नवीन सम्प्रत्यय में महत्त्व दिया है। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में इसका प्रयोग समाजोपयोगी शिक्षक तथा 'करके सीखना' तथा निरीक्षण, परीक्षण, आलोचना, निर्णय ग्रहण आदि क्षमताओं को विकसित करने में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह एक व्यावहारिक नवाचार है।

दूरस्थ शिक्षा (Distance Education) : समाज में प्रशिक्षित अध्यापकों की बढ़ती माँग तथा संस्थानों की सीमितता को देखते हुए यह कहना अनुचित नहीं कि आगामी दिनों में न केवल सेवारत अध्यापकों के दिशा निर्देशन तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों को सञ्चालित करने के लिए ही बल्कि सेवापूर्वकालीन स्तर पर भी अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का प्रयोग अपरिहार्य हो सकता है। बहु माध्यम उपागम को अपनाने के कारण अध्यापक शिक्षा को दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से प्रदान करना कठिन नहीं है। जबकि निश्चित अवधि के लिए सम्पर्क कार्यक्रम तथा इन्टर्नशिप की प्रत्यक्ष व्यवस्था को औपचारिक सेवापूर्व स्तरीय अध्यापक शिक्षा के समरूप रखने की बात स्वीकृत हो।

मुक्तवात सत्र (Open Air Session) : इसे वनशाला शिविर भी कहा जाता है। यह मूलतः मुक्त अनुदेशनात्मक प्रणाली है। जिसमें शिविर में विद्यालय की कल्पना कर वनशाला शिविर नाम दिया जाता है।

मस्तिष्क उद्वेलन (Brain Storming) : यह एक ऐसा नवाचार है जिसमें कल्पना शक्ति व सर्जनशीलता को विकसित किया जाता है। अध्यापक शिक्षा की वर्तमान समस्याओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए यह प्रभावकारी हो सक़ती है।

इसके अतिरिक्त दलगत शिक्षण (Team Teaching), पत्राचार, शिक्षा आदि इसके अन्तर्गत लिखित पाठ, व्यक्तिगत सम्पर्क कार्यक्रम, आकाशवाणी कार्यक्रम, शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम इत्यादि प्रविधियाँ हैं।

किन्तु उपयुक्त सभी नवाचारों का विश्लेषण करना भी परमावश्यक है। जिसमें इसकी उपादेयता में वृद्धि की जा सके।

निष्कर्ष

वस्तुतः वर्तमान समय में अध्यापक शिक्षा को भविष्य का ध्यान में रखकर व्यवस्थित करना चाहिए। आगामी वर्षों में भारत देश को गुणवत्तापूर्ण एवं तकनीकी दक्ष अध्यापकों की आवश्यकता है। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तथा नित्य नये सामाजिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए एवं नित्य विकसित हो रहे नये अनुशासनों से भावी अध्यापकों का सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए तथा सर्वकालीन प्रभावी अध्यापक तैयार करने के लिए अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नवाचार प्रविधियों को अपनाने के साथ-साथ पाठ्यक्रम के स्वरूप में भी परिवर्तन की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. शर्मा, डॉ. आर. ए, अध्यापक शिक्षा एवं तकनीकी : आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
2. भट्टाचार्य, जी. सी., अध्यापक शिक्षा : आगरा पब्लिकेशन्स, आगरा-2।
3. अग्रवाल, जे. सी., राष्ट्रिय शिक्षा नीति : प्रभात प्रकाशन दिल्ली।

अध्यापक शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ एवं सुझाव

–विपिन शर्मा
एम. एड.

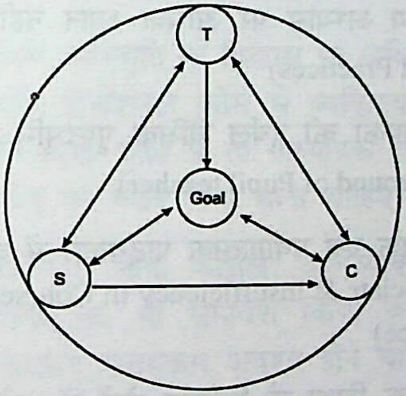
शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता बनाने हेतु अध्यापक शिक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है क्योंकि किसी भी देश का निर्माण उसके कक्षा-कक्ष (Class Room) में ही होता है एवं अध्यापक का इस प्रक्रिया में विशेष योगदान रहता है। परन्तु वर्तमान में अध्यापक शिक्षा के समक्ष बहुत सी चुनौतियाँ है जिनके कारण अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता का स्तर संतोषजनक नहीं है। समस्याएँ ही चुनौतियों के उत्पन्न होने के लिए आधारशीला का कार्य करती है अतः अध्यापक शिक्षा (प्रशिक्षण) कार्यक्रम का आलोचनात्मक विश्लेषण करके उसके कमजोर पक्ष एवं समस्याओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि समस्याओं का समाधान करके गुणवत्ता में वृद्धि की जा सके।

भारत सरकार द्वारा गठित विभिन्न कमेटियों ने यह महसूस किया है कि अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में जो प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है उसका स्तर असंतोषजनक है तथा उसमें सुधार की आवश्यकता है। स्पष्ट रूप से सभी ने प्रशिक्षण प्रक्रिया में सुधार लाने के लिए शीघ्रतया ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया है। बहुत से विश्वविद्यालयों ने इस ओर ध्यान देना प्रारंभ भी किया है। विभिन्न संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है ताकि इस ओर निरन्तर ध्यान देते हुए वांछनीय सुधार लाया जा सके एवं सभी अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में लागू किया जा सके।

वर्तमान अध्यापक शिक्षा की समस्याओं को समझने से पहले हम शिक्षण प्रक्रिया पर एक दृष्टि अवश्य डालनी चाहिए।

शिक्षण प्रक्रिया में निम्नलिखित पक्ष महत्त्वपूर्ण होते हैं–

1. अध्यापक	Teacher (T)
2. शिक्षायी	Student (S)
3. पाठ्यचर्या	Curriculum (C)
4. पर्यावरण अथवा संस्थान	Enviornment/Institution
5. लक्ष्य	Goal



शिक्षण प्रक्रिया को हम इस परिभाषा द्वारा सरलतया स्पष्ट कर सकते हैं–

''शिक्षण, अध्यापक एवं छात्र के मध्य परस्पर अन्तःक्रिया है जो निश्चित पाठ्यक्रम के आधार पर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक निश्चित वातावरण में होती है।''

अन्य शब्दों में–छात्र को लक्ष्य की प्राप्ति कराने के लिए अध्यापक, पाठ्यचर्या तथा वातावरण (संस्था) मुख्य भूमिका निभाते हैं। स्पष्ट है कि अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए हमें इन तीनों पक्षों (अध्यापक, पाठ्यचर्या तथा संस्था) से संबंधित समस्याओं का समाधान करना होगा जो कि इस प्रकार है :-

1. प्रवेश संबंधी समस्या (Admission Related Problem)
2. व्यावसायिक अभिवृत्ति के विकास पर कम बल (Less Emphasis on Professional Attitude
3. विश्वविद्यालय की मुख्य शैक्षिक धारा के साथ कम या कोई अन्त: क्रिया नहीं। (Little or No Interaction with the main Academic Stream of a university)
4. अप्रभावी शिक्षण विधियाँ (Ineffective Methods of Teaching)
5. विद्यालय अभ्यास पर अधिक ध्यान नहीं (No Impact on School Practices)
6. छत्राध्यापकों की दुर्बल शैक्षिक पृष्ठभूमि (Poor Academic Background of Pupil teacher)
7. सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक पाठ्यक्रम में कृत्रिमता एवं कमी (Avtificiatr & Insufficiency in Courses of Theory and Practice)
8. अध्यापक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोगात्मक अनुसंधान के अपर्याप्त आधार (Inadequate Bases of Empirical Research in Various Fields of Teacher Education)
9. मुख्य सुविधायें जैसे–अभ्यास विद्यालय, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, उपकरणों आदि का अभाव (Lack of proper Facilities Such as Practicing School, Laboratory, Library and Physical Equipment)
10. अपर्याप्त वित्तीय प्रबन्ध (Inadequate Financial Provision)
11. परीक्षा संबंधी समस्याएँ (Examination Realted Problems)

अब इन समस्याओं एवं उनके सुझावों के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे–

1. प्रवेश सम्बन्धी समस्या–प्रवेश हेतु जो प्रवेश परीक्षा ली जाती है उसमें अधिकांशतः ज्ञानात्मक एवं सामान्य ज्ञान से संबंधित प्रश्न पूछे जाते है फलतः जो अभ्यार्थी प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे होते है सरलतया उच्च अंक प्राप्त करके प्रवेश पा जाते हैं। इन परीक्षाओं में भाषागत या अभिव्यक्ति संबंधी योग्यताओं के आंकलन के लिए कोई प्रयास नहीं किया जाता साथ ही शिक्षण अभिवृत्ति, रूचि, अभिक्षमता इत्यादि पक्षों पर भी ध्यान नहीं दिया जाता।

सुझाव–प्रवेशार्थियों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा होनी चाहिए साथ ही विशेषज्ञों द्वारा साक्षात्कार लिया जाना चाहिए।

2. व्यावसायिक अभिवृति के विकास पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। MBA इत्यादि प्रोफेशनल कोर्स में व्यक्तित्व, अभिवृत्ति इत्यादि पक्षों पर भी ध्यान दिया जाता है तो अध्यापक शिक्षा में भी सम्पूर्ण अध्यापक के निर्माण पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

सुझाव–पर्सनेलटी, भाषा कौशल, अभिव्यक्ति Skill Development इत्यादि विषयों का भी समावेश किया जाना चाहिए अथवा संस्थाओं में अंशकालीन पाठ्यक्रम अवश्य होने चाहिए।

3. विश्वविद्यालय के अन्य विषयों के साथ अध्यापक शिक्षा के शिक्षकों एवं छात्रों को बीच अन्तःक्रिया कम ही रहती है न ही अधिक सहयोग की प्राप्ति होती है।

सुझाव–सेमीनार, कार्यशाला, सांस्कृतिक कार्यक्रम इत्यादि की सहायता से अन्तःक्रिया को बढ़ाना चाहिए।

4. अप्रभावी शिक्षण विधियाँ–शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों में अभी भी कई स्थानों पर पुरानी अथवा अप्रभावी शिक्षण विधियों का प्रयोग हो रहा है। अध्यापक केवल व्याख्यान अथवा केवल Black/White Board के माध्यम से विषय को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं एवं बहुत कम ही अन्य उपकरण जैसे OHP Projectar, CD इत्यादि का प्रयोग कर रहे हैं।

सुझाव—नूतन शिक्षण विधियों एवं सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों पर बल दिया. जाना चाहिए एवं उपकरणों की सुलभता एवं अध्यापकों को उनका प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

5. अध्यापक एवं छात्राध्यापक दोनों ही शिक्षणाभ्यास की गुणवत्ता की परवाह किए बिना पाठों की निश्चित संख्या को पूरा करने की औपचारिकता को पूरा करा करने का प्रयास करते है। कक्षाओं की कमी अथवा अनुपलब्धि, विद्यालयीय छात्रों का उपेक्षात्मक व्यवहार, विद्यालय में अध्यापकीय असहयोग, निरीक्षण व्यवस्था में कमियाँ जैसे अनेक कारक भी छात्राध्यापक के इस भाग को कमजोर बनाने का प्रयास करते हैं। शिक्षण अभ्यास निरीक्षण और मूल्यांकन की न तो कोई मापनी ही निर्दिष्ट रहती है और न ही प्रतिपुष्टि प्रदान करने के लिए कोई सर्वमान्य मानक या निर्दिष्ट पद्धति फलतः यह मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ रह जाता है।

सुझाव—शिक्षणाभ्यास के विद्यालयों को उपलब्धता एवं स्तर पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। छात्राध्यापकों एवं विद्यालयी अध्यापकों के मध्य संगोष्ठी इत्यादि के द्वारा परस्पर अन्तर्क्रिया बढ़ानी चाहिए ताकि छात्राध्यापकों को उनका अनुभव एवं मार्गदर्शन प्राप्त हो सके। छात्राध्यापक के मूल्यांकन के लिए एक सर्वमान्य मूल्यांकन निर्धारण करना चाहिए जो वस्तुनिष्ठ हो जैसे—चेकलिष्ट इत्यादि।

6. छात्राध्यापकों की कमजोर शैक्षिक पृष्ठभूमि भी एक समस्या है। Teaching Subject को वह सही प्रकार से ज्ञान नहीं रखते है एवं छात्रों के साथ न्याय नहीं कर पाते है।

सुझाव—Teaching Subject देने से पूर्व छात्राध्यापकों की परीक्षा होनी चाहिए तथा छात्राध्यापकों को भी उस विषय का स्वाध्याय करना चाहिए।

7. सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक पाठ्यक्रम में कभी संबंध नजर नहीं आता है अधिगम के सिद्धांत तो पढ़ा दिए जाते हैं परन्तु कक्षा-कक्ष में

उनका प्रयोग कैसे करना है यह स्पष्टतया नहीं बताई जाती। अन्य कुछ कमियाँ भी पाठ्यक्रम में नजर आती है जो आवश्यक है जैसे–चित्रकला।

सुझाव–अध्यापकों को इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है एवं उन सिद्धातों का वास्तविक जीवन से क्या संबंध है इस विषय को उन्हें उदाहरण, दृष्टान्त इत्यादि के माध्यम से स्पष्ट करना चाहिए। एवं चित्रकला इत्यादि विषयों को समाहित किया जाना चाहिए।

8. शोध की गुणवत्ता में भी कभी-कभी कमी देखी जाती है एवं सभी क्षेत्रों विषयों पर शोध अनुपलब्ध हैं।

सुझाव–शोध की गुणवता को निश्चित किया जाना चाहिए एवं उसमें दिखाए गए विषयों को विशेषज्ञों द्वारा जांच होनी चाहिए।

9. सुविधाओं में कमी के कारण भी गुणवता पर असर पड़ता है। उपकरणों की कमियों का कारण नूतन शिक्षण विधियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

सुझाव–सुविधाओं की सुनिश्चितता के बाद ही की संस्था को मान्यता प्रदान करनी चाहिए।

10. पर्याप्त धन की समस्या, सुविधाओं की कमी का सबसे बड़ा कारण है इसके कारण भवन, उपकरण, पर्याप्त अध्यापक सभी पक्ष प्रभावित होते हैं।

सुझाव–सरकार को अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में वित्तीय कमी नहीं करनी चाहिए क्योंकि शिक्षा पर किया खर्च राष्ट्र की प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

11. परीक्षा संबंधी समस्या–प्रायः परीक्षा संकलनात्मक रूप में सत्रान्त में ही आयोजित होती है जिसके कारण निरन्तर मूल्यांकन की यथार्थता पर प्रश्न चिन्ह बना हुआ है। तथा बाह्य एवं आंतरिक मूल्यांकन में न तो पारदर्शिता होती है एवं न ही वस्तुनिष्ठता।

सुझाव–अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में भी वर्ष में दो बार परीक्षा होनी चाहिए एवं योगात्मक मूल्यांकन पर ओर अधिक बल दिया जाना चाहिए न कि केवल लिखित परीक्षा को।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत सुझावों को हम संक्षेप में से इस प्रकार कह सकते हैं–

1. प्रवेश परीक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक होना चाहिए तथा विशेषज्ञों द्वारा साक्षात्कार भी लिया जाना चाहिए।

2. अपेक्षित वातावरण प्रदान करने के लिए संगोष्ठियों (Seminaar), कार्यशालाओं (Workshops), सम्मेलनों (Confrences), अतिरिक्त व्याख्यानों, विद्यालय भ्रमण, पुस्तकालय कार्य इत्यादि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

3. पर्सनेलटी, भाषा एवं अभिव्यक्ति कौशल इत्यादि विषयों पर ध्यान देने के लिए पाठ्यक्रम अथवा अंशकालीन पाठ्यक्रम होना चाहिए।

4. शिक्षणाभ्यास के मूल्यांकन को वस्तुनिष्ठ एवं मानक बनाना चाहिए एवं विद्यालयी अध्यापकों के साथ अन्त:क्रिया को बढ़ाना चाहिए।

5. उपकरण, पुस्तकालय इत्यादि की उपलब्धता को सुनिश्चित करना चाहिए।

6. छात्राध्यापकों का सतत् मूल्यांकन होना चाहिए एवं उसमें वस्तुनिष्ठता भी होनी चाहिए।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में पुनर्संगठन तथा नवीनीकरण

–कुलभूषण वाजपेयी
एम. एड.

भूमिका

किसी राष्ट्र की प्रगति उसके अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यही कारण है कि हमारे यहाँ पर अध्यापक को समाज का शिल्पी एवं सामाजिक संरचना में आवश्यक परिवर्तन करने वाला कहा गया है। अध्यापक शिक्षा के औपचारिक स्वरूप में प्रत्येक स्तर के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम का होना परमावश्यक है ताकि निर्धारित उद्देश्यों की सम्प्राप्ति उसके माध्यम से कर पाना सम्भव हो सके। पाठ्यक्रम के क्षेत्र में नित्य नवीन समावेश की आवश्यकता को किसी भी स्तर पर आज अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि नये प्रयोग और नवाचारिक प्रयत्नों के कारण निरन्तर ज्ञान के क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन विद्यालयीय शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर भी किया जाना अपेक्षित हो जाता है ताकि भावी अध्यापक नवीनतम विद्यालयीय पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षण कार्य करने में सक्षम हो सकें। भारत की आजादी के बाद व्यक्ति विशेषज्ञों एवं व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा अध्यापकीय शिक्षण के लिए नये पाठ्यक्रम बनाने के कई प्रयास किये गये हैं। सामान्यतया पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तरीय अध्यापक शिक्षा के क्षेत्रों से सम्बन्धित पाठ्यक्रम अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में आज प्रचलित हैं।

पूर्व-प्राथमिक स्तर का अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम

पूर्व-प्राथमिक स्तर के लिए जिस पाठ्यक्रम प्रारूप को प्रस्तुत किया गया था, उसकी रूपरेखा में मुख्यत: **भाग (अ)-सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम**–(1) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के दार्शनिक आधार एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि। (अंक-75) पूर्व-प्राथमिक के मनोवैज्ञानिक आधार। (अंक-100), स्वास्थ्य, पोषण तथा शालापूर्व छात्र कल्याण। (अंक-75), शिक्षण विधि तथा साधन। (अंक-100), शालापूर्व संगठन तथा सामुदायिक सम्बन्ध। (अंक-75), भाषा, विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन। (अंक-100), सृजनात्मक कला तथा क्राफ्ट (अंक-75) **भाग (ब)-नर्सरी विद्यालय निरीक्षण एवं सहभागिता**–छात्र, कार्यक्रम शिक्षण विधि और साधन-निरीक्षण और प्रतिवेदन (अंक-100), क्षेत्र भ्रमण और अभिभावक तथा सामुदायिक कार्यक्रम विवरण, (अंक-50), शिक्षण अभ्यास कार्यक्रम (अंक-200), शिक्षण सामग्री (खिलौने, कला, हस्तकला सामग्री) निर्माण (अंक-100) पाठ्य-सहगामी क्रियाकलाप में सहभागिता (नृत्य-गीत, नाटक, खेलकूद आदि) (अंक-50)।

इस प्रकार द्वितीय भाग में भी कुल 600 अंक निर्धारित किए गये। यह पाठ्यक्रम दो वर्षीय होता है।

प्राथमिक स्तर का अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम

(J.B.T., E.T.E., B.T.C., E.T.T.C., D.I.E.T.) : इस स्तर के लिए भी एन सी. ई. टी. के द्वारा 1978 में पाठ्यक्रम प्रारूप को स्पष्ट करने के लिए प्रयास किया गया था। इसके साथ शिक्षा में द्विवर्षीय पाठ्यक्रम के साथ स्नातकोपरान्त एक वर्षीय पाठ्यक्रम को महत्व दिया गया।

द्विवर्षीय बी.टी.सी. पाठ्यक्रम : प्रश्न-पत्र (1) शिक्षा सिद्धान्त, (2) शिक्षा मनोविज्ञान, (3) शिक्षण सिद्धान्त, (4) प्रारम्भिक शैक्षिक समस्याएँ, नवाचारिक प्रवृत्तियाँ तथा शैक्षिक मूल्यांकन, (5) पाठशाला प्रबन्ध, सामुदायिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य शिक्षा। **भाग 2**–विषयाधारित

शिक्षण विधि, कक्षा-शिक्षण तथा प्रायोगिक कार्य। खण्ड 1. (क) शिक्षण विधियाँ (सैद्धान्तिक शिक्षण) तथा (ख) सत्रीय कार्य। (क)-बाह्य मूल्यांकनाधारित विषयाध्यापन-हिन्दी, गणित, सामाजिक, अध्ययन, विज्ञान (दोनों वर्षों के लिए) (ख) विज्ञान में प्रायोगिक तथा क्रियाधारित सत्रीय कार्य तथा अन्य विषयों के लिए निबन्ध लेखन और मूल्यांकन कार्य के बारे में जानकारी जिसमें विविध वर्गीय प्रश्न रचना (ज्ञानात्मक अवबोधात्मक, लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न) सम्मिलित हैं।

खण्ड 2 (क) समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (दोनों वर्षों के लिए)-कृषि, विज्ञान, गृह विज्ञान आदि। (ख) कला, द्वितीय भाषा-अंग्रेजी संस्कृत उर्दू में से एक, नैतिक शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा-योगासन, स्काउटिंग, प्राथमिक चिकित्सा आदि (मात्र एक वर्ष के लिए) **भाग 3**-सामुदायिक-सहकार्य-सामुदायिक कार्य, अनौपचारिक शिक्षा, संगीत आदि।

इस पाठ्यक्रम के लिए एक अध्यापन सत्र से कम से कम कुल कार्य-दिवसों की संख्या 220 निर्दिष्ट करते हुए 20 दिवस को प्रवेश आदि कार्य के लिए निर्धारित किया गया। शेष 200 दिवसों में से सैद्धान्तिक विषय शिक्षण हेतु 20 प्रतिशत (40 दिवस), शिक्षण विधि, कक्षा शिक्षण, प्रायोगिक कार्य आदि के लिए 60 प्रतिशत (120 दिवस) तथा सामुदायिक सहकार्य आदि के लिए शेष 20 प्रतिशत (40 दिवस) प्रत्येक सत्र के लिए आवश्यक माना गया।

माध्यमिक स्तरीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम : माध्यमिक स्तर पर अध्यापकीय तैयारी के लिए प्रायः एकवर्षीय **बी.एड.** या समकक्ष उपाधि को स्थान दिया जाता है इस उपाधि के लिए निर्दिष्ट पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक भाग में पाँच से छः प्रमुख प्रश्न-पत्र रखे जाते हैं। एन.सी. टी.ई. प्रारूप के अनुसार पाठ्यक्रम में शिक्षा सिद्धान्त, शिक्षामनोविज्ञान, विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विभिन्न विद्यालयीय विषयों के लिए शिक्षण विधियाँ, शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ तथा एक वैकल्पिक विषय से सम्बन्धित प्रश्न-पत्रों को स्थान दिया जाता है। इनके

अतिरिक्त प्रायः 30 से लेकर 60 शिक्षण पाठों का अभ्यास भावी अध्यापकों को शिक्षण अभ्यास के दौरान या इन्टर्नशिप या ब्लॉग टीचिंग के द्वारा करना होता है।

भाग (क) सिद्धान्त (100 अंक के 6 प्रश्न-पत्र)

1. शिक्षा तथा भारतीय समाज, 2. अधिगम तथा विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, 3. विद्यालय संगठन तथा शिक्षा की समस्याएँ, 4. भावी अध्यापक हेतु आधार कार्यक्रम, 5. प्रमुख तथा 6. गौण शिक्षण विषयवस्तु-केन्द्रित अधिगम एवं शिक्षण की विधियाँ।

भाग (ख)-शिक्षण अभ्यास

1. सत्रीय आन्तरिक मूल्यांकन (100 अंक), 2. अन्तिम बाह्य मूल्यांकन (200 अंक) कहीं-कहीं बाह्य तथा आन्तरिक दोनों ही मूल्यांकन हेतु समान अंक निर्दिष्ट किये जाते हैं।

भाग-(ग) विशिष्टीकरण विषय

(एक विकल्प का चयन) 1. शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन, 2. बेसिक शिक्षा, 3. अनौपचारिक शिक्षा, 4. शारीरिक शिक्षा, 5. विद्यालय पुस्तकालय संगठन, 6. श्रव्य-दृश्य शिक्षा, 7. मापन तथा मूल्यांकन, 8. नैतिक शिक्षा, 9. विकलांग हेतु शिक्षा, 10. प्राथमिक शिक्षा, 11. योग शिक्षा, 12. जनसंख्या शिक्षा 13. शैक्षिक तकनीकी, 14. शैक्षिक दूरदर्शन, 15. अभिक्रमित अधिगम, 16. पर्यावरण शिक्षा।

नवीनीकरण

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नवीनीकरण किस तरह हो सकता है इसके लिए कुछ बिन्दु निम्नलिखित रूप में रेखाकिंत किए गए है–

* स्मार्ट कक्षा-यह एक ऐसी शिक्षा प्रदान करने की नवीन विधि है, जिसके माध्यम से छात्रों को रूचिपूर्वक शिक्षा प्रदान करने

में सहायता मिलती है, किन्तु इसका प्रयोग तभी सम्भव है जब इसकी पूरी जानकारी शिक्षक को हो। अतः इसको पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके भावी शिक्षकों को इसका ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

* ई-अधिगम अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में इसको भी स्थान देना चाहिए, जिससे कि शिक्षा जगत में क्रान्ति लाई जा सके।

* Teaching Aids (सहायक उपकरण)-छात्रों को अधिगम कराते समय इन शिक्षण उपकरणों का प्रयोग रूचि उत्पन्न करता है और अधिगम को प्रभावशाली बनाता है किन्तु यह तभी सम्भव है जब इसका प्रयोग, उपयोग के बारे में छात्र अध्यापकों को इसका प्रशिक्षण दिया जाये।

* कम्प्यूटर को अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल करें।

* मनोवैज्ञानिक प्रयोगों को प्रायोगिक रूप दिया जाए।

* सूक्ष्म शिक्षण को विस्तृत किया जाए।

* मूल्यों से सम्बन्धित विषय को पाठ्यक्रम में स्थान दें।

* **सामुदायिक अनुभव**-इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय दिवस पालन, पर्यावरण प्रौढ, तथा सामाजिक वानिकी की शिक्षा आदि को स्थान दिया जाना चाहिए। इससे सांस्कृतिक बहुविधता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और अभिवृत्ति को विकसित करना भी इसके माध्यम से सम्भव हो सकता है।

* **प्रायोगिक कार्य**-सहायक सामग्री पहचान, देशज और निम्न मूल्य सहायक सामग्री निर्माण, अधिगम प्रेरणा सामग्री निर्माण, मृदु तथा कठोर माध्यम उपयोग आदि के साथ ही भावी अध्यापकों को छात्र-निर्देशन, आदि का प्रायोगिक कार्य के क्षेत्र में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

* **कार्य क्षेत्र**–विद्यालय भवन तथा खेल के मैदान आदि को रख-रखाव, स्वच्छता, शिक्षण सामग्रियों का निर्माण, प्रकृति अध्ययन, विद्यालय सहकारी बचत बैंक खेल-कूद, पाठ्य-सहगामी अन्य क्रियाकलाप आदि।

* **द्विवर्षीय पाठ्यक्रम**–इसके अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर जो अध्यापकीय पाठ्यक्रम बी.एड. (शिक्षा शास्त्री) के रूप में एक वर्ष का संचालित किया जाता है उसको बढ़ाकर दो वर्ष का कर दिया जाना चाहिए, जिससे कि अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में सभी आवश्यक विषय-वस्तु को सम्मिलित किया जा सके।

निष्कर्ष–अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के अन्तर्गत तीन स्तर पर अध्यापकों को तैयार किया जाता है। आधुनिक युग में शिक्षा प्रदान करने के तरीकों में बदलाव का समय है। प्राचीन काल में गुरू प्रधान होता था वह जो चाहता था वह शिक्षा और ज्ञान छात्रों को प्रदान करता था किन्तु आज के इस युग में छात्र प्रधान शिक्षा व्यवस्था का आगाज हो चुका है। अतः इसको आगे बढ़ाने के लिए जरूरी है कि अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नवाचार किया जाए। इसलिए हमने कुछ बिन्दुओं को प्रस्तुत किया है।

व्यावसायीकरण के परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा

–नीतू राजपूत
एम. एड.

गाँधी जी ने 'व्यवसायीकरण' के विषय में कहा है कि शिक्षा में व्यावसायिक दृष्टिकोण का होना आवश्यक है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को किसी व्यवसाय के लिए तैयार करना है ताकि वह आत्मनिर्भर बन सके। 'व्यवसाय' को यदि व्यापकार्थ में देखें तो इसके विभिन्न अर्थ प्रकाशित होते हैं यथा–'वृत्ति' एवं 'निश्चय'। सरल शब्दों में व्यवसाय जीविकोपार्जन का ढंग होता है।यह एक व्यापक शब्द है इसमें कृषि, उद्योग, नौकरी, मछली पालन आदि वे सभी रोजगार सम्मिलित होते हैं, जिनमें कोई मानव–समूह अपने जीवन–यापन के लिए आवश्यक साधन अर्जित करता है। इस दृष्टि से वृत्ति एक विशिष्ट व्यवसाय है। शब्दकोश के अनुसार यह एक वह व्यवसाय है, जिसमें वैज्ञानिक अथवा कलात्मक अधिगम अर्थात् शिक्षा–दीक्षा की आवश्यकता पड़ती है।

'अध्यापक शिक्षा' का अब प्रयोग अध्यापक प्रशिक्षण के स्थान पर किया जाने लगा है। अध्यापक शिक्षा का अर्थ अध्यापक–प्रशिक्षण से अधिक विस्तृत है। इनके अनेक पहलू है। अध्यापन कार्य कौशलपूर्ण कार्य है। अध्यापन कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए पूर्ण तैयारी की आवश्यकता है।

'भारतीय शिक्षा आयोग 1964–66 के अनुसार–शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा का उचित कार्यक्रम आवश्यक है। अतः अध्यापक–शिक्षा एक ऐसी शिक्षा प्रक्रिया है जो अध्यापन करने वाले व्यक्तियों को शिक्षण–व्यवसाय की योग्यता

प्रदान करती है। अब प्रश्न उठता है कि व्यवसायीकरण शब्द आया कहाँ से? तो सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग 'औद्योगिक क्रांति' के आगमन के साथ-साथ बहुतायात से होता गया। किन्तु भारत में इस शब्द का प्रयोग स्वतन्त्रता प्राप्ती के पश्चात् सिमटी हुई शिक्षा व्यवस्था के विकास-प्रसार, प्रचार हेतु किया गया। जो धीरे-धीरे अपने मुख्य ध्येय को छोड़कर केवल नाम-मात्र के कार्य में संलग्न होकर रह गया जिसका दुष्परिणाम आज यत्र-तत्र सर्वत्र दृश्मान हो रहा है। आज यह कहना गलत न होगा कि आज 'भारत में पढ़े-लिखे लोगों की बेरोजगारी' अत्यधिक है जिसका कारण कवेल यह व्यवसांयीकरण भी है, जो केवल शिक्षा का न होकर मात्र शैक्षिक संस्थाओं का होकर रह गया है।

वस्तुतः जब भारत देश आजाद हुआ तो देश में शिक्षा व्यवस्था का ढाँचा बिल्कुल सपाट था चारों तरफ बेरोजगारी छाई थी। ऐसे में आवश्यकता थी कि कुछ ऐसे कदम उठायें जायें जो इस बिखरे हुए भारत की आधार स्वरूपिणि शिक्षा को एक सुन्दर ढाँचा प्रदान करें। तभी यहाँ के शिक्षा विदों एवं राजनैतिक बागडोर को संभाले हुए श्रेष्ठ पुरुषों ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु शैक्षिक संस्थाओं के निर्माण कार्य पर बल देना प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि तब देश में छात्र तो अधिक थे किन्तु संसाधन कम ही थे। ऐसे में शैक्षिक संस्थाओं का विकास होना स्वभाविक ही था और कहा भी गया है 'आवश्यकता ही अविष्कार की जननी होती है।'

इस प्रकार इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु विभिन्न स्तरों पर शिक्षण संस्थायें बनी जिनमें विभिन्न शिक्षण दिये जाने की व्यवस्था की गई। अतः इस प्रकार अध्यापक शिक्षा दो प्रकार की, कही गई हैं—सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा (Pre-Service Teacher Education) और सेवा कालीन शिक्षक शिक्षा (In-Service Teacher Education)।

(I) सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा

सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा नये लोगों को दी जाती है और इसमें

सैद्धान्तिक रूप से शिक्षा तथा साथ ही साथ शिक्षण अभ्यास पर जोर दिया जाता है। इसका उद्देश्य इस कार्य को ठीक ढंग से करने के लिए आवश्यक कौशलों का विकास करना है। वर्तमान में विभिन्नस्तर के सेवा-पूर्व शिक्षकों के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ चल रही है। यहाँ उनमें से कुछ संस्थाएँ हैं पूर्व प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के अन्तर्गत पूर्व प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ और नर्सरी टीचर एजूकेशन डिप्लोमा डिपॉर्टमेन्ट्स आते है। प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के अन्तर्गत नार्मल स्कूल, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, और पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग शामिल है।

माध्यमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के अन्तर्गत शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (Teacher Education College), केन्द्रीय शिक्षा शिक्षा संस्थान (Central Institute of Educational), क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (Regional Institutes of Education RIE), शिक्षक शिक्षा विभाग (Department of Teacher Education), राज्य शिक्षा संस्थान (State Institute of Education SIE) एवं पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग (Departments of Correspondence Courses) आते है। विशिष्ट बच्चों के शिक्षकों की शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के अन्तर्गत गूंगे-बहरों के शिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थाएँ और अन्धे बच्चों के शिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थाएँ आते है। विशिष्ट पाठ्य विषयों एवं क्रियाओं की प्रशिक्षण संस्थाओं के अन्तर्गत भाषा शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग, कला शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग, गृह विज्ञान शिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग, एवं शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग शामिल है।

(II) सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा

सेवारत शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है उसे सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा कहते है। इसके दो रूप हैं—**सेवारत अप्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण**—एक समय था जब हमारे देश में प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या बहुत अधिक थी। अतः उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए कई प्रकार के पाठ्यक्रम शुरू

किए गए जो कुछ स्थानों पर आज तक चल रहे हैं—पूर्ण कालीन शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम, ग्रीष्मकालीन शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम, अल्पकालीन शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम और पत्राचार पाठ्यक्रम। **सेवारत प्रशिक्षित शिक्षकों की सतत् शिक्षा** इस समय शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में इतनी तेजी से विकास हो रहा है कि उसके अद्यतन ज्ञान के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की सतत् शिक्षा आवश्यक हो गई है। इस समय सेवारत प्रशिक्षित शिक्षकों को सतत् शिक्षा जिस रूप में दी जाती है वे है—विचार गोष्ठियाँ, पुनर्बोधन पाठ्यक्रम, मुद्रित सामग्री वितरण, कार्यशालाएँ एवं जन संचार के साधन। इस प्रकार यदि संक्षिप्त रूप में देखे तो स्वतन्त्रता के पश्चात् अध्यापक शिक्षा में किए गए विभिन्न कार्य इस प्रकार हैं।

स्वतन्त्र होते ही हमने देश में शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न शुरू किए। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम राधाकृष्णन् आयोग (1948-49) ने सुझाव दिए। इस आयोग ने शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा प्रायोगिक प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया और साथ ही छात्राध्यापकों के सैद्धान्तिक ज्ञान और प्रायोगिक कौशल के मूल्यांकन की विधियों में सुधार करने पर बल दिया। यहीं से देश में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना और उनके कार्यक्रमों में सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। प्रसार की दृष्टि से 1951 में हमारे देश में नार्मल स्कूलों की संख्या बढ़कर '800' हो गई और प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संख्या बढ़कर '53' हो गई।

'1952' में हमारे देश में मुदालियर कमीशन की नियुक्ति की गई। इस कमीशन ने शिक्षक-शिक्षा के सम्बन्ध में कई सुझाव दिए जिनमें से दो सुझाव मुख्य थे-शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ केवल दो स्तर की होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ और माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ एवं इन्हीं संस्थाओं में प्रशिक्षित शिक्षकों की पूर्ति के लिए अल्पकालीन शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। '1964' में देश में कोठारी कमीशन की नियुक्ति की गई। इसने शिक्षक शिक्षा के विषय में विस्तार से विचार प्रस्तुत किए। उसके शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी कुछ प्रमुख सुझाव थे-पत्राचार पाठ्यक्रम और अल्पकालीन शिक्षक-शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार किया जाए, सेवारत अप्रशिक्षित शिक्षकों के

लिए ग्रीष्मकालीन संस्थाओं का सृजन किया जाए और सभी राज्यों में शिक्षक शिक्षा के सघन कॉलेज स्थापित किए जायें। जिनमें सभी स्तरों की शिक्षा के लिए शिक्षक तैयार किए जा सकें।

माना की यह सत्य है कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी होती है, किन्तु आज तो इन उपाधियों की मानो बाढ़ सी आ गई है, जिसके कारण बी.एड., एम.एड. से निर्मित सेवापूर्व अध्यापक, अध्यापक की उपाधि तो प्राप्त कर रहे हैं किन्तु अध्यापक के गुणों से वञ्चित से दिखाई पड़ रहे है वही दूसरी ओर आज अध्यापक अपनी अध्यापन वृत्ति को एक साधना के रूप में न मानकर आर्थिक रूप से पुष्टि देने वाले साधन के रूप में मान रहे हैं जिसके विभिन्न दोष आज प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे है। यथा–

1. **मात्रात्मक रूप में अभिवृद्धि एवं गुणात्मक पक्ष का ह्रास**–व्यावसायीकरण की इस दौड़ में विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी शैक्षणिक संस्थाओं को जन्म दिया है जो केवल विद्यार्थियों की भीड़ को अपने में समाये गये है किन्तु वहाँ गुणों का नितान्त अभाव परिलक्षित होता है।

2. **आर्थिक पक्ष पर अधिक बल**–आज सेवापूर्व अध्यापक एवं छात्र वेतन (धन) लाभ हेतु ही अध्यापन वृत्ति को अपना रहे है।

3. **नैतिकता का ह्रास**–ऐसे में अध्यापक केवल होड़ पर ही दृष्टि केन्द्रित कर रहे है न कि अपने नैतिक मूल्यों पर, जिन्हें वे छात्रों को प्रदान कर सके। यदि अध्यापक ही नैतिक मूल्य विहीन होगा तो छात्र की दशा क्या होगी यह तो समस्यात्मक परिदृश्य है।

4. **शिक्षा का गौण स्वरूप**–इस दौर में यदि देखा जाये तो ज्ञात होता है कि अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में व्यवसायिकरण के प्रभाव के कारण आज अध्यापक व छात्र दोनों 'शिक्षा' के मूल्यों को गौण समझकर इसे केवल व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य में ही देख व समझ रहे हैं।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से ज्ञात होने के पश्चात् यह कहा जा सकता है। कि इस व्यावसायीकरण के परिणाम स्वरूप विभिन्न शैक्षणिक संस्थायें तो बनी किन्तु विकास की दिशा में चलते-चलते आज जंगली लता के समान विकसित हो गई जो अनावश्यक फैलती तो रहती है किन्तु उपयोग की नहीं है और जब यह जंगली लता फल देती है तो वह मनुष्य के उपभोग्य कदापि नहीं होते, यही दशा कुछ इन शिक्षण संस्थाओं की हुई है कि आज ये संस्थायें इस प्रकार देश में फैल गई है जो अधिकांश व्यर्थ है अर्थात् केवल नाम-मात्र की ही है और इन संस्थाओं के फल स्वरूप जो छात्र, अध्यापक की उपाधि से युक्त है वे अधिकांश केवल विषाक्त फल के सदृश्य ही है।

निष्कर्ष रूप में यदि हम इन प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षित छात्राध्यापकों की भीड़ को आंकलित करें तो ज्ञात होगा कि अधिकांश अध्यापक ट्यूटर अर्थात् ट्यूशन क्लास के निर्वहण में तो सक्षम है किन्तु अध्यापन कार्य हेतु नहीं क्योंकि ये भाव शून्यता की स्थिति को धारण किए हुए है जो छात्रों के भावों को, विचार को ग्रहण करने में सक्षम नहीं होती है।

यह सत्य है कि आज के इस तीव्र वैज्ञानिक युग में अध्यापक शिक्षा में व्यवसायीकरण का अत्यन्त प्रभाव पड़ा है जो विभिन्न कॉलेज एवं विश्व विद्यालय के निर्माण रूप में परिलक्षित भी हुआ है किन्तु यदि इसमें अध्यापक के गुणों को मुख्य आधार स्वरूप मानकर नवीन अवधारणाएँ क्रियान्वित हो तो यह भारत के उज्जवल भविष्य को परिलक्षित करेगा यह सत्य ही है।

संदर्भ

1. स्वाति, जैन; अञ्जू गुप्ता, भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास, साधना प्रकाशन, मेरठ 2009
2. स्वाति जैन, डॉ. अञ्जू गुप्ता, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, साधना प्रकाशन, मेरठ 2009
3. आर. एस. शर्मा, अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण तकनीकी, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में दूरवर्ती शिक्षा की भूमिका

–अमिता
एम. एड.

भूमिका–

अध्यापक शिक्षा वह शैक्षिक आयोजन है जिसमें विभिन्न स्तरीय एवं वर्गीय अध्यापकों को इस तरह से शिक्षित करने के लिए प्रयत्न किया जाता है कि अग्रिम प्रजन्म को ज्ञान एवं मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ ही उनके समस्त शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में वे सक्षम हो सकें तथा उनमें तकनीकी कुशलता वैज्ञानिक चेतना, संसाधन सम्पन्नता तथा नवाचारिता के साथ सांस्कृतिक उद्दीपना एवं मानवता बोध का समन्वयात्मक विकास करना सम्भव हो सके। शिक्षण को एक उद्यम या प्रोफेशन के रूप में स्वीकार करने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि अध्यापक शिक्षा वह आयोजन हो जिसमें इस उद्यमगत नीति बोध एवं संवेगात्मक पक्ष में भी दक्षता प्रदान करने की व्यवस्था हो। इस हेतु सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं समस्त चारित्रिक मर्यादाओं के साथ ही राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक मूल्यों को विकसित करने के लिए सफल प्रयास करना अध्यापक शिक्षा का लक्ष्य है।

अध्यापक शिक्षा के अन्तर्गत सैद्धान्तिक, व्याहारिक तथा भावात्मक तीनों पक्षों को महत्त्व दिया जाता है, जबकि अध्यापक प्रशिक्षण में व्यवहारिक पक्ष को अधिक प्राथमिकता दी जाती है। अध्यापक-शिक्षा और अध्यापक-प्रशिक्षण की कार्यशाला तथा प्रयोगशाला विद्यालयों की कक्षायें ही हैं। विद्यालयों की कक्षाओं में छात्राध्यापकों को शिक्षण का अभ्यास एवं प्रशिक्षण का अवसर प्रदान किया जाता है। कोठारी आयोग

ने कक्षा-शिक्षण को राष्ट्रीय विकास का मुख्य साधन बताया है-"भारत के भाग्य का निर्माण विद्यालय की कक्षाओं में हो रहा है।" (Destiny of India is being shaped in her classroom)

देश में बढ़ती हुई जनसंख्या, उचित संसाधनों का अभाव, एक विशेष उम्र में विद्यालयों में नियमित, शिक्षण पाने में कठिनाई, व्यवसायरत आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जिनके चलते सभी मनुष्य कक्षा-शिक्षण नहीं कर पाते हैं। इस विषय को ध्यान में रखते हुए शिक्षण-प्रशिक्षण में अनेकों प्रयोग हुए। जिनमें प्रशिक्षण को सफल बनाने हेतु नवाचार का प्रयोग किया गया। नवाचार के सन्दर्भ में ही एक सम्प्रत्यय सामने उभरकर आया दूरस्थ शिक्षा का। जिसके माध्यम से उपरोक्त सभी समस्याओं का समाधान सरलता-सुगमता से हो जाता है।

दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताएँ

- दूरवर्ती शिक्षा की मुख्य अवधारणा यह है कि अध्यापक-शिक्षा की व्यवस्था अनौपचारिक विधियों द्वारा भी की जा सकती है।
- दूरवर्ती शिक्षा एक नवीन शिक्षा के विकल्प के रूप में विकसित हुई। यह अन्त:प्रक्रिया शिक्षण से भिन्न प्रकार की अनुदेशन प्रणाली है, जिसमें माध्यमों से सम्प्रेषण को विशेष प्राथमिकता दी जाती है।
- औपचारिक शिक्षा में शिक्षण विधियों तथा प्रविधियों को ही महत्त्व दिया है, मुख्य माध्यम ही सभी में प्रयुक्त किया जाता है। दूरवर्ती शिक्षण में भी शिक्षण विधियाँ एवं प्रविधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं।
- दूरवर्ती शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य सम्प्रेषण होता है, जबकि औपचारिक शिक्षा में प्रस्तुतीकरण को महत्त्व दिया जाता है। सामान्यत: उद्देश्य दोनों के एक से ही होते हैं, परन्तु शिक्षण प्रक्रिया समान नहीं हैं।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि परम्परागत शिक्षा अन्तः प्रक्रिया हेतु अध्यापक-शिक्षा है, जबकि दूरवर्ती शिक्षा अध्यापन में सम्प्रेषण हेतु अध्यापक-शिक्षा है।

दूरवर्ती-शिक्षा में अध्यापक तथा छात्रों के मध्य अधिक दूरी होती है, इसलिए बहुमाध्यम आयाम को अपनाया जाता है। अनुदेशन की तैयारी समुचित रूप से विशेषज्ञों द्वारा की जाती है। यह प्रणाली शिक्षा के विकास हेतु उन्मुख करती है तथा यह प्रणाली अधिक लचीली है, इसलिए विकास की आवश्यकता है। बदलते आधुनिक परिवेश की समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हैं। अतः उन समस्याओं एवं आवश्यकताओं को पहचानना एवं उनके लिए उचित समाधान प्रस्तुत करना व नये परिवेश से समायोजन स्थापित करने के लिए अध्यापक शिक्षा नितान्त आवश्यक है।

दूरवर्ती अध्यापक शिक्षा की भूमिका, कार्य एवं आवश्यकता

भूमिका	कार्य	आवश्यकताएँ
नीति निर्धारक	दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली की स्थापना सम्बन्धी निर्णय लेना, नीति निर्धारक सहकर्मियों को लाभ के बारे में राजी करना। पद्धति की उन्नति, निर्देशन करना, वित्तीय आवंटन का नियन्त्रण करना।	दूरवर्ती-शिक्षा को लाभो के प्रति संवेदनशील पद्धतियों की रूपरेखा व संरचनाओं का ज्ञान। दूरवर्ती शिक्षा के लागत लाभ लेखा का ज्ञान।
शिक्षार्थी	अध्ययन संसाधन स्थल संयन्त्र, समय, शुक्ल प्राप्त करना, शिक्षण कार्य का प्रबन्ध करना, पाठ्यक्रम	अध्ययन कौशल, स्थानीय संसाधनों का

	विकास करना, समवर्ग क्रियाकलापों में यथासम्भव योगदान करना।	ज्ञान। अन्य दूरवर्ती–शिक्षार्थियों के बारे में पाठ्यक्रम सूचना का ज्ञान
माता–पिता एवं परिवार	भौतिक आवश्यकताओं लेखन सामग्री, प्रकाश, रेडियो, टी.वी. की आपूर्ति करना, शिक्षार्थी की अनुसूची, गृहकार्य इत्यादि का पर्यवेक्षण करना। उत्साह वर्द्धक दृष्टिकोण अपनाना। स्वयं की शिक्षा स्रोतों से यथा सम्भव जानकारी से विचार प्रदान करना। सामग्री के सांस्कृतिक/सामाजिक/नैतिक औचित्य कार्य निर्देशन करना। पाठ्यसहगामी आवश्यकताओं की पूर्ति करना। शिक्षार्थी की ओर से संगठनों, संसाधनजनों से सम्पर्क करना।	दूरवर्ती शिक्षा की चेतना प्रासंगिक स्थानीय संसाधनों व समर्थक पद्धतियों का ज्ञान, रूपरेखा पाठ्यक्रम आवश्यकताओं का ज्ञान।
अन्य समुदाय के संसाधन जन (अन्य स्तरों पर अध्यापक स्वास्थ्य, कार्यकर्ता)	वैकल्पिक शिक्षा स्थल प्रदान करना। अध्ययन संसाधन सूचना व सामग्री प्रदान करना। वास्तविक स्थितियों का अनुभव प्रदान करना, उत्साहवर्धक दृष्टिकोण अपनाना। सम्प्रेषण माध्यम समर्थक पद्धतियों से सम्पर्क बनाना।	दूरवर्ती शिक्षा की सूक्ष्म ग्राहित/चेतना/प्रासंगिक स्थानीय संसाधनों की जानकारी। पाठ्यक्रम सामग्री का ज्ञान, शिक्षण विधियों का ज्ञान।
स्थानीय समुदाय	दूरवर्ती शिक्षा को शिक्षा पद्धति के केन्द्रों के रूप में प्रोत्साहित करना।	दूरवर्ती शिक्षा की सूक्ष्मग्राह्यता/

प्रतिनिधि	कर्मचारी वर्ग को क्रमबद्ध करना। साधन पद्धतियों की जाँच व सुधार करना। अध्ययन संसाधन। सामग्री एवं अनुभव दायिनी वास्तविक स्थितियाँ प्रदान करना	चेतना। प्रासंगिक स्थानीय संसाधनों का ज्ञान। प्रतिपादन पद्धतियों का ज्ञान

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि दूरवर्ती शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में अनेक लोग संलग्न हैं। जहाँ तक दूरवर्ती-अध्यापकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण-कार्य के क्रिया-कलापों का सम्बन्ध है। मुख्य रूप से दो प्रकार के लोग कार्यक्रम में संलग्न हैं। प्रथम वे जो प्रशिक्षित किये जाने हैं। दूसरे वे जिन्हें प्रशिक्षण देना हैं

इन वर्गों की पहिचान करने के पश्चात् अब प्रश्न उठता है कि 'इन्हें प्रशिक्षण कौन देगा'? अन्य अध्यापक प्रशिक्षकों के समान दूरवर्ती शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी पूर्ण कालिक प्रशिक्षक नहीं है। आज स्वयं दूरवर्ती ही दूरवर्ती शिक्षा हेतु दूसरों को प्रशिक्षित करते हैं। एक अन्य भी कारक है जो इस स्थिति में सहायक है—दूरवर्ती संस्थाओं से जुड़ने वाले अधिकतर अध्यापक, प्रशासक, तकनीशियन तथा प्रसारक आदि। इस प्रकार दूरवर्ती शिक्षा हेतु कर्मचारी वर्ग निवास के क्षेत्रों में वर्तमान उत्तरदायित्व तीन हैं—

1. आपातकालिक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वर्तमान व्यवस्था बनाए रखना।
2. पूर्णकालिक प्रशिक्षकों का उत्पादन करने वाली पद्धति का निर्माण भी करना।
3. इस प्रकार संसाधन प्रशिक्षण के राष्ट्रीय/स्थानीय स्वावलम्बन अध्ययन केन्द्रों की स्थापना करना।

ऐसे कर्मचारी वर्ग का कार्य उपयोग ऐसे परामर्शदाताओं के रूप में किया जा सकता है, जो अपनी पद्धतियों, संरचनाओं, तथा उन सन्दर्भों,

जिनमें उनका निर्माण हुआ है के विषय में विवरण प्रस्तुत कर सके तथा उन उपायों व साधनों का सुझाव दें सकें, जिसके द्वारा मेजबान अपने सन्दर्भों के अन्दर की उन पद्धतियों एवं संरचनाओं को अंगीकार तथा अनुकूलित कर सकें।

दूरवर्ती अध्यापक योग्यता हेतु प्रशिक्षक—

एक दूरवर्ती शिक्षक जो एक परम्परागत शिक्षक से भिन्न है। उसमें क्या योग्यता एवं गुण होने चाहिए? यह प्रश्न उठने पर हम कह सकते हैं कि उसमें निम्न गुण होने चाहिए—

1. कौशल
2. सहयोगी
3. लचीला
4. धैर्यवान
5. नवीन प्रवर्तक

दूरवर्ती शिक्षा में अध्यापन सामग्रियाँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और स्तरों के लोगों को परिलक्षित करती है। पद्धतियों की विश्वसनीयता के लिए उन्हें अत्यधिक उच्च स्तरीय होना पड़ेगा। अतः प्रशिक्षकों से शैक्षिक व तकनीकी कुशलता के अत्यन्त उच्च स्तरीय अपेक्षा की जाती है। सहयोग ही इस सफलता की आधारशिला है तथा सहयोग तब तक सम्भव नहीं जब तक कार्यों से सम्बद्ध सहयोगी न हों। विचारों व दृष्टिकोणों की कट्टरता दूरवर्ती शिक्षा को सफल बनाने में मुख्य बाधक है। लचीलापन दूरवर्ती शिक्षक, शिक्षाविदों, तकनीशियनों, निर्माताओं तथा प्रशासकों के लिए भिन्न-भिन्न भूमिकाओं को स्वीकार कर सकता है। अतः इन गुणों के प्रदर्शन के लिए लचीलापन अत्यन्त आवश्यक है। दूरवर्ती शिक्षा में किये गये प्रयोग पूर्ण रूप से एक साथ सफल नहीं हो पाते। इससे कार्यकर्त्ताओं में निराशा आ जाती है। कठिनाईयों के समाप्त होने की प्रतीक्षा करते रहने के स्थान पर उन्हें ऐसी कार्य संस्कृति का

विकास करना चाहिए जो ऐसी कठिनाइयों को नित्य प्रति की घटनाओं के रूप में माने। अपने कार्य के प्राति आशावादी दृष्टिकोण को अपनायें। दूरवर्ती शिक्षा स्वयं में एक नवाचार है। कार्यकर्त्ताओं को शिक्षा के हर क्षेत्र में नित नूतन खोज करनी चाहिए। इससे पाठ्यवस्तु की एवं प्रशिक्षु की गुणवत्ता में सुधार आता है।

प्रशिक्षण की आवश्यकता की पहचान–

– सामान्य रूप से दूरवर्ती शिक्षा तथा विशेष रूप से कर्मचारी वर्ग विभिन्न श्रेणियों की भूमिकाओं पर उपलब्ध साहित्य का सामान्यीकरण करना।

– कार्यों तथा समस्याओं, पूर्वानुमानित कार्यों एवं अपेक्षित समस्याओं की विवेचना करना।

– विशिष्ट घटनाओं की विवेचना अर्थात् विभिन्न स्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार सम्बन्धित कार्य की उत्पादकता के अर्थों में उसके परिणामों की विवेचना।

इस प्रकार के अभ्यास प्रशिक्षण की आवश्यकतायें रूझान वाली समस्याओं की पहचान करती हैं–

– सफल दूरवर्ती–शिक्षकों के सम्बन्ध में अध्ययन की सफलता में योगदान देने वाले लक्षणों की पहिचान करने में सहायक होते हैं, फिर इन लक्षणों को दर्शाकर प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण द्वारा उन गुणों का विकास करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

– अनुभवी लोगों के विचारों व मतों का संग्रह प्रशिक्षण की आवश्यकतायें क्या हैं? इस सम्बन्ध में वे क्या सोचते तथा विश्वास करते हैं? सम्भावित आवश्यकताओं की लम्बी सूची तैयार करने में सहायता होती है, जहाँ से पुनः विवेचना के पश्चात् विश्वसनीय प्रशिक्षण की आवश्यकताओं की पहचान की जा सकती है।

दूरवर्ती शिक्षा के माध्यम से अध्यापक-शिक्षा–

शिक्षा में व्यावसायिक उपाधि को सदैव वांछित माना गया है। यहाँ तक कि माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए अनिवार्य है तथापि स्वतन्त्रता प्राप्ति के ठीक पश्चात् माध्यमिक स्तर पर 4.6 प्रतिशत अध्यापक अप्रशिक्षित थे तथा पर्याप्त प्रशिक्षित स्नातकों के अभाव में अप्रशिक्षित स्नातक भर्ती किये जा रहे हैं। यह रीति अभी तक चली आ रही है तथा आगामी दीर्घकाल तक चलते रहने की सम्भावना है, क्योंकि हमें एक राष्ट्र के रूप में अभी तक एक और क्षेत्र के दबावों तथा प्रशासनिक उदासीनता के मध्य उद्देश्यपूर्ण सन्तुलन बनाने की तकनीकियों को सीखना है तथा दूसरी ओर सामाजिक आकांक्षाओं एवं शैक्षिक औचित्य के माध्य समन्वय रयना है। इस स्थिति के विकास में वास्तविक रूचि के फलस्वरूप एक वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करने वाले अनेक अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना हुई जिसकी शिक्षा स्नातक कार्यक्रम के नाम से पुनः संरचना की गई। ये संस्थायें प्रमुख रूप से सेवा–पूर्व प्रशिक्षण की आवश्यकता पूर्ति करती है, जबकि सेवारत अध्यापकों की श्रेणी के एक छोटे से प्रतिशत को नामांकित करती हैं, क्योंकि इन संस्थाओं में प्रशिक्षण के लिए सेवारत अध्यापकों को एक लम्बी अवधि के लिए कार्य से दूर रहना पड़ता है, जो कि अधिकतर कार्यों में सम्भव नहीं है।

पत्राचार के माध्यम से बी.एड. कार्यक्रम

साठ के दशक तक नियोजकों ने यह जान लिया कि औपचारिक संस्थाओं के माध्यम से बी.एड. कार्यक्रम अध्यापक प्रशिक्षण की बढ़ती हुई माँग के साथ तालमेल बिठाने की स्थिति में नहीं है। सामाजिक शैक्षिक गतिशीलता पत्राचार विधि से अध्यापक प्रशिक्षण को अस्तित्व में ले आयी क्योंकि इसके बाद ही (1968) में अध्यापक प्रशिक्षण के संदर्भ में इस विधि के उद्देश्यात्मकता तक पहुँचने के लिए यू.जी.सी. ने सोवियत संघ में एक शिष्टमंडल भेजा था। शिष्टमण्डल ने पत्राचार विधि से अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रबल समर्थन किया। फलस्वरूप सत्तर तथा अस्सी के दशकों में पत्राचार विधि से बी.एड. कार्यक्रम का

प्रसार हुआ। आज उपलब्ध नवीनतम आधार प्रदत्तों के अनुसार पत्राचार विधि के माध्यम से बी.एड. कार्यक्रम प्रदान करने वाले औपचारिक विश्वविद्यालयों के अधीन पन्द्रह पत्राचार शिक्षा संस्थान तथा एक प्रान्तीय मुक्त विश्वविद्यालय है।

प्रान्तीय शिक्षा मन्त्रालयों के अतिरिक्त, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय भारत सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् तथा राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद भारत में अध्यापक शिक्षा की नीति तथा व्यवहार को प्रभावित करने वाली संस्थाएं हैं।

एन.सी.टी.ई. से अपने एक पत्राचार में इस रुचि की एक झलक मिलती है, जो इस प्रकार है–

– बी.एड. पत्राचार कार्यक्रम के पहलुओं में से एक जिस पर विचार करने की आवश्यकता यह है कि क्या बी.एड. पत्राचार पाठ्यक्रम उन नर्सरी व आधारिक पाठशालाओं के अध्यापकों को भी उपलब्ध कराया जा सकता है? जो अपनी योग्यता तथा कैरियर सम्भावनाओं को सुधारना चाहते हों तथा यदि हाँ, तो इस श्रेणी के अभ्यर्थियों की योग्यता के क्या आधार होने चाहिए? इस महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर एन.सी.टी.ई. या एन.सी.ई.आर.टी. की सलाह अपेक्षित है।

– (अ) 1990 से आगे के विकासक्रम तथा (ब) यह तथ्य कि कम से कम कुछ श्रेणियों के अभ्यर्थियों को आगामी कुछ वर्षों के लिए ऐसे पाठ्य को दृष्टिगत करते हुए यदि बी.एड. पत्रकारिता पाठ्यक्रम हेतु आदेशों तथा दिशा-निर्देशनों की अधिक स्थिति विकसित कर ली जाए, तो सहायक होगा।

– यह स्पष्ट नहीं है कि एन.सी.टी.ई. तथा एन.सी.आर.टी. ने इस मद को औपचारिक रूप से यू.जी.सी. तथा सम्बन्धित विश्वविद्यालयों राज्य सरकारों के साथ उठाकर सामान्य रूप से पत्राचार पाठ्यक्रम को समाप्त करने के लिए एन.सी.टी.ई. द्वारा

समय-समय पर पारित किए गए प्रस्ताव को लागू करने हेतु कौन सी विशेष कदम उठाए हैं? यदि इस मद को इन निकायों के साथ उठाया गया है, तो उनका क्या दृष्टिकोण रहा है?

इस पत्राचार से यह निष्कर्ष निकलते हैं कि भारत सरकार माध्यमिक विद्यालयों शिक्षकों की ही नहीं वरन् प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापकों की भी दशा सुधारने के लिए उद्यत है। दूसरे रुचि दूरवर्ती शिक्षा कार्यक्रमों को सक्षम रूप से चलाने में है, व तीसरे प्रमाण भी है कि सरकार मिल-जुलकर निर्णय लेने की प्रक्रिया का समर्थन करती हैं, यह सब प्रशंसनीय है, तथापि सरकार को यू.जी.सी. इत्यादि जैसे विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से कार्य करना पड़ता है।

एन.सी.टी.ई. ने पत्राचार द्वारा अध्यापक शिक्षा के प्रासंगिक पहलुओं का अवलोकन करने तथा इसके बाद दूरवर्ती शिक्षा के उपयोग पर संस्तुतियाँ देते हुए एक अन्य समिति का गठन किया। समिति ने 31 मार्च 1989 तथा जून 1989 की सभा में निम्न संस्तुतियाँ दी–

- अध्यापक-शिक्षा पाठ्यक्रम वास्तविक कक्षा अनुभवों अन्य रूपों में मानवीय सम्पर्कों पर अत्यधिक बल देने की माँग करता है।
- दूरवर्ती शिक्षा विधियों के माध्यम से अध्यापक-शिक्षा यदि समुचित रूप में संगठित की जाए तो उन लोगों के लिए जो आमने-सामने विधि में कार्यरत हैं, स्तरीय प्रशिक्षण में मार्गदर्शन के रूप में प्रकट हो सकती है।

निष्कर्ष–

इस प्रकार उपर्युक्त विषय के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि अध्यापक-शिक्षा में दूरवर्ती शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। अध्यापक-शिक्षा को गुणवत्ता युक्त बनाने के लिए दूरवर्ती शिक्षा प्रयासरत है। यह प्रशिक्षुओं को नित-नूतन नवीन प्रविधियों में माध्यम से प्रशिक्षित करने में प्रयासरत है। इसने अपने उत्तम सम्प्रेषण के माध्यम से कक्षा-कक्ष जैसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है।

ज्ञान युग में अध्यापक शिक्षा के मुद्दे एवं चुनौतियाँ

–हेमलता
एम. एड.

भूमिका

ज्ञान का आदान–प्रदान ही मुख्यतः शिक्षा का केन्द्र बिन्दु है। ज्ञान के अर्थ को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है जिससे यह आभास मिल सके कि ज्ञान का सम्बन्ध बुनियादी तौर पर अनुभव पर आश्रित है। इन अनुभवों का परिप्रेक्ष्य सीधे तौर पर सामाजिक क्रियाओं से संबद्ध होने के कारण प्रायः प्रत्येक अनुभवकर्ता के अनुभव दूसरे से भिन्न हो सकते हैं अतः प्रश्न यह है कि ज्ञान को मानकीकृत रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है या नहीं। इसी कारण ज्ञान के सिद्धान्तों के अंन्तर्गत ज्ञान के प्रमाणीकरण का एक प्रमुख प्रश्न है प्रमाण शास्त्र का विकास इसी समस्या को समझने हेतु हुआ है इसी संदर्भ में ज्ञान प्राप्ति की विधियों का अपना विशिष्ट स्थान है।

शिक्षण का कार्य समस्त कार्यों में पवित्रतम और परमावश्यक माना जाता है क्योंकि ज्ञान दान के समान दूसरा कोई भी परहिताय निर्दिष्ट कार्य नहीं है। शिक्षण की प्रक्रिया निश्चित रूप से अध्यापक शिक्षा पर निर्भर है, क्योंकि अध्यापक शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा भावी अध्यापकगण निहित कौशल तथा तकनीकों से परिचित हो सकते हैं, और उनमें दक्षतार्जन करते हुए अपेक्षित शिक्षण व्यवहारों को आत्मसात् करने मे सक्षम हो पाते हैं। यह भी व्यवहार परिवर्तन या सीखने को अभिव्यक्त करने का ही प्रयास है जो अपेक्षित तथा वांछित हो इस उपयुक्तता का आकलन प्रायः वैयक्तिक के साथ ही सामाजिक तथा राष्ट्रीय आदर्श, मर्यादा, मान्यता एवं जीवनमूल्यों के संदर्भ में किया जाता

है। एक अच्छी शिक्षण व्यवस्था तभी संभव होगी जब एक योग्य अध्यापक होगा, और एक योग्य अध्यापक तभी होगा जब उन्हें अलग से प्रशिक्षण दिया जाएगा। प्रशिक्षण के उपरान्त ही उनके उपरोक्त मूल्यों का विकास होगा। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1925-53)-मुदालियर आयोग ने विचारयुक्त शिक्षण के लिए शिक्षक को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए उनके व्यक्तिगत गुण, शैक्षणिक, व्यवसायिक प्रशिक्षण और विद्यालय में स्वयं द्वारा प्राप्त स्थान महत्त्वपूर्ण बताया है। कोठारी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट का आरम्भ इस कथन से किया है "भारत के भाग्य का निर्माण देश के कक्षा में किया जाता है।" निसन्देहः देश के विकास में शिक्षा की अहम् भूमिका है। एवं उत्तम शिक्षा कार्यक्रम का निर्धारण अध्यापकों की योग्यता से होता है। शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए सर्वप्रथम अध्यापकों के लिए श्रेष्ठ व्यवसायिक शैक्षिक कार्यक्रमों का आरम्भ करना होगा।

सर्वप्रथम बी.एड. कार्यक्रम में चयन के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। चयन का उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जिससे कि उन व्यक्तियों का चयन हो, जो वास्तव में शिक्षण-योग्यता हो, अपने विषय को पूर्ण ज्ञान रखते हों एवं शिक्षण व्यवसाय के प्रति धनात्मक दृष्टि रखते हों। कुछ विशिष्ट तकनीकियों को चयन-प्रक्रियाओं में प्रयोग किया जाना चाहिए।

चयन-प्रक्रियाओं में सुधार करने में लिए निम्नलिखित सुझाव हैं-

- अभ्यर्थी का साक्षात्कार किया जाना चाहिए। ठीक से तैयार किया गया टैस्ट ही प्रयोग करना चाहिए।
- समान्य ज्ञान परीक्षा का प्रयोग करना चाहिए।
- अपने विषय की योग्यता जानने के लिए स्कूल-विषय में परीक्षा ली जानी चाहिए।
- भाषा सम्बन्धी परीक्षा करनी चाहिए।
- अभिवृत्ति, अभिरूचि एवं रूचि सम्बन्धी आविष्कार का प्रयोग करना चाहिए।

माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापकों के प्रशिक्षण का समय स्नातक के पश्चात एक वर्ष है, बल्कि प्रभावशाली समय 8 या 9 महीने ही है जो इनके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

वर्तमान प्रशिक्षण कार्यक्रम छात्राध्यापक को इतना अवसर प्रदान नहीं करता है जिससे कि उसमें इतनी योग्यता हो की वह वास्तविक शिक्षण स्तर की विभिन्न समस्याओं का सामना कर सके। इस का प्रमुख कारण यह है कि जिन्हें अध्यापक स्कूलों में करता है, वह प्रशिक्षण महाविद्यालयों में नहीं बताई जाती एवं प्रशिक्षण विद्यालय के पाठ्यक्रम में भी नहीं होती है।

बी.एड. कार्यक्रम की दूसरी कमी यह है कि छात्र को इतनी योग्य नहीं बनाती की वह प्रस्तावित पाठ्यक्रम को अपने वास्तविक शिक्षण जीवन में एक निश्चित समय में पूरा कर सके। शिक्षण अभ्यास जिसका अभ्यास छात्राध्यापक प्रशिक्षण के समय कराता है। वह उसे ठीक से कक्षा में लेने में एवं दिये हुए समय में प्रदत्त पाठ्यक्रम को पूरा कर सकने में सहायता नहीं करता।

शिक्षण अभ्यास में छात्राध्यापकों को कक्षाकक्ष की वास्तविक समस्याओं का समाना करने के लिए एक अवसर प्रदान किया जाना चाहिए उनको विशिष्ठ योग्यता एवं विशिष्ठ विषय के लिए अभ्यास करना चाहिए।

अन्त में कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम का हमारे देश में अच्छे अध्यापकों को बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण मूल्य हैं। अपने देश की क्षमताओं का अधिकाधिक प्रंयोग करने के लिए बी. एड. आदि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में सुधार किया जाना चाहिए।

आजीविका के रूप में अध्यापक शिक्षा

–कैलाश चन्द्र मठपाल
एम. एड.

प्राचीन समय में अध्यापन या शिक्षण को सेवा के रूप में देखा किया जाता था। वैदिक काल में गुरु का कोई प्रमुख शिष्य या प्रबुद्ध शिष्य ही अगला गुरु होता था। वैदिक काल की यहीं परम्परा थी, जो आगे भी इसी तरह चलती रही तब अध्यापन केवल परम पवित्र और महत्वपूर्ण सामाजिक हित के कार्य के रूप में था।

परंतु आज के वर्तमान युग में इसने सेवा की जगह व्यवसाय के रूप में जगह ले ली है। आधुनिक काल में इसे एक उद्यम या आजीविका का स्वरूप प्रदान किया जा रहा है। क्योंकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस दिशा में अपनी सहमति व्यक्त कर दी है। बाद में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के द्वारा भी अध्यापन को आजीविका के रूप में मान लिया गया। वास्तव में किसी उद्यम या आजीविका में कुछ मूलभूत तथ्यों पर ध्यान अवश्य दियां जाता है जो न्यूनतम कौशलगत दक्षता, कार्याधारित प्रतिबद्धता एवं व्यवहारगत निष्पादन से सम्बन्धित होते है। इनके अभाव में कोई व्यक्ति किसी आजीविका में न तो आर्थिक दृष्टि से सफल हो सकता है और न ही गुणवत्ता की दृष्टि से ही स्तरीय प्रमाणित हो सकता है।

आजीविका आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति को सुदृढ बनाने के साथ ही आत्म-निर्भरता की ओर ले जाती है, लेकिन इस हेतु आजीविकागत अभ्यास या प्रोफेशनल प्रैक्टिस की निरंतरता को बनाए रखने की अपरिहार्यता भी होती है, बिना अभ्यास किसी कौशल में दक्षता की प्राप्ति नहीं हो सकती है और न ही प्रतिबद्धता और निष्पादन में स्तरोन्नयन ही सम्भव हो पाता है।

आजीविका के लिए अध्यापकीय तैयारी–

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) के द्वारा अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता स्तरोन्नयन को ध्यान में रखते हुए दक्ष एवं प्रतिबद्ध अध्यापकीय तैयारी को आवश्यक माना गया।

प्रो. आर.एच. दवे समिति के प्रतिवेदन जो प्राथमिक स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तर पर बल देने के लिए चर्चित रहा है को स्वीकृति देते हुए परिषद् ने गुणवत्ता में सुधार हेतु अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में आजीविका के लिए अध्यापकीय तैयारी को व्यावहारिक माना है। ज्ञान तथा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में फलतः अध्यापकीय कार्य, भूमिका और दायित्व का विस्तारण हो रहा है। कक्षाकक्ष सीमा के आगे बढ़ती जा रही है। प्राथमिक स्तर पर सर्व शिक्षा को स्वीकृति दिए जाने के बाद अधिगमकर्त्ताओं की संख्या में भावी विस्तार को आज अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है। यह विस्तृति अवश्य ही शिक्षण गुणवत्ता स्तर को प्रभावित कर सकती है, अधिगम वातावरण, विद्यालय समुदाय सम्बन्ध, अध्यापकीय भूमिका, अधिगम प्रारुप आदि में भी परिवर्तन की सम्भावना को अवहेलित नहीं किया जा सकता है। आनन्दपूर्ण स्वतन्त्र वातावरण में क्रियाधारित पद्धति से सहभागितामूलक अधिगम की सामाजिक अपेक्षा अवश्य ही अध्यापक/अध्यापिकाओं को आजीविकागत शिक्षण तथा प्रशिक्षण को ग्रहण करने के लिए बाध्य कर सकती है।

दक्ष एवं प्रतिबद्ध अध्यापकीय विशेषताएँ–

परिषद् के द्वारा इस सम्बन्ध में भारतीय सामाजिक परिदृश्य में सामाजिक न्याय और साम्य की स्थापना की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अध्यापकों के लिए विषयवस्तुगत अधिकार (Mastery) के साथ ही कई अन्य दक्षता तथा प्रतिबद्ध क्षेत्रों पर प्रकाश डालने के लिए सार्थक प्रयास किया गया है। इस सन्दर्भ में स्पष्ट किया गया है कि एक कुशल और प्रतिबद्ध अध्यापक वह व्यक्ति हो सकता है जो–

– अपने विद्यार्थियों में प्रिय हो, उनके सहयोगी के रूप में कार्य कर सकें और साथ ही समुदाय के द्वारा प्रशंसित और सम्मानित हो।

– अनुकूल प्रिय व्यवहार (Modern Behaviour) का प्रदर्शन करने वाला हो तथा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अपने अंशदान के प्रति आवश्यक आत्म अवधारणा (Self Image) के साथ ही आत्म विश्वास उसमें विद्यमान हो।

– ज्ञान तथा जनसंख्या के क्षेत्र में विस्फोट एवं शिक्षाकांक्षा में उल्लेखनीय वृद्धि के प्रति वह जागरूक है।

– उपयुक्त स्रोतों के माध्यम से अद्यतन सूचना संग्रह और अध्यापन-अधिगम व्यूह रचनाओं के अनुसार उन्हें संसाधित करने में अभिज्ञ हो।

– बदलते हुए समय के साथ अपनी शिक्षण उपागम तथा दृष्टिकोण, प्रविधि एवं तकनीकी ज्ञान के नवीनीकरण के प्रति आग्रही हो।

– अधिगमकर्त्ताओं के समुदाय अपनी प्रतिमान भूमिका तथा समुदाय के लिए नवीन विकासात्मक सूचनाओं के सम्प्रेषण के महत्त्व का अनुभव करने में सक्षम हो।

– इन लक्षणों से यह स्पष्ट है कि एक आधुनिक उत्तम अध्यापक अध्यापिका वही व्यक्ति हो सकता है जो न केवल अपनी विषय वस्तु का उत्तम ज्ञाता हो बल्कि जो साथ ही साथ नवाचारिक प्रवृत्तियुक्त, विचार ग्रहणशील, समाजीकरण कुशल, आजीविका सम्बन्धी दक्षतायुक्त व्यवहार कुशल और आत्म विश्वासी होने के साथ ही आत्म निर्भर भी हो। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से ऐसे योग्य अध्यापक/अध्यापिकाओं की तैयारी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

प्रमुख दक्षता क्षेत्र–

- सन्दर्भगत क्षमता
- संकल्पनात्मक दक्षता

- विषय वस्तुगत दक्षता
- सम्प्रेषण सम्बन्धी दक्षता
- अन्य शैक्षिक क्रियाकलाप सम्बन्धी दक्षता
- शिक्षण अधिगम सामग्री निर्माण सम्बन्धी दक्षता
- मूल्यांकनगत क्षमता
- प्रबन्धन क्षमता
- अभिभावक सह-कार्य सम्बन्धी दक्षता
- समुदाय तथा अन्य अभिकरण सहकार्य सम्बन्धी दक्षता
- समाज के प्रति छात्रों में समायोजन की दक्षता

अध्यापक शिक्षकीय तैयारी–

अध्यापक शिक्षकों के लिए भी शिक्षण-प्रशिक्षण की आवश्यकता उतनी ही है जितनी एक अध्यापकीय तैयारी के लिए स्पष्ट किया गया है।

निरंतर शिक्षा के माध्यम से भी ऐसे अध्यापक शिक्षक जो कार्यरत है, आजीविकागत दक्षता एवं प्रतिबद्धताओं को समाप्त करने में सफल हो सकते हैं। इस हेतु आवश्यकता आधारित कार्यक्रम को निर्मित एवं व्यवस्थापित करते हुए अध्यापक शिक्षकों की एक पृथक श्रेणी का निर्माण कर पाना सम्भव हैं जो अध्यापकों के अध्यापक कहलाने के योग्य है। इस श्रेणी के लिए सेवापूर्व प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है ही ताकि प्रशिक्षित अध्यापकों का चयन किया जा सके। अध्यापक शिक्षकों को निरन्तर आजीविकागत समृद्धि के लिए अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। इसके लिए माध्यम के रूप में अध्यापक शिक्षकीय कार्यशाला, संगोष्ठी, अल्पकालीन पाठ्यक्रम, स्वनिर्देशित अधिगम की व्यवस्था अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले विविध अभिकरणों के द्वारा की जानी चाहिए।

शैक्षिक प्रशासकीय तैयारी–

शिक्षण तथा अध्यापक शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए शैक्षिक प्रशासकों की महत्वपूर्ण भूमिका अवश्य होती है। यदि शैक्षिक प्रशासक नवाचारिक, सृजनशील और प्रबन्धन कुशल हो तो अवश्य ही अध्यापक शिक्षा–संस्थानों में प्रायोगिक क्रियाकलाप नवाचार तथा अनुसंधान को प्रायोजित कर पाना सम्भव हो पाता है।

अध्यापकीय भूमिका निष्पादन का आकलन–

एक अध्यापक को सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए विभिन्न भूमिकाओं का निष्पादन करना होता है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के द्वारा कई महत्त्वपूर्ण भूमिका निष्पादन क्षेत्रों की पहचान की गई है। जिनमें उपयुक्त शिक्षण प्रशिक्षण का प्रबन्ध करते हुए भावी तथा सेवारत् दोनों ही वर्गों के अध्यापक/अध्यापिकाओं को समान रूप से दक्ष बनाया जा सकता है।

- विद्यालय स्तरीय निष्पादन।
- विद्यालयेतर शैक्षिक क्रियाकलाप सम्बन्धी निष्पादन।
- अभिभावक सम्बन्धित निष्पादन।
- समुदाय सम्बन्धित निष्पादन।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में सुधार की आवश्यकता–

वर्तमान अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम मात्र प्रशिक्षित अध्यापक/अध्यापिकाओं को तो तैयार करने समर्थ है, लेकिन उन्हें अध्यापन आजीविका के क्षेत्र में एक दक्ष तथा कुशल व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करने के लिए सर्वथा उपयोगी और सक्षम नहीं है जिसके अभाव में शिक्षण को एक आजीविका का रूप दे पाना सम्भव नहीं हो सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता नियंत्रण और स्तर नियंत्रण हो।

निष्कर्ष–

वर्तमान संदर्भ में अध्यापक शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है तथा आजीविका के रूप में अध्यापक शिक्षा सर्वोत्तम व्यवसाय बन गया है, जिसके माध्यम से शिक्षक प्रशिक्षक (Teacher Education) उत्तम गुणवत्ता साधनों से युक्त तथा अपने विषय में परिपूर्ण होकर छात्राध्यापकों का भविष्य उज्ज्वल कर सकता है।

आजीविका के रूप में अध्यापक शिक्षा एक बहुआयामी तथा स्वाभिमानपूर्ण व्यवसाय है, जिसमें प्रशिक्षक स्वयं को सफल मानते हुए भविष्य के अध्यापकों का उचित मार्गदर्शन करता है। इसलिए आजीविका के रूप में अध्यापक शिक्षा सर्वोत्तम क्षेत्र है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा का विकास-क्रम

–रवीन्द्र सत्यवली

एम. एड.

भारत में शिक्षा को बाहर से उधार नहीं लिया गया भारत ऐतिहासिक रूप से ही शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। भारत में अध्यापक शिक्षा उतनी ही प्राचीन है जितनी की भारतीय शिक्षा। यदि समाज में किसी भी रूप में शिक्षा का अस्तित्व है तो वहाँ पर शिक्षा और छात्र का अस्तित्व भी अवश्य ही होगा। सामान्य शिक्षा व्यवस्था के साथ अध्यापक शिक्षा पूर्णतः संलग्न है। अध्यापक शिक्षा व्यवस्था का जन्म शिक्षा के साथ ही 2500 शताब्दी पूर्व हुआ। भारत में अध्यापक-शिक्षा के इतिहास को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है–

1. प्राचीनकाल में अध्यापक शिक्षा : 2500 ई.पू. से 500 ई.पू.
2. बुद्धकालीन अध्यापक शिक्षा : 500 ई.पू. से 1200 ई.
3. मुस्लिम कालीन अध्यापक शिक्षा : 1200 ई.पू. से 1700 ई.
4. ब्रिटिश कालीन अध्यापक शिक्षा : 1700 से 1947 तक
5. स्वतन्त्र भारत में अध्यापक शिक्षा : 1947 से अब तक

प्राचीनकालीन अध्यापक शिक्षा (Teacher-Education in Ancient Period)

इस काल में हमें शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था के सम्बन्ध में अधिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक काल में शिक्षा व्यवस्था पूर्णतः वेदों से सम्बन्धित थी। ज्ञान या शिक्षा पूर्णतः छात्र

और शिक्षक के मध्य द्विमुखी प्रक्रिया थी। इस प्रकार समुदाय का वह भाग जो शिक्षा प्राप्त करना चाहता था, उसको शिक्षा प्रदान करना शिक्षाशास्त्रियों के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत था क्योंकि उस समय शिक्षा जाति व्यवस्था पर आधारित थी। हर जाति अपने व्यवसाय के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित थी। उस समय प्रशिक्षण प्रदान करने वाली कोई औपचारिक संस्था नहीं थी। छात्र अपने 'गुरू' माता-पिता या अभिभावकों द्वारा ही प्रशिक्षित होते थे। प्रारम्भ में यह एक वंशानुक्रमित प्रक्रिया थी। इस प्रकार से शिक्षण-व्यवसाय एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता था।

शिक्षण की विधियाँ तथा प्रविधियाँ बहुत सरल थी। छात्र को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिक्षक के एक-एक शब्द पर आश्रित रहना पड़ता था। यहाँ शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध थे। **आर. पी. सिंह** लिखते हैं कि यह साक्ष्य अवश्य मिलते हैं कि इस काल में कुछ ब्राह्मण परिवारों में वंशानुक्रम से ही शिक्षण कार्य होता था, परन्तु इस प्रकार का कोई साक्ष्य नहीं है कि अध्यापक प्रशिक्षण देने के लिए कोई औपचारिक व्यवस्था की गयी थी, लेकिन यह निश्चय ही सत्य है कि शिक्षक भविष्य की पुकार के सम्बन्ध में ज्ञान रखते थे और अपने विषयों का ज्ञान भविष्य को मस्तिष्क में रखकर ही करते थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस काल में शिक्षक प्रशिक्षण की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं थी।

उस समय शिक्षक का कार्य विषय-ज्ञान और कौशल सिखाना ही नहीं था प्रत्युत छात्रों को ज्ञान की प्राप्ति कराना था। इस दृष्टि से शिक्षक बहुत योग्य व्यक्ति ही हो पाते थे। **ऋग्वेद में कहा गया है कि** "वही व्यक्ति शिक्षक बनने के योग्य है जिसने स्वयं-ज्ञान के आधार पर आचरण किया हो और ब्रह्मचारी के सभी कर्त्तव्यों का निर्वहन किया हो। **मुण्डकोपनिषद** में भी कहा गया है कि शिक्षक विद्वान् परिवार से होना चाहिए, वह ब्रह्मनिष्ठ व ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। विद्यार्थी उन्हीं शिक्षकों के पास ज्ञानार्जन के लिए एकत्र होते थे, जिनकी बौद्धिक योग्यता व चरित्र उच्च कोटि का होता था और यदि इन दोनों में से किसी पर भी सन्देह होता, तो उसके पास ज्ञानार्जन के लिए छात्रों का जाना बन्द हो जाता। उस समय शिक्षकों की परीक्षा का यह भी एक मानदण्ड था।

उस समय शिक्षक चुनने का एक माध्यम मानीटर प्रणाली भी थी। वैदिक काल में शिक्षक नए विद्यार्थियों को ज्ञान देने का कार्य वरिष्ठ विद्यार्थियों की सहायता से करते थे। जो वरिष्ठ विद्यार्थी इस योग्यता के होते, उन्हें अध्यापक अपने पास अधिक समय तक रखते थे ताकि वे अध्यापन का गहरा ज्ञान प्राप्त कर सकें। जब ज्ञान-अधिग्रहण व परिपक्वता से वे अच्छे शिक्षक बन जाते, तो फिर वे स्वतन्त्र रूप से शिक्षण-कार्य प्रारम्भ कर देते। अच्छे शिक्षकों के सम्पर्क में रहकर ही बिना औपचारिक प्रशिक्षण के उस समय शिक्षण-व्यवसाय का ज्ञान प्राप्त किया जाता था।

शिक्षक-चुनाव का आधार उनकी ख्याति और ख्याति शिक्षक के ज्ञान और उसकी सम्प्रेषण-शक्ति पर निर्भर करती थी, ज्ञान का अर्थ केवल बौद्धिक सूचनाएँ देना ही नहीं था, ज्ञानी या विद्वान उसे ही नहीं कहा जाता था जो शास्त्रों का पूर्ण जानकर हो और उनकी भली प्रकार व्याख्या कर सके, परन्तु ज्ञान जिसके व्यक्तित्व में ही समा गया हो। शास्त्र-ज्ञान के साथ-साथ उच्च चरित्र और आत्मिक ज्ञान वाला व्यक्ति ही शिक्षक बनने का अधिकारी था।

कालान्तर में जब जाति-प्रथा प्रादुर्भाव हुआ तो शिक्षणकार्य भी एक जाति-विशेष का कार्य बन गया। अब यह ब्राह्मण-जाति का पैतृक व्यवसाय हो गया। एक जाति का व्यवसाय हो जाने के कारण योग्यता का स्तर भी घटना स्वाभाविक था। अब पहले की तरह व्याख्याओं एवं पुनः व्याख्याओं पर बल न देकर उद्देश्य ज्ञान को केवल कण्ठस्थ करना ही रह गया है। इस प्रकार शिक्षण एक यांत्रिक क्रिया बन गई और मौलिकता का ह्रास होने लगा। यह पद्धति शताब्दियों तक चलती रही।

बुद्धकालीन अध्यापक शिक्षा (Teacher-Education in Buddha Period)

-- बुद्धकाल में अध्यापक प्रशिक्षण के महत्त्व को पहचान लिया गया था। इसी समय इसका विकास हुआ। यह धारणा बनी कि शिक्षण का व्यवसाय केवल ब्राह्मणों की ही धरोहर नहीं है। किसी वर्ग या समुदाय

का प्रतिभाशाली व्यक्ति प्रशिक्षणोपरान्त एक अध्यापक का दर्जा प्राप्त कर सकता है। हमें इस काल में कुछ अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था देखने को मिली। यह शिक्षा बुद्ध की धर्म शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए दी गयी न कि विद्यालयों के शिक्षकों के लिए। ये प्रशिक्षण प्राप्तकर्त्ता भिक्षुक थे जिन्होंने बुद्ध के धर्म प्रचार के लिए कार्य किया।

''प्रवज्या'' तथा ''उपसम्पदा'' जैसे संस्कारों के मध्यवर्ती काल में विद्याभ्यास पूर्ण होने के बाद दो आचार्यों के निरीक्षण में प्रशिक्षण दिया जाता था। वरिष्ठता एवं श्रेष्ठता के आधार पर आचार्य या उपाध्याय स्तरीय योग्यता अर्जन के बाद ही भिक्षुओं के अध्यापन हेतु अधिकार प्राप्त हो पाता था।

बौद्धकालीन अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित प्रणाली का विशेष योगदान विद्यालयीय शिक्षा और सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में नहीं था फिर भी औपचारिक दृष्टि से इस काल की अध्यापक प्रशिक्षित प्रणाली को आधारशिला के रूप में मान्यता दी गयी।

मुस्लिमकालीन अध्यापक शिक्षा (Teacher-Education in Muslim Period)

मुस्लिम काल में भी अध्यापक का कार्य सम्मान का कार्य ही माना जाता है। अध्यापक (जिसे अरबी में आलिम कहा जाता है) जीवनपर्यन्त अध्ययन अध्यापन का कार्य करता था। उस समय आलिम (अध्यापक) का व्यवसाय पैतृक नहीं था। ऐसे उदाहरण भी मिलते है कि मदरसों के लिए विदेशों से भी शिक्षक बुलाए जाते थे। नए शिक्षकों का चुनाव एवं प्रशिक्षण इस समय भी प्राचीन काल की तरह मानीटर प्रणाली से होता था।

शैक्षिक संस्थायें मदरसों के रूप में थी और केवल मौलवी ही अध्यापक के रूप में कार्य करते थे। इस समय शिक्षा प्रमुखतया धार्मिक थी। मुख्य रूप से कुरान की शिक्षा अलग से दी जाती थी। इस काल

में शिक्षकों के लिए कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं था। मौलवी, मुकलीस और मदरसों के अध्यापक के रूप में कार्य करते थे।

इस काल के दौरान शिक्षण औषधि, साहित्य, कला और संगीत व्यवसायों के समान स्थापित किये गये, इस प्रकार के व्यवसायों की नियमित शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए संस्थायें नहीं थी न ही उनके महत्त्व को इस काल में पहचाना गया। अरब तथा इस देश के केवल पढ़े लिखे व्यक्तियों को ही मौलवियों के पद पर नियुक्त किया गया। शैक्षिक संस्थाओं के केवल मुस्लिम वर्ग के व्यक्ति ही मुकलिस और मदरसों में पढ़ाने के लिए योग्य माने जाते थे।

ब्रिटिशकालीन अध्यापक-शिक्षा (Teacher Education in Britrish Period)

उपरोक्त शैक्षिक व्यवस्था उनकी अपनी इंग्लैंड की व्यवस्था के अनुसार और आवश्यकता तथा दर्शन के अनुसार बदली गयी। जब ब्रिटिश लोग आये तो शिक्षा के क्षेत्र में उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय बच्चों को ब्रिटिश व्यवस्था के अनुरूप बनाना था। अध्यापक शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था इंग्लैण्ड के लोगों के द्वारा शुरू की गयी।

सर्वप्रथम डैनिस मिशनरीज ने एक औपचारिक प्रशिक्षण केन्द्र शेरामपुर (पश्चिम बंगाल) में स्थापित किया। ये मिशनरीज व्यक्तिगत संस्थायें थी। भारत में अध्यापकों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में यह पहला कदम था।

- इस प्रकार की तीन (व्यक्तिगत) संस्थाओं के खुलने पर इनको नॉर्मल विद्यालय कहा गया जो कि शिक्षक प्रशिक्षण के लिए खोले गये। इनमें से मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में एक-एक संस्थायें खोली गयी।
- इन संस्थाओं के आरम्भ होने के बाद सरकार ने इनमें भाग लिया और इनकी आवश्यकता महसूस की गयी। यह इसी समय से प्रकाश में आये और इस प्रकार के साधारण स्कूल

(Normal School) पूना, सूरत और कलकत्ता में खोले गये। तत्पश्चात् अध्यापकों की अधिक आवश्यकता महसूस की गयी और प्राइमरी स्कूलों की संख्या में वृद्धि हुई। सन् 1828 में इन संस्थाओं की संख्या बढ़कर 26 पहुँच गयी। एलफिन स्टोन ने शिक्षक प्रशिक्षण के लिए व्यवस्थायें की।

अध्यापक शिक्षा को तीन स्तरों में बाँट सकते हैं–

1. मोनीटोरियल प्रणाली (1800–1880)
2. अध्यापक प्रशिक्षण (1882–1947)
3. अध्यापक शिक्षा (1947 से अब तक)

1. मोनीटोरियल व्यवस्था–इस काल में विद्यार्थियों को केवल पढ़ाया गया और अनुशासन पर जोर दिया गया। वे इस काल में अध्यापकों द्वारा निर्देशित किया गया। **डॉ. एन्ड्रूज बैल ने (1787)** में मद्रास में प्राइमरी स्तर पर इस व्यवस्था को स्थापित किया। इन्हीं स्थानों पर अप्रेन्टीशिप व्यवस्था भी स्थापित की गयी। यह व्यवस्था स्कूलों में भी की गयी। इसका मुख्यतः प्रयोग कक्षा अनुशासन को बनाये रखने के लिये किया गया।

लैनकास्ट्रीयन व्यवस्था को (1819) में अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिए बंगाल के **'कलकत्ता स्कूल समाज'** में आरम्भ किया गया, थामस मुनरो ने सर्वप्रथम 1826 में शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में योजनाबद्ध प्रयास किया। **1875 में उत्तर प्रदेश** (आगरा, मेरठ, बनारस, और इलाहाबाद) में कुछ स्कूलों को स्थापित किया गया, **1954 में** अध्यापक प्रशिक्षण के विस्तार के लिए बुद्ध की संस्तुतियाँ भी प्रस्तावित की गयी। मद्रास और लाहौर में माध्यमिक स्तर के लिए दो प्रशिक्षण कॉलेज थे। स्नातक तथा अस्नातक छात्र इन प्रशिक्षण कॉलेजों में नामांकित किये गये।

2. अध्यापक प्रशिक्षण (Teacher's Training)–हर्टाग कमीशन ने प्राथमिक शिक्षा में सुधार तथा शिक्षकों के लिय प्रशिक्षण विद्यालयों

की व्यवस्था पर बल दिया,

19वीं शताब्दी के अन्त तक देश में 6 प्रशिक्षण विद्यालय माध्यमिक अध्यापकों के लिये कार्यरत थे, ये मद्रास, लाहौर, राजसुन्दरी, करसोमा, जबलपुर और इलाहाबाद में थे।

विश्वविद्यालय एक्ट ने माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षण विद्यालयों के लिये संस्तुतियाँ दी। 1912 में सरकार ने संस्तुति दी कि–

"आधुनिक प्रशिक्षण व्यवस्था में, किसी भी शिक्षक को उचित योग्यता प्रमाण की व्यवस्था पर बल दिया, जो कि प्रशिक्षण विद्यालयों की समस्याओं की खोज करेंगे। इसके परिणामस्वरूप (1921) तक 13 शिक्षा विभागों की स्थापना की गयी।

हर्टांगकमेटी (1929) ने प्राइमरी शिक्षा के केन्द्रों के लिये संस्तुतियाँ दी–

1. प्राइमरी शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाना।
2. अच्छे और प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति हों।
3. प्राइमरी शिक्षा की समस्याओं की खोज की जाये।

वुड डिस्पैच (1854) ने अध्यापक प्रशिक्षण की अवस्था को तुलनात्मक अध्ययन पर अपने विचार दिये, अनुदान देने के लिए एक नये सिद्धान्त को जन्म दिया। अनुदान देने का आधार किसी स्कूल में प्रशिक्षित शिक्षकों की मात्रा को माना गया।

इसके परिणामस्वरूप (1881–1882) में देश में 106 नॉर्मल स्कूल खोले गये और लगभग 40,000 छात्राध्यापकों को इन स्कूलों में प्रशिक्षण दिया गया। ये सभी संस्थायें केवल प्राइमरी अध्यापकों को तैयार करती थीं।

– सन् 1856 में मद्रास में प्रथम माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल स्थापित हुआ जो कि राजकीय नॉर्मल स्कूल कहलाया।

इसमें प्राइमरी तथा माध्यमिक दोनों ही स्तरों के अध्यापकों को प्रशिक्षित किया गया।

– सन् 1880 में लाहौर में इसी के समान माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक संस्थान शुरू हुआ।

– **सन् 1882** में भारतीय शिक्षा की अनियमितताओं की जाँच के लिये भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

1. आयोग ने सुझाव दिया कि प्रशिक्षण संस्थायें भी विस्तृत की जानी चाहिये।

2. शिक्षक प्रशिक्षण की गुणात्मकता को बढ़ाने के लिए कमीशन ने एक परीक्षा कार्यान्वित करने की सलाह दी। जिसमें सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक परीक्षा हो। इसमें उत्तीर्ण होने वाले ही शिक्षकों के लिये योग्य होने चाहिये।

3. स्नातक के लिये अलग प्रशिक्षण स्कूलों की व्यवस्था होनी चाहिये और अस्नातक के लिए स्कूलों की अलग व्यवस्था होनी चाहिये।

– **1912** में सैडलर आयोग को "कलकत्ता विश्वविद्यालय" के सुधार के लिये संस्तुतियों के लिये नियुक्त किया गया। इस आयोग ने संस्तुतियाँ दीं–

1. प्रत्येक विश्वविद्यालय में शिक्षा के एक विभाग की स्थापना हो।

2. शिक्षा को इण्टरमीडिएट स्तर पर एक विषय के रूप में पढ़ाया जाना चाहिये।

3. स्नातक अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण कॉलेजों की संख्या में वृद्धि की गई।

भारत में **1937** में एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन ने स्थान लिया, गाँधी जी ने विचार किया कि पूर्ण स्वतन्त्रता का महत्त्व महसूस नहीं किया जा सकता, जब तक कि व्यक्ति शिक्षित न हों। उन्होंने बेसिक शिक्षा के विचारों का प्रतिपादन किया जो कि आत्मबल प्रदान करने वाला और सस्ता था।

सार्जेन्ट कमीशन (1944) में फिर जॉन सार्जेन्ट का सूत्र **''शिक्षा व्यवस्था में सुधार की योजना''** को माना गया। अध्यापक शिक्षा पर चार-पाँच संस्तुतियाँ दीं–

1. स्नातक अध्यापकों को प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिये।
2. विद्यालय शिक्षा की गुणात्मकता में सुधार होना चाहिये, शिक्षक प्रशिक्षण में भी सुधार होना चाहिये।
3. कमीशन ने प्राइमरी स्कूलों के लिये अध्यापक तैयार करने वाले प्रशिक्षण, प्रशिक्षित अध्यापकों के प्रशिक्षण, तथा जूनियर प्रशिक्षण विद्यालय खोले जायें।
4. इस योजना में अध्यापकों के लिये रिफ्रैसर्स कोर्स (पुनश्चर्या पाठ्यक्रम) की महत्ता पर बल दिया।

भारत की स्वतन्त्रता पश्चात् अध्यापक-शिक्षा का विकास–

स्वतन्त्रता के पश्चात् अध्यापक शिक्षा नामक एक नया प्रत्यय विकसित हुआ, इसमें बल दिया गया कि अध्यापकों को केवल प्रशिक्षित ही नहीं वरन् शिक्षित भी होनाा चाहिए। दूसरे शब्दों में अध्यापक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अधिक मजबूत और व्यापक विचार उभरकर सामने आये, इसी समय शैक्षिक समस्याओं को दूर करने के लिये एक आयोग का गठन हुआ।

राधाकृष्णन आयोग–सन् 1948 में भारत सरकार ने सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन, एक महान् शिक्षाविद् की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट 1949

में दी तथा अध्यापक प्रशिक्षण के बारे में भी कुछ संस्तुतियाँ दी गईं। कमेटी ने अध्यापक शिक्षा पर पुनर्विचार किया एवं यह पाया गया कि अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक और मात्रात्मक सुधार की आवश्यकता है।

1. अध्यापक प्रशिक्षण कॉलेजों को पुनर्प्रारूपित करना चाहिये। सैद्धान्तिक शिक्षण की तुलना में प्रयोगात्मक परीक्षा को और शिक्षण अभ्यास को अधिक समय दिया जाना चाहिए। शिक्षण कौशलों के अधिक विकास पर बल दिया।
2. प्रशिक्षण कॉलेजों में उन अध्यापकों को नियुक्त करना चाहिये, जो अध्यापन में अनुभवी हों।
3. सैद्धान्तिक पाठ्यक्रमों को लचीला और व्यावहारिक, आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को स्वीकार करने वाला होना चाहिये।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952)–भारत सरकार ने डॉ. ए. एल. मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग नियुक्त किया। इस कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया कि अध्यापक, शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के सुधार की कुंजी है। इसलिए शिक्षक प्रशिक्षण का सुधार बहुत मुख्य है। कमीशन ने मजबूती से प्रशिक्षण कॉलेज में कार्यदशाओं के सुधार की संस्तुति की और अध्यापकों के सामाजिक स्तर को उठाने की कोशिश की। बहुद्देश्यीय स्कूलों की आधारभूत और लगातार होने वाली कमी, शिक्षितों की कमी और प्रशिक्षित और योग्य अध्यापकों की कमी को जो कि इस आयोग की मुख्य संस्तुतियाँ थी। अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम की योजना की आवश्यकता थी। इस लक्ष्य को विचारों से लेकर **NCERT** के तहत शिक्षा के क्षेत्रीय कॉलेज देश के 4 क्षेत्रों में 1963 में स्थापित किये गये।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66)–डॉ.डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने साफ-साफ व्यावसायिक शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था की कमियों को दिखाया। इस आयोग ने देश में शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिये विभिन्न संस्तुतियाँ दीं। इस मूल्यांकन के

परिणामस्वरूप इन्होंने कहा–

(i) अध्यापक शिक्षा का स्तर नीचा और मध्यम है।

(ii) अध्यापक–शिक्षा शैक्षिक जीवन की मुख्य धारा से अलग थी।

(iii) आयोग ने यह भी ध्यान दिया कि प्रशिक्षण कॉलेजों में दक्ष स्टाफ नहीं था।

(iv) अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में यथार्थवाद की व्यापकता की कमी है।

अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम की इन कमियों को दिखाते हुए आयोग ने बहुत सी संस्तुतियाँ दी जो कि पाँच भागों में बाँटी जा सकती है–

1. अध्यापक प्रशिक्षण से प्रशिक्षण जीवन के अलगाव को हटाया जाये।

2. अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम की गुणात्मकता में सुधार हो।

3. अध्यापक प्रशिक्षण की सुविधाओं को बढ़ाया जाये।

4. सभी अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा को लगातार बनाये रखने के लिये सही तरीके से बनाये जाने चाहिये।

5. केन्द्र और प्रान्तों में स्तर बनाये रखने तथा (व्यवस्था) के लिये भी उचित प्रकार के साधनों की नियुक्ति होनी चाहिये।

अब तक उच्च स्तर से सम्बन्धित कार्यक्रमों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इन विकासशील प्रयासों के परिणामस्वरूप 1966 में 29 संस्थान एम.एड. तथा पी.एच.डी. के कोर्स के लिए थे, सितम्बर 1961 में NCERT बनी। इसके परिणामस्वरूप अध्यापक–शिक्षा का कार्यक्रम अधिक प्रभावकारी हुआ। NCERT तथा NCTE के अध्यापक शिक्षा विभाग द्वारा अध्यापक–शिक्षा में सुधार के लिये बहुत से नये कार्यक्रम दिये गये।

अध्यापक शिक्षा हेतु **राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)** ने संस्तुति दी कि एलीमेन्ट्रीय विद्यालय टीचर्स अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा में लगे व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए **D.I.E.T.** स्थापित किये जायेंगे। इनकी स्थापना होते ही स्तरहीन संस्थाओं को समाप्त कर दिया जायेगा। चुने हुई अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की उन्नति S.C.E.R.T के रूप में किया जायेगा। NCERT के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों को सक्षम बनाने, पाठ्यक्रम तथा विधियों के निर्माण हेतु मार्गदर्शन देने के लिए वांछित संसाधन प्रदान किये जायेंगे। अध्यापक शिक्षा संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों में पारस्परिक सम्बन्धों का प्रारूप विकसित किया जायेगा।

वर्तमान प्रवृत्तियाँ—अध्यापक शिक्षा जैसा कि हमारे देश में उपस्थित है प्रशिक्षण के बहुत से तरीके रखती है। सब प्रदेशों में हाईस्कूल स्तर के लिए हम अध्यापकों का प्रशिक्षण रखते हैं। संस्थानों में से कुछ सरकार अपने आप चलाती हैं। कुछ विभागों का सम्बन्ध विश्वविद्यालयों से भी है। सम्बद्ध कॉलेजों में भी हम बी.एड. विभाग रखते हैं और विश्वविद्यालय की अपेक्षाकृत इन कॉलेजों में 10 गुना अधिक अध्यापक प्रशिक्षित किये जाते हैं। कुछ ऐसे प्रशिक्षण कॉलेज भी हैं जो विशेष रूप से सरकार स्वयं ही चलाती है। लेकिन सभी क्षेत्रीय कॉलेजों में अधिक कार्य किया जाता है वे NCERT द्वारा चलाये जाते हैं अजमेर, मैसूर, भुवनेश्वर, भोपाल।

यहाँ तक कि प्राथमिक विद्यालयों के प्राथमिक अध्यापकों पूर्व प्राथमिक स्तर के लिये अध्यापकों का प्रशिक्षण और विशिष्ट विद्यार्थियों के लिये जैसे कि विकलांग बच्चों और मानसिक रूप से अव्यवस्थित बच्चों के लिये क्षेत्रीय कॉलेजों ने कार्यक्रम शुरू किये।

अध्यापक शिक्षा का वर्तमान स्तर प्रशिक्षित अध्यापकों को बहुत अधिक उत्पादन होना है अब देश प्राथमिक शिक्षा के बड़े पैमाने के विस्तार की माप पर है। उच्च माध्यमिक स्तर अन्त पर विद्यालयी शिक्षा में मूलभूत स्थानान्तरण है। इस प्रकार के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए यह हमसे सम्बन्धित होना चाहिये। विभिन्न स्तरों पर अध्यापक-शिक्षा के गुणात्मकता के सुधार के लिये गम्भीर प्रयास किये

अध्यापक शिक्षा में ई-अधिगम

–प्रतिभा शुक्ला
एम. एड. छात्रा

भूमिका

शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में आज नवाचार का व्यापक प्रयोग हो रहा है और अध्यापक शिक्षा भी इससे अलग नहीं रह पायी है। विद्यालयीय स्तर पर अनेकानेक नवाचारिक पद्धतियों का समावेश नवीन अनुसन्धानों के परिणाम स्वरूप ज्यों-ज्यों होता जा रहा है त्यों-त्यों अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका अनुप्रयोग देखा जा रहा है। ताकि अध्यापक-अधिगमकर्ता के रूप में पीढ़ी अन्तराल न दे। इस हेतु न केवल सेवापूर्व-कालीन बल्कि सेवारत अध्यापक-शिक्षा तथा दिशा निर्देशन के क्षेत्र में नितनवीन तकनीकियों का प्रयोग किया जा रहा है।

अध्यापक-शिक्षा एवं प्रशिक्षण तकनीकी के विषय में दो पक्षों को सम्मिलित किया गया है–

1. अध्यापक शिक्षा

इसमें सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, भावात्मक तीनों पक्षों पर बल दिया जाता है। इसका क्षेत्र व्यापक है।

2. अध्यापक प्रशिक्षण तकनीकी

इसमें व्यवहारिक पक्ष को अधिक प्राथमिकता दी जाती है अध्यापक शिक्षा और अध्यापक प्रशिक्षण की कार्यशाला तथा प्रयोगशाला विद्यालयों की कक्षाएँ ही है विद्यालय की कक्षाओं में छात्राध्यापकों को शिक्षण का

अभ्यास और प्रशिक्षण का अवसर प्रदान किया जाता है। कोठारी आयोग ने कक्षा शिक्षण को राष्ट्रीय विकास का मुख्य साधन बताया है–भारत के भाग्य का निर्माण विद्यालय की कक्षाओं में हो रहा है। (Destiny of India is being shaped in her classroom.) भारत में अध्यापक शिक्षा की पाठ्यवस्तु में शिक्षण तकनीकी को 1970 के दशक में शिक्षा में सम्मिलित किया गया। इससे पूर्व शिक्षण कला को पढ़ाया जाता था। शिक्षण प्रक्रिया में, मशीनों, माध्यमों, साफ्टवेयर, हार्डवेयर तथा प्रणाली विश्लेषण को महत्त्व दिया।

अध्यापक शिक्षा में ई-अधिगम

अध्यापक शिक्षा में ई–अधिगम का तात्पर्य केवल उपकरणीय या मशीनी शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण से न होकर, कक्षा शिक्षण की अन्य विधियों एवं कौशलों का उपयोग करते हुए छात्राध्यापकों को मशीनी उपकरणों की सहायता से शिक्षण व्यवहार में अत्यधिक कुशल और निपुण बनाने से है। इसी संदर्भ में कम्प्यूटर–अधिगम अध्यापक शिक्षा का एक नवाचारिक और सरल अधिगम साध्य साधन है। यह एक विशेष इलेक्ट्रानिक उपकरण, इलेक्ट्रानिक आवर्त या सर्किट, संग्रहण क्षेत्र, अभिलेखन, रिकार्डिंग उपकरण, मुद्रण उपकरण आदि अवयव होते हैं।

संगणक के कार्य

संगणक ने अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में निम्न प्रकार से सहायक है–

1. गणितीय संकल्पनाओं को सीखने, सीखाने में सरलता।
2. फाइलिंग, टाइपिंग आदि करने में सक्षम।
3. सूचनाओं का संग्रहण कर पुनः प्राप्ति में सहायक।
4. Internet के माध्यम से सुदूर अन्य देशों की स्थितियों का ज्ञान तथा स्वराष्ट्र से उनकी तुलना करने में सहायक।

5. दृश्य-श्रव्य साधन के रूप में होने के कारण इन्द्रियों को आकृष्ट कर विषय का पूर्णता और सरलता से ज्ञान

कम्प्यूटर की कार्य प्रणाली Input (अदा), Process (क्रिया) और Output (प्रदा) के रूप में होती है।

संगणक आधारित अनुदेशन के गुण

कम्प्यूटर एक दृश्य-श्रव्य साधन होने के कारण अत्यन्त रोचक रहा है। इसके गुणों को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

1. अधिगमकर्ताओं के लिए आवश्यक अधिगम निर्देशों को प्रदान कर अधिगम को सरल बनाना।
2. अधिगमकर्ताओं द्वारा प्रदर्शन व्यवहारों के अभिलेखन के साथ त्रुटि निर्धारण करना पुनः उसका निराकरण कर प्रतिपुष्टि प्रदान करना।
3. संप्रेषणात्मक अन्तराल समस्या का निवारण
4. अधिगमकर्ता की गत्यात्मक्ता, अन्त:क्रियात्मकता एवं क्रियाशीलता को महत्त्व।
5. वैयक्तिक ढंग से अनुदेशन।
6. एक साथ अनेक अधिगमकर्ताओं को सफल अनुदेशन।
7. मन्दगतिक तथा तीव्रगामी दोनों की दृष्टि से उत्तम फलदायक।
8. मनोवैज्ञानिक एवं मनोरंजन ढंग से प्रस्तुतीकरण के कारण अभिप्रेरणात्मक समस्याओं की कमी।
9. तत्काल प्रतिपुष्टि के माध्यम से निरन्तर पुनर्बलन की प्राप्ति।
10. अधिगम व्यवहारों का मूल्यांकन

समस्याएँ

इस प्रणाली के जहाँ अधिगम क्षेत्र में अनेकानेक गुण हैं वहीं इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं–

1. व्यय सापेक्ष होने के कारण भारत जैसे देश में सभी शिक्षा संस्थानों में इसकी उपलब्धता का अभाव।
2. अधिगमकर्ताओं में भाषागत तथा अभिव्यक्ति की क्षमता का अभाव
3. समस्याओं के समाधान में अपूर्ण।
4. भावनात्मक, संवेगात्मक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक विकास का ह्रास।
5. आचार संहिता के नियमों की अपेक्षा।
6. समायोजन क्षमता, व्यवहार कुशलता, सहयोगात्मक तथा मैत्री भावना की कमी।
7. स्वतन्त्र चिन्तन, सृजनात्मकप्रयत्न, तर्क विचार, आलोचनात्मक सजगता आदि दक्षताओं में आपेक्षित गति में कमी।
8. आत्मनिर्भरता एवं नेतृत्वक्षमता में कमी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यवस्था हो या अध्यापक शिक्षा इन सभी में कम्प्यूटर शिक्षण अथवा ई-अधिगम का प्रयोग एक साधन के रूप में होना चाहिए। अधिगम को सरल, स्पष्ट और कम समयातीत बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने में एक और बिन्दु के रूप में इसका प्रयोग होना चाहिए। शिक्षण-अधिगम के अन्य साधनों को साथ में लेकर चलते हुए ई-अधिगम द्वारा अधिगम को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है। इस उद्देश्य के साथ अध्यापक शिक्षा में ई-अधिगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में नवाचार एवं अध्यापक की भूमिका

—रूपम कुमारी एवं सुरेन्द्र नागर

एम. एड. छात्रा, तकनीकी सहायक शिक्षा शास्त्र विभाग

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही अध्यापको का आदर एवं सम्मान रहा है। प्राचीन काल में अध्यापन का कार्य धर्म का पालन एवं मोक्ष की प्राप्ति थी। देश की व्यवस्था भी आध्यात्मिकता पर आधारित थी। प्राचीन काल में शिक्षा के उद्देश्यों की रचना तात्कालीन परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की गई थी, किन्तु आधुनिक काल में शिक्षा के क्षेत्र में नित नये प्रयोग व शोध हो रहे हैं, पाठ्यक्रम का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है एवं इसके उद्देश्य और क्षेत्र भी अलग-अलग है। इन परिस्थितियों में इसकी अति आवश्यकता है कि अध्यापक प्रशिक्षण में आमूल परिवर्तन हो इसे आधुनिक रूप में ढाला जाए, तभी हमारे अध्यापक आधुनिक विद्यालय पाठ्यक्रम के अनुरूप अपनी भूमिका का निर्वाह कर पायेंगे। जरूरत है प्रत्येक स्तर पर उपयुक्त पाठ्यक्रम को पुनर्संगठित तथा उसका नवीनीकरण किया जाए। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में समुचित मार्ग दर्शन और दिशा-निर्देशन प्रदान करने के लिए भारत सरकार की ओर से मई 1973 में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद को गठित करने के लिए प्रयास प्रारम्भ किया, परिणाम स्वरूप 1976 में दिल्ली में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद के एक सम्मेलन में अध्यापक शिक्षा के संबंध में निम्न बिन्दुओं पर विचार किया गया।

* अध्यापक शिक्षा की प्रविधि क्या हो?
* अध्यापक शिक्षा में निरन्तर शिक्षा और अध्यापक शिक्षको की शिक्षा व्यवस्था कैसी हो?

* मूल्यांकन पद्धति क्या हो?
* अध्यापक शिक्षा के सामान्य उद्देश्य क्या होने चांहिये?
* राज्यों की शिक्षा व्यवस्था कैसी होनी चाहिये?
* अनौपचारिक शिक्षा के लिए दिशा-निर्देशन कैसे प्रदान करना उचित होगा?

उपरोक्त बिन्दुओं पर विचारार्थ 1978 में "शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम" एक प्रारूप नामक प्रलेख में वर्तमान आवश्यकताओं तथा वास्तविकताओं पर व्यापक दृष्टि डाली गयी। 1998 में "गुणवत्ता स्तरीय अध्यापक शिक्षा हेतु पाठ्यचर्या प्रारूप" के नाम से अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में एक व्यापक और ठोस पाठ्यक्रम विभिन्न स्तर के लिए प्रस्तावित किया गया।

1993 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद एक्ट के तहत परिषद अध्यापक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्न बिन्दुओं पर विचार करेगी।

* अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में उपयुक्त योजना और कार्यक्रम निर्धारण व संस्तुतियाँ प्राप्त करेगा।
* अध्यापक शिक्षा तथा भारत में इसके विकास को समन्वित और नियन्त्रित करने की दिशा में प्रयास करेगा।

इसी संदर्भ में यह आवश्यक है कि आधुनिक काल में अध्यापक शिक्षण कार्यक्रम पारित करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना उचित होगा-

* शिक्षक सर्वप्रथम मूलभूत परिज्ञान को विकसित किये बिना अपना कक्षा कार्य शुरू नहीं करेगा।
* आरम्भिक शिक्षक में मूलभूत कौशल तथा प्रवृत्तियों का विकास करना।
* अध्यापक की प्रतियोगी भावनाओं का विकास जो कि पाठ्यक्रम के अनुसार व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप है।

* प्रथम संस्कार तथा उनमें इस शिक्षक सेवा के प्रति अपनत्व की भावना विकसित करना।
* मुक्त समाज में सभ्य नागरिक बनने की अभिवृत्तियों का विकास करना।
* कम से कम कुछ शिक्षकों में वैज्ञानिक भावनाओं का विकास किया जाए ताकि शिक्षण में परिक्षण एवं नयापन लाया जा सके।
* आगे वाले शिक्षक में विकास प्रक्रिया को समझाने की क्षमता का विकास करना तथा किसी आयु वर्ग की व्यवहार को समझने में जो कठिनाई आती है, उसको समझना है।

पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर स्तरीय अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य व पाठ्यक्रम–

पूर्व-प्राथमिक स्तर

इस प्रशिक्षण को सी.टी.टी. (बेसिक), जे.टी.सी., जे.बी.टी.सी. अथवा बी.टी.सी. के नाम से जाना जाता है। प्रशिक्षणार्थी के प्रवेश की न्यूनतम योग्यता इण्टरमीडिएट होती है, एवं प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की होती है।

यह माना गया है कि उन अध्यापकों को जिनको प्राथमिक अध्यापक के संस्थापन में शिक्षित किया जाएगा, वे साधारणतयाः 3 वर्ष से लेकर 8 वर्ष तक के बच्चों को पढ़ायेंगे। ये वर्ष मानव जीवन को बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण माने जाते है।

एन.सी.ई.आर.टी. ने इस सम्बन्ध में कदम उठाते हुए निम्न आलेख के अनुसार पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्यापक शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य सुझाए–

- बोध, कौशल, दृष्टिकोण एवं रूचि को विकसित करना, जो कि उसको इस योग्य बना सके कि वह बालक का सम्पूर्ण विकास ठीक से कर सकें।

- ऐसे कौशलों का विकास करना, जो कि बालक के शारीरिक एवं भावात्मक स्वास्थ्य की रक्षा करें अर्थात् बालक को उचित वातावरण प्रदान कर सकें।
- वार्तालाप कौशल को विकसित करना।
- बाल्यावस्था की शिक्षा के सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक ज्ञान को प्राप्त करना।
- परिवर्तित होते हुए समाज में स्कूल एवं अध्यापक के कार्यों को जानना।
- बालक के विकास के आधारभूत सिद्धान्तों का ज्ञान।
- भारत के सन्दर्भ में बालकों की शिक्षा में सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक ज्ञान का प्रयोग करना।
- बालक के घर के वातावरण को जानना तथा घर व स्कूल में सामंजस्य एवं सम्बन्ध स्थापित करना।
- दृश्य-श्रव्य सामग्री का उचित प्रयोग करने के लिए कौशल का विकास करना।

राष्ट्रीय शिक्षक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के अनुरूप इस दो वर्षीय पाठ्यक्रम में 20 प्रतिशत समय सिद्धान्त के लिए तय किया गया, जिसमें उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षक तथा शिक्षा, बाल-विकास और विशिष्ट पाठ्यक्रम को स्थान दिया गया। सामुदायिक कार्य के लिए 20 प्रतिशत समय निर्दिष्ट किया गया, जिसमें कार्यानुभव को (समाज, बाल-विकास, गायन कला आदि के साथ) सम्मिलित किया गया। 60 प्रतिशत समय तीसरे भाग के लिए निर्धारित किया गया, जिसमें शिक्षण विधि, शिक्षण अभ्यास और प्रायोगिक कार्य को स्थान दिया गया। इस प्रकार इस पाठ्यक्रम योजना में सिद्धान्त को कम और विधिगत भाग को अधिक महत्व प्रदान किया गया।

प्राथमिक स्तर

प्राथमिक स्तरीय अध्यापक प्रशिक्षणार्थी की न्यूनतम योग्यता हाई स्कूल होती है। प्रशिक्षण अवधि दो वर्ष की होती है। इन प्रशिक्षणार्थियों को बी.टी.सी. के नाम से जाना जाता है।

इस पाठ्यक्रम के लिए एक अध्यापन सत्र में कम से कम कुल कार्य-दिवसों की संख्या 220 निर्दिष्ट करते हुए 20 दिवस को प्रवेश आदि कार्य के लिए निर्धारित किया गया। शेष 200 दिवसों में से सैद्धान्तिक विषय शिक्षण हेतु 20 प्रतिशत (40 दिवस), शिक्षण विधि, कक्षा शिक्षण, प्रायोगिक कार्य आदि के लिए 60 प्रतिशत (120 दिवस) तथा सामुदायिक सहकार्य आदि के लिए शेष 20 प्रतिशत (40 दिवस) प्रत्येक सत्र के लिए आवश्यक माना गया।

इन संस्थाओं में अध्यापकों में नवाचार लाने के दृष्टिकोण से प्रवेश पाने की न्यूनतम योग्यता स्नातक होनी चाहिए। इनका समय-काल एक वर्ष का होना चाहिये तथा उसकी संरचना निम्न प्रकार से होनी चाहिये–

1. शिक्षा उद्देश्य–इसमें भाषा (मातृ भाषा और अंग्रेजी) प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञान और गणित, बच्चे का मानसिक विकास रखा जाना चाहिये।

2. शिक्षण कौशल–इसके अन्तर्गत शारीरिक शिक्षा, मनोरंजक कार्यकलाप, स्वास्थ्य शिक्षा, कला, संगीत, खेल एवं विशिष्ट विधियाँ आती हैं

3. शिक्षण की प्रकृति–आधुनिक व्यवहार का ज्ञान, विद्यालय के महत्वपूर्ण स्थान का ज्ञान, सामाजिक परिवर्तन के विषय का ज्ञान, प्रजातन्त्रीकरण में विश्वास रखना आदि इसमें रखे जाने चाहिये।

माध्यमिक स्तर–

माध्यमिक स्तर पर अध्यापकीय तैयारी के लिए प्रायः एकवर्षीय बी.एड. या समकक्ष उपाधि को स्थान दिया जाता है। इस उपाधि के लिए निर्दिष्ट पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक भाग में पाँच से छः प्रमुख प्रश्न-पत्र

रखे जाते है। एन.सी.टी.ई. प्रारूप के अनुसार पाठ्यक्रम में शिक्षा सिद्धान्त, शिक्षा मनोविज्ञान, विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विभिन्न विद्यालेयीय विषयों के लिए शिक्षण विधियाँ, शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ तथा एक वैकल्पिक विषय से सम्बन्धित प्रश्न-पत्रों को स्थान दिया जाता है। इनके अतिरिक्त प्रायः 30 से लेकर 60 शिक्षण पाठों का अभ्यास भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं का शिक्षण अभ्यास के दौरान या इर्न्टनशिप या ब्लॉक टीचिंग के द्वारा करना होता है। 20 प्रतिशत समय को सैद्धान्तिक पक्ष के लिए तथा 20 प्रतिशत सामुदायिक एवं अन्य व्यावहारिक कार्यों के लिए निर्धारित करते हुए शेष 60 प्रतिशत सामुदायिक एवं अन्य व्यावहारिक कार्यों के लिए निर्धारित करते हुए शेष 60 प्रतिशत समयावधि को विषय वस्तु-केन्द्रित शिक्षण विधि के साथ कक्षा शिक्षण और सम्बन्धित प्रायोगिक कार्य आदि के लिए आबंटित किया गया है। वास्तविक स्थिति में इसके विपरीत प्रायः सैद्धान्तिक पक्ष के लिए ही अधिकांश समय का उपयोग किया जाता है और शेष 30 से 40 प्रतिशत समयावधि में अन्य सभी कार्य किसी तरह से सम्पूर्ण करने के लिए प्रयत्न किये जाते है।

माध्यमिक अवस्था के लिए अध्यापक शिक्षा की संरचना निम्न प्रकार करने से नवाचार की दिशा में एक कदम माना जा सकता है।

1. शिक्षण कौशल-

1. प्रशिक्षण की विधि, एक विषय में विशिष्टीकरण
2. सूक्ष्म-शिक्षण
3. स्वास्थ का ज्ञान, शारीरिक शिक्षा, खेल, मनोरंजक क्रियायें एवं कार्य अनुभव
4. मानव व्यवहार का ज्ञान।

2. शिक्षण उद्देश्य-

शिक्षण तकनीकी (भारतीय एवं व्यावहारिक रूप में) इसमें शिक्षक की प्रभावोत्पादकता, प्रशिक्षण एवं अधिगम के सिद्धान्त होने चाहिये।

इसके साथ-साथ वैकल्पिक पाठ्यक्रम की भी व्यवस्था करनी चाहिये, उसमें निम्नलिखित में से एक होना अनिवार्य है-

1. मापन एवं मूल्यांकन के सिद्धान्त
2. निर्देशन
3. क्रियात्मक अनुसंधान
4. शैक्षिक दर्शन
5. शैक्षिक मनोविज्ञान।

उच्चतर माध्यमिक स्तर-

इस स्तर के अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में अधिगमकर्त्ताओं की विशेषताओं को ध्यान में रखने की जरूरत पर परिषद् ने बल दिया। उनके परिपक्वता स्तर, अमूर्त चिन्तन और तर्क क्षमता, आत्म-चेतना और उद्देश्य केन्द्रीकरण, यौन चेतना, वैयक्तिक चयन एवं आदर्श, साथी समूह प्रभाव, सन्दर्भ बिन्दु में परिवर्तन, नैतिक तर्क और चुनौतीपूर्ण अभिवृत्ति, अहंबोध, आत्मरक्षण और प्रदर्शन जैसे कई व्यक्तित्व सम्बन्धी और शिक्षण-सामाजिक कारकों पर विचार करते हुए निम्न परिषद् के द्वारा किया गया। इस स्तर पर अध्यापक शिक्षा के माध्यम से भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं को विशिष्टीकृत ज्ञान और शिक्षण प्रविधि जो उच्च शिक्षा हेतु उपयुक्त हो, को ग्रहण एवं सम्प्राप्त करने के लिए सक्षम बनाना प्रमुख लक्ष्य मानते हुए उन्हें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही क्षेत्र के आधुनिक सूचना और ज्ञान तथा अवबोध से युक्त करने के लिए प्रयास करना अपेक्षित माना गया।

बी.एड. पाठ्यक्रम-

विद्यालयों में शिक्षण अभ्यास के साथ ही विद्यालय में प्रशिक्षु अध्यापक/अध्यापिकाओं को नियमित रूप से शिक्षण हेतु (इण्टर्नशिप के माध्यम से) प्रयास करने पर भी ध्यान दिया गया जब वे उपस्थिति दर्ज करने, अध्यापकीय सभा में प्रतिभागिता करने, लिखित कार्य करने

जैसे–सूचना लेखन, परीक्षा प्रश्न-पत्र निर्माण, अभिभावकों को पत्र लेखन, विद्यालयीय अभिलेख रख रखाव आदि और उसके बारे में एक प्रतिवेदन (विद्यालय अनुभव सम्बन्धी) तैयार करने के लिए प्रयास करेंगे। प्रयोगाधारित दत्तकार्यों को भी वे इस अवसर पर पूरा करने के लिए प्रयास करेंगे।

आन्तरिक मूल्यांकन के लिए एक सिद्धान्ताधारित और एक अनुप्रयोगात्मक दत्तकार्य दिये जाने पर बल दिया गया। अभिलेख निर्माण में छात्र–उपलब्धि अभिलेख, विद्यालय अध्ययन अभिलेख, व्यक्ति अध्ययन अभिलेख श्रव्य–दृश्य अभिलेख, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य/कार्यानुभव, शैक्षिक मनोविज्ञान के तीन प्रयोग आदि को स्थान दिया गया।

अध्यापक की भूमिका–

एक सफल अध्यापक वह है, जो शिक्षा और अध्यापन की योजना, निर्देशन और मूल्यांकन का दायित्व पूरा करता है। वह संस्कृति और नागरिकता प्राप्त ऐसा व्यक्ति है, जो यह विश्वास करता है कि उसका कार्य राष्ट्र और समुदाय के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण है।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य होना चाहिये कि वह प्रत्येक व्यक्ति में सामान्य शिक्षा एवम् व्यक्तिगत संस्कृति का विकास करें, उसकी शिक्षण की योग्यताओं को विकसित करें तथा उन सिद्धान्तों के प्रति उसे जागरूक बनाये जो स्नेहपूर्ण मानवीय सम्बन्धों के लिए आवश्यक हो तथा जिसमें उत्तरदायित्व की भावना हो और जो शिक्षण के माध्यम से सहयोग दे और समाज के लिये आदर्श बने।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और अध्यापक शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में अध्यापक समुदाय पर पूर्ण आस्था को व्यक्त किया गया और साथ ही उनकी कार्य-दशा और अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता विकास के लिए सुझाव दिये गये।

इस नीति में अध्यापकीय दायित्व को (छात्र, अभिभावक समुदाय और आजीविका के प्रति) स्पष्ट करने पर बल दिया गया। इसमें

अध्यापकीय चयन, कार्य/सेवा दशा में विकास, असन्तोष निवारण, शिक्षा नियोजन और प्रबन्धन में अध्यापकीय सहभागिता निर्णय, अध्यापक समितियों के द्वारा आजीविकागत दृढ़त्व और सम्मान प्रतिष्ठा में वृद्धि के साथ ही अनपेक्षित आचरण पर रोक लगाने का दायित्व, आजीविकागत मर्यादाओं का निर्धारण, स्वायत्तता और नवाचारिक वातावरण एवं अवसर का निर्माण आदि पर विशेष ध्यान दिया गया।

अध्यापक-शिक्षा का व्यापक पाठ्यक्रम, अध्यापक के सर्वांगीण विकास के लिये उन समस्त पाठ्यक्रमों को अपने में समाहित करना चाहिये, जिससे उपरोक्त लक्ष्य की पूर्ति हो। इसके अन्तर्गत उन विभिन्न पाठ्यक्रमों को समान महत्व दिया जाना चाहिये, जो अध्यापक के विभिन्न बोध और कौशलों को विकसित करते है। यदि इसे तीन वर्षीय उपाधि पाठ्यक्रम के लिये बनाया जाता है तो आधा समय अध्यापक के व्यक्तिगत, सामाजिक तथा प्रत्ययी कौशलों के विकास में लगाना चाहिये। यदि स्नातकों के लिये एक वर्षीय पाठ्यक्रम बनाया जाता है जो सम्पूर्ण समय व्यावसायिक दक्षता तथा व्यक्तिगत एवम् सामाजिक कौशलों के विकास में लगाना चाहिये, क्योंकि प्रत्ययी दक्षता के प्रति स्नातक स्तर पर ही पूरा ध्यान दिया जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आदि काल से ही अध्यापकों पर सम्पूर्ण देश का भविष्य निर्भर करता आ रहा है। आधुनिक काल में शिक्षण जगत में काफी बदलाव आया। आज शिक्षा का उद्देश्य व्यावसायिक हो गया है। इस दृष्टिकोण से भी अध्यापक की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है। इस परिप्रेक्ष्य में आध्यापकों में नवाचार का महत्व बहुत बढ़ गया है जब तक अध्यापक में नवाचार नहीं आयेगा, तब तक बच्चों के भीतर नवाचार लाना सम्भव नहीं है जरूरत है कार्यरत अध्यापक, भावी अध्यापक को नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुरूप प्रशिक्षित किया जाये। इस दिशा में सामाजिक स्तर से लेकर राजनैतिक स्तर तक दृढ़ इच्छा शक्ति की जरूरत है और समय की माँग के अनुरूप अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम की समीक्षा की जाये तथा इसमें आवश्यक संशोधन करते हुए नवाचार लाने का सम्पूर्ण प्रयास किया जाये और उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया जाये।

Innovative Pedagogic Approaches in Teacher Education With Special Reference to Cooperative Learning

—Dr. Rachna Verma Mohan
Associate Professor, Dept of Edu. S.L.B.S.R.S Vidyapeetha

Education plays an important role in shaping the destiny of a nation. The success of any educational programme depends on the quality of teachers and quality of teachers in tern depends to a large extent upon the quality of teacher education. Professional preparation of teachers is very important. The crux of the entire process of teacher education lies in its curriculum, design, structure, organization and transaction modes, as well as the extent of its appropriateness. A professional preparation programme such as teacher education has to be sensitive in changing field conditions and be flexible enough to accommodate, absorb, delete or perhaps do all these to some extent, in relation to, changing field needs.

Transaction of Curriculum

The success of teacher education programme depends on the manner in which it is implemented. This can be observed in the modes in which the curriculum is transacted. The mode of training to be adopted for any educational programme has to be determined on the basis of certain criteria. This includes -the purpose or goals of the programme, the characteristics of the students, the nature of the subject matter, the nature of learning activities to be provided, the infrastructural arrangements available and the organization. For transaction

of curriculum of theory component lecture technique is being used frequently. Active participatory group learning and self directed learning techniques are not getting proper attention. During the last century, rapid advances in psychology took the prime position which- dominated the neglect of pedagogy. Theories of learning became the base of teaching and it also influenced the concept of teaching. The teaching can be understood in terns of learing. Thus teaching had been as a mirror image of learning since long. But many times it has been found that learning occurs without anybody teaching. Students learn through observation, experience, maturation and interaction with peers. However class room learning is an outcome of teaching. All teaching does not result in learning and all learning can not be attributed to teacher.

According to N.L. Gage, teaching is any activity on the part of one person intended to facilitate learning on the part of another. This activity generally involves language, rational thinking and intellectual process etc. but it is not always so we often teach by fostering attitude, appreciation and values.

Due to dominance of psychology, from last century, methods of teachings are influenced by behaviouristic,. humanistic and cognitive psychological orientations. The behaviouristic approach to instruction believes in the influence of environment on the learning behaviour of the learner. Skinner has given immense contribution in teaching methods as he stresses on a stimulus response-reinforcement chain as the basis of any kind of learning. The result of this is programmed instruction which is very valuable contribution by him. The humanistic approach to teaching puts stress on the uniqueness of individual learner and the methods of teaching depends on the quality of the interpersonal relationship that exists between the learners and the teacher. But cognitive psychologists differ from these two approaches. They believe that mental processes such as think-

ing, reasoning and problem solving form the basis of teaching methods.

Innovative Pedagogic Approaches

With the introduction of the mass media and other technological gadgets into the teaching-learning process, methods of teaching have been oriented to educational technology. In this context, a look at the major developments in pedagogy identified by Elton (1977) is necessary. These developments are

(i) Mass communication Instruction

(ii) Individualized Instruction

(iii) Group Learning

Mass communication instruction owes itself to the introduction of electronic hardware into the teaching learning process as close-circuit television, online learning etc. The second development individualized instruction is attributed to B.F. Skinner. Computer - Assisted Instruction (CAI), the most recent form of individualized instruction is an extension of programmed instruction and the personalized system of instruction. the third development i.e. group learning methods are oriented to develop more humanistic skills.

Constructivist Approach

It is not identified in terms of teaching. It is about gaining knowledge and learning. According to constructivism learning occurs when a learner actively constructs a knowleclge. In this approach the teacher is a cognitive guide who provides guidance-and modeling on authentic academic tasks to a sense maker i.,e learner. The facilitators role is to create environment which includ fostering the learner's information. An effective learning environment should be.

- Learner centered
- Assessment centered
- Knowledge centered
- Community centered

Concept Mapping

Concept mapping is a technique for representing knowledge in graphs which are networks of concepts. Network consists of nodes (points/vertices) and links (arcs/edges). Nodes represent concepts and links are labeled. Links can be non-uni-or bi directional concepts and links may be categories, they can be simply associative, specifed or divided in categories such as casual or temporal relations. Concept mapping can be done for several purposes, such as

- to generate ideas (brainstorming).
- to design a complex structure (long texts, large websites etc).
- to communicate complex ideas
- to aid learning by explicitly integrating new and old knowledge
- to assess understanding or diagnose misunderstanding

The concept mapping technique was developed by Prof. Joseph D. Novak in Corenell university in the 1960s. His work was based on the theories of David Ausuble who stressed the importance of prior knowledge in being able to learn about new concepts. Novak (1990) concluded that "meaningful learning involves the assimilation of new concept and prepositions into existing cognitive structures".

Concepts usually enclosed in circles or boxes of some type, and relationship between concepts or propositions, indicated by a connecting line befween two concepts, words on

the line specify the relationships between the two concepts.

A characteristic of concept maps is that the concepts are represented in a hierarchical fashion with the most inclusive, most general concepts at the top of the map and the more specific, less general concepts arranged hierarchically below. "Cross Links" is another important characteristic. These are relationship (preposition) between concepts in different domain of the concept map. Cross links help us to see how some domains of knowledge represented on the map are related to each other. A final feature that may be added to concept maps is specific example of events or objects that help to clarify the meaning of a given concept.

Cooperative Learning

In the past two decades considerable attention has been given to cooperative learning strategies as a teaching/learning practice because they not only improve academic outcomes but also contribute to improved group and inter group relations. In this strategy students work together to achieve a particular goal. It is useful for the heterogeneity of student population and uncourageous learning among students with different abilities and socio-cultural variations. Five basic elements are required to facilitate the cooperative learning strategy.

- Positive interdependence
- IndividualAccountability
- Face to Face interaction
- Interpersonal and social skills
- Group processing

It is found that cooperative leaning strategies are effective in increasing academic achievement, student motivation, irrespective of gender and ability level. It also improves self-esteem, communication and social skills, greater success, mastery over subject, retention and transfer of concepts. It can be

used in social studies, literature, science and other curriculum areas. A large amount of context can be covered in less time with greater learning and retention. It encourages students to interact with their peers, gain confidence in their learning process.

Principles of effective participation essential for cooperative learning are:

- Listen to the views of others which itself is a learning process that will develop individuals ideas.
- Share ideas and experiences with others. It helps discussion in the learning area.
- Challenge others' ideas if one disagrees, and must accept his ideas to be challenged by others.
- Relate discussion to learning area.
- Refine through reflection and further, work to improve learning to excellence.

Cooperative learning strategy can be used effectively for moral education. In this type of learning children are presented with situations in which they can practice, challenge and investigate the validity of social skills and develop better understanding of moral values. In a cooperative learning classroom students actively listen to the ideas of one another.

They have right to express themselves, without criticism and interruption and they work themselves towards the consensus of a solution. This helps in internalization of moral values. Children who have the opportunity to work and learn in such settings have been found more aware of their own potential, their limitations and their options. In schools where cooperative learning is practiced there are noticeable improvements in the level and quality of the communication. Cooperative learning strategy was used by me in a class room in a group of 20 students.

Example story of (Kohlberg's Dilemma)

Anand is a fourteen year old boy who wanted to go to picnic trip very much. His Father promised him he could go if he saved up the money for it himself. So Anand saved the money given by his parents and relatives on special occasions and collected Rs. 2500. But just before picnic trip was going to start, his father told him that he had to go to marriage function of his friend's daughter. That friend helped him very much in his bad times. He wanted to give a gift to his friend's daughter and he was short of the money it would cost. So he told, Anand to give him money he had saved. Anand did not want to give up going to picnic trip. So he thinks of refusing to give his father the money.

Level of thinking: Comprehension to Application

Objectives

- Students will be able to understand the concept of morality and other associated terms.
- Students will be able to develop thoughtful insight, reasoning ability for taking right moral decision.
- Students will be able to develop communication skills in a small group.
- Students will be able to work cooperatively and effecively with peers.

Material Required:

Copies of the example story (Kohlberg's dilemma)

Steps:

1. Copies of the example story were given to the students to read.
2. The class was divided into 4 groups

3. The following questions were presented one by one on the board to guide the discussion.

   a) Should Anand refuse to give his father the money? Why or why not?

   b) Does the father have the right to tell Anand to give him the money? Why or why not? ,

   c) Does giving the money have any thing to do with being a good son? Why or why not?

   d) Is the fact that Anand saved the money himself important in this situation? Why or why not?

   e) The father promised Anand he could go to picnic if he saved the money? Is the fact that the father promised the most important thing in this situation? why or why not?

   f) In general, why should a promise kept' Why or why not?

   g) What do you think is the most important thing a father should be concerned about in his relationship to his son?

   h) In general, what should be the authority of a father over his son?

   i) What do you think is the most important thing a Son should be concerned about in his relationship to his father?

   j) In thinking back over the dilenma, what would you say is the most responsible thing for Anand to do in this situation? Why?

4. Students discussed within their group about the solutions of the issues raised in the questions.

5. Highlights of the group discussion on each question were noted and presented before the whole class

6. More discussion and reflection followed more questions were raised : Teacher interfered whenever required and tried to put students on the right track i.e. on decision making process.

7. At last there was consensus about the solution of the dilemma.

Outcomes

Many concepts related to morality, moral dilemma and reasoning behind the moral judgement were clear and students reached on right decision in that situation.

After applying this strategy it was concluded that the processing of these skills and the provision of feedback around issues, engages the children in metacognition - or their thinking about their own thinking - that moves them from knowledge to that of thoughtful insight, perception, and enables them to develop skills in articulating and living what they know.

Reference

1. Approach Paper for Secondary Teacher Education Curriculum Renewal (2003), NCTE, New Delhi.
2. Conceptual Inputs for Secondary Teacher Education. The Instructional Role (2003), NCTE, New Delhi.
3. File://IF :/kohlberg's dilemas.htm
4. Kohlberg Lawrence (1974) Education, Moral, Development and Faith. Journal of Moral Education. No. 4 (l)
5. Some specific Issues and Concerns of Teacher Education. Discussion Document (2004), NCTE, New Delhi.

Qualitative Improvement of Teacher Education

—Prashant Kumar Nanda
Research Scholar, Dept of Edu. S.L.B.S.R.S Vidyapeetha

The responsibility for the growth and development of the Nation is depend upon the shouldersof teachers. the training of the future generation is undoubtedly in the teacher's hards. It is thertore obvious that if the education of teachers does not improve Qualitatively, the result for the future generations may well prove to be disastrous. when we speak of a Qualitative improvement in the context, we mean an in crease in teacher's ability and a broding of his mental horizon.

What is urgently needed for a Qualitative improvement in teacher's education at every level is REORGANISATION, a reorganisation which must take place in the following Spheres.

1. Reorientation of Subject Knowledge.
2. Vitalising Professional Studies.
3. Improving Methods of Teaching and Evaluation.
4. Improvement of Student-Teaching.
5. Devlopment of Special Programmes and Courses.
6. Revision and Improvement of Curriculum.

Reorientation of Subject Knowledge :

During traning at the primery and secondary level, the trainees should be imparted knowledge of the subject apart from in-

formation upon the modalities of teaching. The Kothari Commission's Caution is that such a programme should be carefully planned. At least 20%. of the entire training time should be given over to a study of the subject itself.

The Kothari Commission (1964 - 66) has given two kinds of suggestion.

(i) At the Primery level, the training Period Should be should two years.

(ii) At the secondry level, where the existing curriculum extends over one year, it should be extended to two years as justice is never done to the Curriculum in short period prescribed at present.

However the biggest obstacle in this context is that this task is not desirable from the economic view point of the practical. Consequently, the Education Commission has most widely suggested that the working days in a year should be increased, from the present 180 or 190 days to at least 230 days. At the secondary level , the cooperation of teachers of the other departments of universities should also be sought.

In this Connection, another suggestion of the commission is the introduction of INTEGRATED CURRICULA. A curriculum combining general as well as vocatinal elements should be evolved. some experiments have been conducted in the U.S.A in this direction. In India, the Education college of the kurukshetra university prepared four year curriculum for post high school studies and five year courses was initiated in the regional college of Eucation. But the departments of Education and universities have, as yet not given recognition to these integrated curriculum.

Vitalising Professional Studies :

Many of the topics forming a part of professional or vocational studies at present lack real utility, and hence they should be

eliminated. Professional studies should consist exclusively of topics which are useful for student - teachers. It has been suggested that the real need is for the synthesizing and harmonising various curricula according to Indian conditions. The commission's view is that these curricula suffer from the following two defects.

(a) In Indian conditions, because of the total absense or a minimum of research, the teacher educators generaly take only of theory, and their elaboration is replete with examples taken from foreign countries.

(b) The absense of atendency to read the best books on the science of education. There is a distinct tendency to read cheap 'GUIDES' or 'NOTES'. Another Major obstacle is the lack of knowledge of a foreign Language.

Improving Methods of Teaching and Evaluation :

The commission has ahreed the following suggestions.

(1) Student teachers should be brought to the required level of maturity through contract, experience, study and debates, for which independent study and the cooperation of student is essential.

(2) Stress should be Laid upon the importance of social values in the development of education.

(3) In the developed countries, methods of teaching are constantly changing and developing. Such tools as radio, television, film strips. programmed instruction, Laboratories etc. have come into common use there. In India, too radio and television have began to broadcast lessons. Besides , an equally necessary improrement is the change in the system of examination. As in schools, so too in training schools, arrangements are made for external examinations. As long as examinations are not modified and improved, teachers will not adopt the

modern methods of evaluation, and hence there will no improvement in the evaluation through examinations at school level. Hence, internal assessment must necessarily be recognised as essential part of evaluation. Training schools should maintain commulative records of the performance of their students, and the trainess must also trained in the proper analysis of such records.

Improvement of Student-Teaching :

The lessons imparted to student teachers for training are not suitably planned, examined examined at all, evaluated. Most of the lessons are not and in a ddition, the period of practical teaching work is almost never more than 2 to 6 weeks.

Devlopment of Special Programmes and Courses :

It is essential for the development of education that new curriculla and course be developped. The Education commission has taken in terms of introducing education as a subject at the graduate and post graduate levels. There should be special courses for principals, and short term courses for those about to assume the change of a principal. At the primery level and secondary levels there should be composite couses. The commission stress that the devising of such programmes should be combined responsibility to the NC and ERT, the dept. of Education, are the National Association of Teachers Education.

Revision and Improvement of Curriculum

There is the need for complete revision and improvement of curriculum. There should be core curriculum and specified cources such as Educational planning are Admini Aration.

The following suggestions are taken from the 21st. Conference of the universal Teachers Council for the imrovement of the teaching professions.

1. Teachers should be given professional Training and the Latest knowledge.
2. Teachers at all levels should be treated as equal.
3. Teacher trainees should be kept in contact with actual conditions.
4. All teachers should be given equal opportunities for developing and improving themselves.
5. union of teachers should be established to safeguard the interests of the teachers.
6. The administration should seek the cooperation of teachers in its work.
7. Educational programmes should be planned properly.

prof yaspal, chairman, committee on Renovation are Rejuvention of higher education . the followings recommene

1. Freedom to the university.
2. Greater rigour and discipline in a cademic pursuits.
3. Autonomy and accountibility.
4. Experimentation and Innovation.
5. Nurturing of Exellence.
6. Modernization of process in Education.

E-learning in Teacher Education

—Vineeta Chabara
—Mr. Anup Baluni
Assistant Prof. A.I.E, Palwal

"There is no going back. The traditional classroom has to be transformed."

—Web based education commission, U.S.A.

"Education has continued to evolve and extend its coverage since the dawn of the history. Every country develops its system of education to express and promote its unique socio-cultural identity and also meet the challenges of time". These words of the national policy on education (NPE) 1986 susequently revised in 1992, give directions to Indian education.

During these years, in large scale changes have taken place on the national and international scenes in social, economic, cultural, scientific and technological spheres as well as in information and communication technologies. These developments have affected education, including teacher education necessitating review and reform of Indian teacher education. The national council for teacher education has to intitate suitable measures to make teacher education at various levels responsive to such developments as well as to quality concerns in future.

Education for teachers not only facilitates improvement of school education by preparing competent, committed and

professionally well qualified teachers who can meet the demand of the system, but also functions as a bridge between schooling and higher education. It has to meet twin demands:-

a) Challenges of the education system including higher education

b) The ever changing demands of the social system.

"In Indian thinking, a human being is a positive asset and a precious national resource, which needs to be cherished, nurtured and developed with tenderness and care, coupled with dynamism". It hardly stressing the stereotyped instructional approaches is not conducive to realize this goal. "India's political and social life is passing through a phase which poses the danger of erosion to long accepted values. To make teachers aware of this menace, teacher education needs to devise new strategies for enabling teachers to address this task. Teachers serve education, which is an effective instrument of man making and producing enlightened citizens. The teachers learn this art through pre-service teacher education program.

Historical Perspective

Teacher education in India has a long history Gurukul centered tradition of the Vedic period was somewhat modified and enriched under the influence of Buddhist vihara-based system. The arrival of the Muslims witnessed the rise of a parallel. Both the tradition and the two traditions thrived side by side till the coming of the British. Both the traditions underwent some modifications during this period.

Indian educational system including that of teacher education saw greater reflection of national aspirations and needs of the people during the post independence period'

The first step was taken by University Education Commission (1948), which was valuable suggestions regarding pre-

service and in-service education of teachers and linking the programme of teacher preparations with the university system. Subsequently, the secondary education commission (1953) appointed to examine the conditions of school education made specific suggestions about the preparation of teacher. Among its chief recommendation were:

a) Two Year training programmes for under graduates'

b) One Year training for graduates

c) Affiliation of graduate training colleges to universities

d) Training for organizing for curricular activities

e) Organization of refresher courses

f) Emphasis on research.

Various committees and commission were formed for making valuable improvement in education like committee on higher education for rural area(1954) and women education (1959), Review committee on education (1960), Education commission (1964), NPE (1968). The statutory NCTE established by an act of parliament in 1993 further came out with curriculum frame work (1998) to provide guidelines on the respect of the content and methodology of teacher education.

New developments in science and technology at national and international levels with far reaching educational and cultural consequences, challenges of post modernity, counter culture' consumerism, value crisis and post industrial society became evident. India could not remain isolated in an interdependent world. Now pressures brought about by liberalization, privatization, globalization, information and communication technology and market forces had to be faced. The nature, objectives, contents and pedagogy of subjects at the school stage were also transformed. Such a demands appropriate changes in teacher education as well. Teachers are now

expected to educate students about 'learning to learn', 'learning to do', 'learning to live together' and 'learning to be'. All these demands fresh look at teacher education.

Emergence of highly advanced communication technology to bring changes in education. The distance education institutions in some developed countries have grown very much dependent on these technological advances. The fundamental premises of distance education is the assumption that it has to provide individuals 'access' should not be inferior in any sense to the learning attained in a traditional institution. Knowledge about recent technological developments will help becoming critically aware of the new opportunities for increasing accessibility to education and maintaining the quality of education. Educators can feel more confident that there are technologies that can help them to improve the quality of education and to increase the accessibility of education to masses.

The quality of education can be maintained by using interest system. The latest knowledge of subject matter can be obtained for classroom teaching. E-learning can be used for best educational material. In our country Indira Gandhi Open University and Indian Institute of Technology (IIT) have introduced internet programme of education.

E-Learning

The "e" stands for electronic and it relates to the use of the Internet to undertake the wide range of activities . E-learning or web-based education is one of the important concepts and opportunities provided by the Internet.

There has been an increasing interest in e-learning in teacher training at universities during the last ten years. With the developing technology, educational methods have differed as well as many other processes. E-learning could shortly be defined as a web-based educational system on platform with

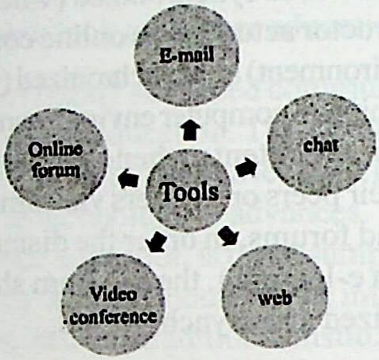
Internet, Intranet or computer access. The concept of e-learning has two main subtitles as synchronized (where a group of students and an instructor actualize an online conference meeting in a computer environment) an asynchronized (where individuals actualize self-training in computer environments). Students have access to the course contents whenever they want and communicate with their peers or teachers via communication tools such as e-mail and forums. In order the distance learning system to succeed in e-learning, the program should be planned as both synchronized and asynchronized.

The distance learning models administered via letters, press, television and CDs have ended up with practical and successful results. As Internet is global, unlimited and open to public, the teaching applications planned for the Internet environment has a potential of moderating the nature of distance learning. It seems that it will be the only distance learning tool of the near future. E-learning, as a new version of distance learning, is applied via the Internet technologies and involves the educational activities, which do not require the presence of the teacher and learner at the same time and place.

The application of e-learning is wide. E-learning applications are being able to educate the learner through technological tools whereas in traditional classroom teaching, the learners have to be together with the educator. Many e-learning applications involve mutual interaction, for example, in virtual classroom applications, students (from different places) could get education together in a virtual classroom. The trainer could ask questions to the classroom and the participants could respond to these questions through their screen. It enables the reviewing and renewing of educational materials in terms of accuracy and appropriateness.

The environment in e-learning is more interactive, learner-centered and teaching and learning is one- to -one.

E-learning Tools



From The Classroom Education To E-Learning

When compared to the classroom education, e-learning offers many advantages to students'

- ✓ Firstly, during the e-learning process, students have the chance to decide how long they want to be educated. All the decisions on issues such as learning speed and the intensity of the topic depends on the student. Student has the right to get in contact in case of any problems.
- ✓ It does not require any expenses such as transportation or accommodation.
- ✓ E-learning process is a student-centered educational system, the learning materials could be organized according to the professional responsibilities and qualifications of the student.
- ✓ An effective e-learning system enables a student to determine and process his/her learning style, content, aim, current knowledge and individual skills.

- ✓ E-learning enables the individual to direct his/her own learning process. So each student takes the responsibility of his/her own learning.
- ✓ In additional, the forums, created within the e-learning system provide students with a discussion environment where problems are solved cooperatively in chat rooms.
- ✓ E-learning provides the duplex interaction to the user.
- ✓ Meet the needs of students who have learning styles conducive to and preferences for learning and interacting in an online environment (Dede 2005)
- ✓ It is highly individualized instructional device. The students having varied type of entering behavior can learn same content through different forms of instructional material.
- ✓ It is used to simulate real life experience in medical science, biological science, languages, business management etc. to enhance the efficiency of students and improve the quality of education.
- ✓ It is repeatable. As many times as you like.

E-learning and its impact on teachers

The networked environment of this new Internet-connected world has expanded the opportunities for teaching and learning in many ways that we are only beginning to understand. They will work in an environment in which they have never been learners and may have had few first-hand experiences. E-teachers will have the opportunity to be pioneers in their own right as they set sail. Impact of e-learning on teachers are :-

- ✓ Give educators opportunities to experience first hand appropriate use of technology in teaching and learn-

ing, and increase their confidence in using these tools in their own practice.

- ✓ Reduce the isolation of teacher educators-especially those in rural areas or teaching specialized subjects-by providing and expanding access to colleagues and experts.
- ✓ Provide diverse learners-both students and educators-with equitable access to high-quality courses, content, learning experiences, and instructors by overcoming barriers of place and time (Linn and Hsi 2000);
- ✓ Engage a greater number of teachers in ongoing, high quality professional development.
- ✓ Provide remote access via computer, and networks to scientific instruments that allows students and teachers to conduct scientific investigations that might otherwise be unavailable to them (NACOL 2008), and
- ✓ Provide future workers with strong skills and fluency in the convergence of media, which are critical to succeed in the 21st-century workplace (BHEF 2005).
- ✓ It not only make education more attractive through rich audio-visual presentations but also increase the level of learning.
- ✓ With the rapid attainment of knowledge and experience, it becomes easy for the working people to keep up with the changing business world.
- ✓ E-learning provides, the learner and chance to decide when to learn as well as how fast and how much to learn; and enables them to contact the teachers via e-mail or forums.
- ✓ Online courses and programs for teacher education and professional development have the ability to provide high quality opportunities for teacher educators to learn content and pedagogy.

- ✓ Teachers, Supervisors, district leaders, and higher education faculty should be educated about of online opportunities, programs, and tools to effectively evaluate their quality and to encourage both pre-service and in-service teachers to better understand the value of e-Learning.
- ✓ Educators should incorporate the effective use of e-Learning tools to promote sharing of information, discourse, critical analysis, and collaboration between students and teachers at various locations throughout the world.
- ✓ School districts and supervisors seek, evatuateate, and provide teachers with high-quality, meaningfue learning experiences employing e-Learning technologies.
- ✓ E-learning provides accurate, up-to date information relating to content and pedagogy.
- ✓ E-Learning gives educators opportunities to reflect on the implications of what they are learning to their own Practice.

Conclusion

E-learning is a powerful tool for the teacher in the instructional process. Teachers need no longer be 'talking books' (delivering lectures). Through this teacher has the chance to use new tools which will enhance his individual satisfaction and increase his efficiency. E-learning offers opportunity to rise educational standards. It provide large range of tools for teaching and learning. It closes the gaps of digital divide.

E-Learning in Teacher Education in India

—Dr. Neeta Verma

I. INTRODUCTION

e-learning is a whole new world for most of us. It is important therefore to think of it as an innovative way of learning with new, and sometimes different, learning skills. If we approach eLearning with a systematic mindset, we can be successful. The key is to begin by identifying the necessary skills, and then to assess our current skill set. Second, know our weaknesses and work on updating those skills. Lastly, to achieve ultimate success, study and adopt the tips from experienced e-Learners and those who have been down the e-Learning journey several times. Success in Learning can add value to our teaching professional development and, best of all; it can offer us a flexible and enjoyable learning experience. There has been an increasing interest in e-learning in teacher training at universities during the last ten years. With the developing technology, educational methods have differed as well as many other processes. Firstly, a definition on e-learning as a new approach should be given. E-learning could shortly be defined as a web-based educational system on platform with Internet, Intranet or computer access. The concept of e-learning has two main subtitles as synchronized (where a group of students and an instructor actualize an online conference meeting in a computer environment) an asynchronized (where individuals actualize self-training in computer environments). Stu-

dents have access to the course contents whenever they want and communicate with their peers or teachers via communication tools such as e-mail and forums. In order the distance learning system to succeed in e-learning, the program should be planned as both synchronized and asynchronized. Recently, in India, number of teachers involved in e-Learning projects at various levels was increased. The teachers are preparing young people to enter in changing world so rapidly, and because the teaching skills required are evolving likewise, no initial course of teacher education can be sufficient to prepare a teacher for a career of 30 or 40 years. Continuous Professional Development is the process by which teachers, like other professionals reflect upon their competences, maintain them up to date, and develop them further.

II. WHY E-LEARNING?

Internet has been widely used for less than ten years; however, it has changed the contents of many concepts in our lives as a modern communication tool. Many common concepts such as government, trade, democracy and learning have gained new meanings by taking the prefix "e" . E- learning or web-based education is one of the important concepts and opportunities provided by the Internet. The concept of distance learning actually emerged much before than the Internet actually, it is said to be as old as education, The distance learning models administered via letters, press, television and CDs have ended up with practical and successful results. As Internet is global, unlimited and open to public, the teaching applications planned for the Internet environment has a potential of moderating the nature of distance learning. It seems that it will be the only distance learning tool of the near future. E-learning, as a new version of distance learning, is applied via the Internet technologies and involves the educational activities, which do not require the presence of the teacher and learner at the same

time and place.

A successful e-Learning strategy relies on the interconnectedness of five main elements - Tools, Training, Processes, Supports, and People - to provide the knowledge, skills, tools, and support required to create an increased number of e-Learning initiatives that meet the high-standards expected by your organization. These elements are the e-learning strategy mantra we should live by. To ensure the success of any e-learning initiative, all of the teachers impacted must be informed and aware, and involved and engaged.

III. AREA OF RESEARCH

Research can be defined to be search for knowledge or y systematic investigation to establish facts. Educational re- rch is research conducted to investigate behavioural pat- s in students, teachers and other educational institutions ough standardized test results. Teacher education refers to policies and procedures designed to equip prospective achers with the knowledge, attitudes, behaviours and skills they require to perform their tasks effectively in the classroom, school and wider community. They were classified in to initial teacher education (a pre-service course before entering the classroom as a fully responsible teacher); induction (the process of providing training and support during the first few years of teaching); and teacher development or continuing professional development (an in-service process for practicing teachers). This study related to collect the third category of College of education teachers. The e-Learning materials as "we are coming to realize that we cannot simply reproduce previous forms of learning, the classroom or the university, embodied in software. Instead, we have to look at the new opportunities for learning afforded by emerging technologies". Education, including work-based learning, is in need of transformations,

requiring renewal and innovative ways of relating appropriately to the way we live, work and learn today. The online collaborative learning environment encouraged higher phases of knowledge construction also found.

IV. SOME KINDS OF E-LEARNING APPLICATIONS

1. E-examination: In this application, students are administered many proof exams in the internet environment before the formal exams, which enables them to determine their approximate levels. These proof exams, which enable the students to determine their approximate readiness levels, are the most facilitated e-learning services.

2. E-Drills: With the Internet-based drill softwares, it is aimed to create an effective and productive studying atmosphere for students. As students access these activities on the Internet, they could study on the units through interactive multimedia softwares and reinforce their knowledge by examining numerous examples. Internet-based drill softwares with animations and intensive student-computer interaction could be in service within this program. Students enrolled in the distance learning system, could study on the softwares with or without sound effects. Therefore, students of the system could study more effectively and productively in the Internet environment.

3. E-Book and E-Television: In order to enable the students to access the books and TV programs on the Internet, the contents of the course books and TV programs could be presented on the Internet as e-books and e-television. Therefore, a student of the system could easily access the course books, TV programs, study through the multimedia research softwares and assess him/herself through the proof tests in an Internet-cafe or at his/her own PC at the office.

4. E-Counselling: The one-to-one academic counselling provided to the students could also be provided in a similar format on the Internet. Parallel to the research softwares, students are allowed to ask questions to their academic counsellors related to their course contents.

5. E-Sound Book: The E-sound book application, which enables especially the visually retarded students to listen to the course book contents, could be provided on the Internet. Therefore, visually retarded students and the students with screen reading difficulties could access their course books from their offices or from an Internet-cafe. They could listen to the contents of the course book by downloading the sound files on their computers. Eight Criteria to be used in the Evaluation of the E-learning Projects.

V. THE ADVANTAGES OF E-LEARNING APPLICATIONS

The application scope of e-learning is rather wide. The important point in e-learning applications is its being able to educate the learner through technological tools whereas in traditional classroom teaching, the learners have to be together with the educator. Many e-learning applications involve mutual interaction; for example, in virtual classroom applications, students (from different places) could get education together in a virtual classroom. The trainer could ask questions to the classroom and the participants could respond to these questions through their screen. It enables the reviewing and renewing of educational materials in terms of accuracy and appropriateness. Technological tools not only make education more attractive through rich audio-visual presentations but also increase the level of learning, With the rapid attainment of knowledge and experience, it becomes easy for the working people to keep up with the changing business world. E-learning applications would contribute to important developments in human

resources, content and technology in India. E-learning provides the learner the chance to decide when to learn as well as how fast and how much to learn; and enables them to contact the teachers via e-mail or forums. Since there is no need to go to a campus, they have no expenses for accommodation or transportation.

Where the mind is without fear and the head is held high; Where knowledge is free; Where the world has not been broken up into fragments by narrow domestic walls; Where words come out from the depth of truth; Where tireless striving stretches its arms towards perfection; Where the clear stream of reason has not lost its way into the dreary desert sand of dead habit; Where the mind is led forward by Thee to ever-widening thought and action - Into that heaven of freedom, my father, let my country awake.

Rabindranath Tagore

References

1. ChanLin, L. J., Huang, R. F., & Chan, K. C. (2003), Web-based instruction in learning nutrition, Journal of Instructional Psychology, Vol. 30, No.1, pp.1,2-21,.
2. Collis, B., & Jung, I.S. (2003), Uses of ICT in teacher education,. In B. Robinson & C.Latchem (Eds.), Teacher education through open and distance learning, London: Routledge Falmer, pp.171'-L92.
3. Nachimuthu, K. (2007), Mobile learning and Distance Education, Journal of Distance Education, University of Jammu, Kashmir, India,2007, Vol. XII, No:1, pp. 33-39.
4. Tamilnadu Teacher Education University (2010), List of educational colleges, Tamilnadu,India from http://www. Tnteu.in / index.asp.

Teacher Education: Problems and Challenges in the Present Scenario

—Dr. Nidhi Kakkar
Assistant Prof., Rohtak, Haryana

Abstract

For Centuries, schools have been structured and perceived as places for teaching. The challenge in 21st century is restructuring schools as learning places- for both students and teachers alike. The other challenge in front of teacher education is changing student populations and their expectations, knowledge explosion and intense demand to build students' 21st century skills. Role of technology and technology-based tools is valuable to reach, teach and support each student's learning needs and potential. The present paper highlights the various problems and challenges before teacher education in the present scenario.

"Teacher education has the honor of being simultaneously the worst problem and the best solution in education."

—Michael Fullan 1993

Introduction

Over the last half a century and particularly in the recent decades' teaching learning has been undergoing drastic changes. There has been a shift toward student centered classrooms with teacher's role more as facilitator of learning rather than an autocratic master. unlike in the past when the teacher was entrusted with transferiing the contents of curriculum to a passive

audience of students, today new experiments , are being tried out in the classroom that includes project based learning, development of thinking skills and discovery learning. approaches.

Education system in india is one of the finest in the world but yet there are certatn impediments that still hinders with its move towards perfection. Teacher Education is one of such field which needs constant attention and improvement.

Teacher Education refers to the policies and procedures designed to equip prospective teachers with the knowledge, attitudes, behaviors and skills they require to perform their tasks effectively in the classroom, school and wider community.

It is divided into stages

- Initial Teacher training/education (a pre-service course before entering the classroom as a fully responsible teacher);
- Induction (the process of providing training and support during the first few years of teaching or the first year in a particular school);
- Teacher Development or Continuing Professional Development (CPD) (an in-service process for practicing teachers).

History of Teacher Education

Teacher education in India has a long past but a short history. Gurukul-centered tradition of the vedic period was somewhat modified and enriched under the influence of Budhistic vihara- based system. This continued till the 11th century AD. The arrival of Muslims witnessed the rise of a parallel Maktab -based tradition and the two traditions thrived side by side till the coming of the British. Both the traditions underwent some modification during this period. Historical

records of the decisions taken, the finances made available and their implementation and later evaluation become relatively more systematically organized because of the documentation by the British.

After Independence, The University Education Commission (1948) made valuable suggestions regarding Pre-service and In-service education of teachers and linking the programme of teacher preparation university system 'Subsequently' the Secondary Education commission (1953) appointed to examine the conditions of school education made specific suggestions about the preparations of teachers. The Review committee on Education (1960) made major recommendations about post-graduate studies in education and research, education of administrators and qualifications of teachers educators. Most of these recommendations were accepted and implemented.

The Education Commission (1964-66) submitted a comprehensive report, which served as a basis for establishing a uniform national structure of education covering all stages and aspects of education. On the whole, it was the first comprehensive and meaningful report on education in general and teacher education in particular. Based on the recommendations of the commission, the National policy of education was formulated. The working of National Council of Educational Research and Training (NCERT) was also reviewed.

The National Council for Teacher Education (NCTE) as a non-statutory body (1973-1993) took several steps as regards quality improvement in teacher education. Its major contribution was to prepare Teacher curiiculum frame work in (1978). Consequently, teacher education curricula witnessed changes in teacher preparation programmes in various universities and boards in the country.

During the last decade, new thrusts have been posed due to rapid changes in educational, political, social and economic contexts at the National and International Levels.

Challenges before Teacher Education

Teacher Education is essentially a context-sensitive activity. It has to respond to various changes in its social, political and economic as well as cultural contexts. Developments in science and technology during the last two decades have transformed human life and world. New technologies related to storage and communications of information have impacted the instructional process, given rise to e-learning. Education that doesn't review and rethink its content and processes soon loses its relevance.

The teachers play a major role in education of children, their own education becomes a matter of vital concern. Education of teachers needs to strengthen and stress upon the main attributes of a profession, such as, the systematic theory, rigorous training over a specified duration, authority, community sanction, ethical code and culture, generating knowledge through research and specialization.

1. **Economic challenges-** The Indian society needs education with special emphasis on science and technology. Vocational inputs and realistic work experiences. Teacher education curriculum therefore has to promote such attitudes as are necessary for the emergence of a new economic order. Along with the vocational competencies and skills a new work culture will have to be created which necessarily involves the inculcation of dignity of work, the spirit of self-reliance and scientific temper among students. The courses of teacher education need to be enriched to enable teachers to understand the attributes of modernity and development.

2. **Social challenges-**The explosion of population with all its allied disturbing trends is not only neutralizing the economic gains but also creating many problems for the country. Indian society still suffers from evils like child labour, child marriage, untouchability, and discriminatory treatment to women, violation of human rights, etc. and most of the people are unaware of their legal rights.

3. Strengthening national and social cohesion in a diverse and plural society, accelerating the process of economic growth, improving the life of the downtrodden and the people living below the poverty line, removing the widely prevalent ignorance, superstition and prejudices from the masses, inculcating scientific temper and developing a critical awareness about the social realities of Indian life are some of the issues which call for immediate attention. Teachers and the teacher educators have a special role to play in such efforts. To make constructive social criticism, teacher educators are now more conscious of its social responsibilities and obligations. Teachers Education curricula help to change in attitude and social commitment of teacher educator.

4. **Challenges of Cultural Reconstruction-** Education is the process of transmission of dynamicand responsive components of cultural heritage and its continues enrichment. There is a need to reinterpret the Indian culture in its distinct identity and composite strength. Its capacity to absorb the sublime form the other cultures needs to be highlighted. TG teachers will have to play their role in cultural transmission and reconstruction.

5. **Challenges of Education System-** The education system has to respond to several major issues and prob-

lems which have hindered the progress in this regard. Maintenance of educational standards against the pressure of increasing enrolment, relevance and quality of school education, efficacy of school functioning under the decentralized role of political power are some of the pertinent issues. In addition, specific requirements and need of social and economical groups of the society and of the minority communities, vocationalizatiron of education, scientific and technological literacy, alienation of youth, rush for urbanization, perceived urban orientation of educational system and its inflexibility to respond to rural, tribal and regional requirements are some of the dominant issues. These would determine the nature and shape of teacher education programmes and the efficacy and functioning of teachers in their new and emerging multifaceted roles.

6. **Two different aspects of Teacher Education-Pre service and In service-** The policy stipulation on inseparability of the pre-service and in-service education of teachers and emphasis on continuing education need to be given pragmatic shape at the implementation stage. The curriculum of Pre-service and in-service teacher has to be redesigned to maintain continuity between the two. If the present rate of explosion of knowledge continues, in a few years the teachers will find themselves in a world where their present knowledge and teaching skills to a extent would become obsolete. They will have to face the challenge of electronic media and information technology.

7. **Political-** Educational institutions and schools are supposed to be the nurseries of democracy. They are the places where democratic values are expected to be practiced. The quality of politics depends on the qual-

ity of the citizens who are expected to perform political obligations and duties and have commitment towards the self, the family, the community, the nation and mankind. It is true that in an ideal situation, the conflict between these obligations and commitments may not arise. But such conditions may not always exist and a conflict between them may arise. Under such circumstances, the golden rule for the citizen implies work for the greatest good of the greatest number. It is the duty of teacher education to develop skills related to social and political life and to inculcate necessary democratic values among prospective teachers for this purpose.

8. **Challenges from Science and Technology-** Scientific and technological education, especialiy in the information and communication technology have become necessary if India is to match with the world and make progress in every sphere. Educational programmes for teachers have not made fulI use of these developments. But there is another side of the picture also. Science and Superstition are simultaneously nourishing in Indian society because adequate emphasis is not being laid on the development of scientific attitude and scientific temper of mind. Its application to anachronistic social and cultural contents is not being given due consideration. Teacher education has to take serious note of the situation and evolve effective measures; otherwise the gains achieved so far may be neutralized or even negative. Scientific temper has to be developed and its application for the solution of the problem of life has to be encouraged' It can promote values like impartiality, integrity, intellectual honesty, optimism, fellow- feeling' tolerance and humanitarianism in the society.

Some other problems in the field of Teacher Education-

- **Inefficiency to Extract students Interest** Students are forced to mug up the mandatory subjects and their perspective is made just limited to professions like doctors, engineers, lawyers etc. Indian education is thus expanding in quantity nor quality. The character of Indian education system has restrained and restricted. Indian young right from the school age and continues thatway with college and university stage. In nutshell, the actual talent of the students remains concealed and is never let to ooze out.

- **Multi-regulatory system** Currently the regulatory framework of higher education in India is under multiple statutory bodies. There is lack of co-ordination among these bodies created problems at various stages of regulations such as approval, recognition, affiliation and accreditation.

- **Establishment of various Teacher Education Institutes** Teacher Education Institutions have been proliferating and mushrooming all over India with profit motives until the NCTE came up with and insisted on mandatory norms and standards for these institutions. In spite of it they are running their teacher education shops.

- **Defects in Teacher Education Curriculum** it is mostly a one year course. The syllabus itself is riddled with problems of content irrelevance, poor standards, and absence of focus on essential areas etc. There is no substantial research going on in improving the education or evaluation of the existing programs. As a result of all these, teacher education has become close to farce in the country.

Suggestions to solve these challenges

Increase in the population of school going children,. rising aspirations of the people and their greater desire for more useful knowledge, complete with-explosion of knowledge and techniques for imparting knowledge have emerged as new challenges to teacher education. The possibility of acquiring knowledge from sources other than the teacher books and from outside educational institutions has increased tremendously. The educational system has to respond in full measure to this development.

1. To impart more knowledge within a shorter period entails proper structuring of knowledge and use of new transactional strategies including ICT resources. Students should be encouraged to pursue independent Learning and make use of the skills of 'learning to learn'. In this new paradigm students will approach teachers for getting information about the sources of knowledge rather than knowledge itself.

2. Constant re-education and in-service programmes for teachers and their educators have become the need of the day.

3. Teacher education institutions need to forge stronger links with the system of education and also with the community they serve. In very specific terms these linkages may take the form of

   a) Linkages between TEIs and other university departments

   b) Linkages between sister TEIs'

   c) Linkages with school education system & school clusters.

   d) Linkages with community and its resources.

Community linked teacher education, research and extension Programmes need to be undertaken. Teacher education institutions and teacher may invite the experts from community, if available and educators may be encouraged to participate in the activities of the community and vice-versa.

4. There is need for teachers and educators to understand how curtural traditions and factors outside the school affect pedagogical practices. To ignore these factors can adversely affect educational and learning outcomes. to evolve culture-specific pedagogy to empower the teachers to do so in their specific, context becomes an important function of teacher education'

5. Special attention needs to be paid to inculcating professionalism, its values and skills and to improve teacher's work culture.

6. Teacher education cannot ignore spiritual and emotional aspects of human personality. An integrated human being can be develped only if one's mind body and spirit develop harmoniously. Teacher education curriculum should therefore, cater to integrated development of learner's personality. Taking pride in being part of the nation and enriching national identity should be prized goal of teachers and educators should therefore inculcate these feelings among students ensuring that it does not come in to conflict with love of humanity.

7. Teacher education needs to lay adequate stress on developing life skills and concentrate its efforts on inculcation and restoration of values as its integral component. Teacher education need to make serious effort for achieving these by developing students' multifaceted personalities and inspiring them to achieve higher goals.

Conclusion

The academic isolation of teacher educators coupled with their poor salary and working conditions itserf reflects the negligence in the filed of teacher education. It should not be forgotten that the quality of school teacher on the training he/she receives from the training institution allowing teacher education to not adversely impacts education sector. Hope that the education ministry will start focusing on education where the roots of the education system lie. Improvirg the teacher education would positively impact the education sector as a whole.

References

* CREATE (2011): Teachers and Teaching in India; Create India Policy Brief 5.
* NCERT (2005): National Curriculum Framework for Teacher Education, National Council for Teacher Education, New Delhi.
* Sunnari V. and Rasunen R. (2000): Ethical Challenges for Teacher Education and Teaching;Faculty of Education, University of OULU.
* Context, Concerns and Challenges of Teacher Education: teachersity.orglresource; php.
* Teacher Education - Problems and Challenges. educationkerala.wordpress.aml...l
* Teacher Education: en, Wikipedia. org/wiki/Teacher Education.

Gurukulam Concept-Need of the Hour

—Smt.Padmini Sridhar. P.S.
Research Scholar

Education is the main trunk of the huge tree called the natron, and educationists are its roots. Educationists be it a teacher at the school level, a lecturer at the college level or a professor at the university level, it is the teacher at all levels who plays a very important rore in the process of making a complete man, and a full-fledged nation as a whole. The first and foremost teacher that a child interacts with is the mother.

लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्ता वन्दे गुरुपरम्पराम्॥
गुरुभ्यस्तद्गुरुभ्यश्चच नमो वाकमधीमहे।
वृणीमहे च तत्राद्यौ दम्पती जगतां पती॥

It is the mother who as a teacher guides the child to enter the new world that is full of competition success and failures at all levels. The very first teacher needs to inherit in herself all the necessary basic elements which are required to make her a complete teacher. Every step of a human being is being governed by this first teacher from day one till the end. It is this first teacher who is the creator of teachers at all levels of educational institutions. She understands the true value of education without being conferred a degree and without working as a professional teacher. But let us now move forward by understanding in short the value of education through Gurukulam concet.

Educational values are universal , as accepted today, they are instrumental in this world, which is in the order of freedom, mutual sympathy, mutual self- respect understanding and love for all above all a willingness to share all the comforts available-physical, mental, spiritual or scientific etc. If we want a liberal universal system of education relevant for India of today, then we must first understand our spiritual nation. 'Spiritually" never meant as to run away from actual life into imaginary pleasures of other world" The Vedas, Upanishads and Smritis teach us the true value of education and to quote a few—

- विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।। ईशोवास्योपनिषत्-11
- या विद्या सा विमुक्तये
- ब्रह्मविदाप्नोति परम्-तैत्तरीयोपनिषत्-भृगुवल्ली।
- तमेवं विदित्वाऽतिमृत्युमेति
- न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति। etc..

The educational institutions that have been the backbone of our rich Indian culture are (1) Rishis (Sage or seer), himself as a free thinker with the principle of simple living and divine thinking (2) The Gurukula or Ashram way of learning, the four fold stages of life gradually moving towards the grand goal of perfection. The Vedas too insist the guru as the person capable of transforming the valuable knowledge-

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तं तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् (मुण्डकोपनिषत्-1/1/12-13)

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।। (भगवद्गीता, 4-)

The guru and shishya parampara was so unique and sacred., and the sanctity of the guru was so well respected and maintained and it reminds me to mention here.

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विशावहै।

यस्य देवे यथा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

शीक्षां व्याख्यास्यामः वर्णः स्वरः मात्रा बलं... आचार्यः पूर्वरूपम् अन्तेवास्युत्तररूपं विद्यासन्धिः, प्रवचनँ सन्धानम् इत्यधिविद्यम्- तैत्तिरीयोपनिषत्।।

In the present Indian context, there are so many challenges in front of the nation in the field of education which is creating a barrier in maintaining guru shishya parampara and these problems are ultimately creating a barrier in achieving a new India of rich culture and tradition. To make it precise the challenges are summed up below.

- Political intervention in fostering leadership and learning among the youth
- Stress at all levels of education whether it is a school or a college.
- The curriculum is not need based it is vast and more of theory and less of practical.
- Wide gap between the teacher and student
- Dominance of film industry in all aspects of life.
- Commercialization at all levels.
- Spiritualism not followed at all levels.

Apart from the above mentioned problems there are a few issues that draws our attennon, I would like to present them based on my knowledge and understanding.

- A teacher should be given more training after resuming work as a professional teacher. He/ She should attend more workshops and seminars to understand and re-juvenate in himself/herself the ethics of being a teacher.
- Student teacher relationship has become more like give and take policy- the more interest the teacher shows in teaching the more the child intends to learn.
- The gap between teacher and student has to be changed- teacher should move friendly with the student so that there can be better understanding of the problems that the student faces during their course of study.
- There should be more of discussions and interactions- and students should be given a chance to express their understanding of the subject matter. Classes should not merely be of lecture method but should also be interactive.
- Teaching of moral education should be laid emphasis at all levels.
- Development of the selfless attitude of the guru in teaching and the complete surrender of himself to the guru.

The problems are so many and so on but the end result should be correctly understood. The top guiding motivation of education should be freedom, love for life, lure for perfection. and respect for ecological balances and lastly thirst for knowledge. To describe there are enormous characters and lifestyles required to improve the educational values is the need of the hour.

To regain the lost culture and values and efficient method of knowledge transfer, the adoption of principles of Gurukulam is inevitable and it is indeed the need of the hour.

Quality in Teacher Education

—Rajni Kotnala
Principal, RMS Collage of education, Gurgaon

Introduction

The demand for qualified and quality teachers has been continuously on the increase the world over. There has been an unprecedented expansion of school education especially in the developing countries, which has accentuated such a demand. Quite naturally, the teacher education programmes have acquired renewed significance. It has become imperative that the effort and resources mobilized towards teacher education are etflective and field relevant in particular country contexts.

It is a pertinent expectation that the teacher education programmes reveal/exhibit vibrancy adequate for responding to the emerging paradigms of school education and the teacher roles thereof. It is thus necessary that quality concern is explicit in every aspect of teacher education programmes. This quality concem goes beyond technical accuracy and consistent effort to carry out tasks. It pertains to the concern reflected by those involved about ascertaining the true spirit and purpose of each task on the one hand, and on the other, try to enhance its meaningfulness. If such concern is an integral part of the processes and practices within an institution. students will gain meaningful, holistic experience (NAAC).

Today, the various nations across the globe are networked more closely than ever before. This has had a deep and profound effect upon the functioning of higher education sector and has literally transformed the way we look at all aspects of

quality in higher education, particularly teacher education. The renewed interest in teacher education has been spurred by the free spirit and the new world enterprise, which seeks to create human talent pool that can adapt to new ideas, cultures and environment. The challenges faced by teacher education institutions raise pertinent questions for both the school systems and the governments. While, the school system has to grapple with the problems of teacher quality and the increasing student and societal expectations, governments, are shuggling to provide the teacher education system an environment that fosters innovation and match the requirements of the school sector. This calls for a breakthrough and bold thinking on the part of all the stakeholders.

Present Teacher Education Scenario

The unprecedented expansion of teacher education institutions and programmes during the past few years characterizes the teacher education scenario of today. With increasing school enrolments and the launch of pan-Indian primary education development programmes such as the SSA (2002) to achieve UEE, the operation blackboard (OB) 1986, and the District Primary Education programme (DPEP) 1995, there was an increase in the demand for teachers. Added to this, the backlog of untrained teachers in the system and the essential requirement of pre-service teacher certification for appointment as a teacher led to mounting pressure on existing institutional capacity. With the dema far exceeding supply, market forces have taken over causing unprecedented rise in the number of teacher education institutions in most parts of the country. The escalating demand for trained teachers and the belief that a training certiflcate acts as collateral against future unemployment has made teacher education a lucrative business proposition. It has also led to a large scale mushrooming of teacher education institutions.

The number of courses offered at different stages - pre-primary, elementary and secondary - face-to-face and distance modes of teacher eclucation; programmes of M.Ed, face-to-face and distance modes, C.P.Ed., B.P.Ed. and M.P. Ed. have increased from 3,489 courses in 3,199 institutions in March, 2004to a whopping 14,428 courses in 11,861 institutions in March 2009. The student intake has likewise incredsed from 2,74,072 to 10,96,673 during this period. This expansion has taken a heavy toll on quality parameters of infrastructural provision, faculty qualification, learning resources and student profile.

Till December 2009, as many as 3l Institutes of Advanced Studies in Education (IASEs) and 104 Colleges of Teacher Education (CTEs) were sanctioned and all of these were functional. Of the 599 districts in the country, District Institutes of Education and Training (DlETs) were set up in 571 districts, of which only 529 are functional. Thus, 42 DIETs are yet to become functional.The main problem facing DIETs is non-availability of qualified faculty. Presently, the faculty appointed does not possess qualifications or experience in elementary teacher education. A good number of CTEs face faculty shortage, poor library facilities, spend more time on initial teacher education while research, development and innovative activities are yet to take concrete shape. The same is the case with IASEs. The,capacity of both CTEs and IASEs in performing their mandated roles has more recently come under serious scrutiny. (NCFTE,2009)

The reforms in teacher education are necessary to achieve national goals. For this purpose, education should be developed so as to increase productivity, achieve social and national integration, strengthen democracy, accelerate the process of modernization and cultivate social, moral and spiritual values. The national goals cannot be achieved without educa-

tional development. Teacher education has a significant role to play in maintaining the quality of education. Quality management is not an overnight process and it is not the product of a single-hand.

At present, a wide range of organizations are involved in what is commonly referred to as Total Quality Management (TQM) Implementation, and associated research has primarily been focused in the business community. However, over the past decade, faced with dwindling enrollment and increased competition, the educational community has also started to embrace TQM at differing levels in a wide variety of settings across the nation, ranging from higher research institutions to elementary schools.

Higher education lays significant emphasis on human capital formation. It produces intellectual leaders and path makers. No nation can go high without quality higher education. Basically, primary and secondary levels of education, are concerned with transfer of knowledge from the teacher to the taught. But higher education involves analysis, synthesis and the transformation of information into knowledge, Teachers in higher education are to be involved not only in teaching, but also in making good citizens of the country. Quality in higher education is becoming an important issue for research and discussion, and there is abundance of literature on this issue. With this in mind, the investigator was motivated to select a problem in quality management. Since the concept of total quality management is becoming popular among developing and developed countries in the world today, a study of the application of total quality management in teacher education institutions is appropriate and relevant.

The Gurukula System of education was probably the best example of quality management in education. In the Gurukula (Gurukula means Preceptor"s family) system, students lived with the Guru in his family until the time they completed their

study. The Gurukula tradition of total quality was successfully transferred to the early Indian Universities like Nalanda and Takshasila. The expertise of visionaries also in institutional planning should be a part of planning the academic curriculum. The Concept of Total Quality Management should not be left to the corporate world. It should extend its reach to educational institutions too. Now some computer education institutions have obtained ISO 9001 to assure their clientele (the learners enrolling in their institutions) of quality education. This phenomenon should be extended to schools, colleges and universities. The governing body awarding accreditation should review the status of institutions periodically to ensure quality-learning.

Quality Education in schools and colleges will lead to qualified human resources moving to higher education and in their producing highly qualified manpower for demanding careers (Barnett, 1994). Once appointed in colleges in government scale of pay, there is stagnation in the teachers growth and development. The teaching community should not be come complacent with the belief that experience alone would suffice to carry on their work effectively. Myron Tribus has often said, "Experience alone teaches nothing. If you do not have a theory to provide a framework to understand your experience, you do not accumulate thirty years of experience; you merely repeat one year thirty times" (Myron Tribus 1994 quotes in W.Edwards Deming).

TQM Theory and Principles

Philosophy, Vision, Strategy, Skills, Resources, Rewards and Organisation are the principles of total quality management (Myron Tribus, 1994). Many people have their own definition of quality and restrict the concept of quality to some sectors only. Education is an obligation and quality should extend its reach to the Education Diaspora. The concept of qual-

ity instruction goes above and beyond innovation. It is not that we do not know how to make learning more innovative and joyful. We do. It is that we need to design educational experience that will deliver predictable learning. Success can come from thinking about acting strategically to define, design and deliver quality instruction. Teachers should design Quality Instruction Planning Programme to optimize learning situations. They have define, design and deliver educational experiences in the context of quality provided the instruction is innovative and will be useful for the target learners. The learning experience shculd be rewarding, leading to life-long learning, so that the learners learn where and when to use them effectively to empower themselves (Kaufmanns and Zahn, 1993). When applying TQM principles to learning, care should be taken to give due importance to all the above principles. The omission of any one in this chain renders the theory inoperable since all are interlinked.

Philosopy : Inspiration

The presence of sound philosophy leads to inspiration but in the absence of philosophy, there are no followers. Application of TQM principles to classroom teaching will inspire the learners, which will lead them to adopt a similar methodology in their future assignments.

Vision : Life-Long Learning

A good vision leads to life-long learning while the absence of vision may lead to confusion. This is a long-term benefit that a learner will enjoy. Lifelong learning is an important aspect in one's life. Any course or degree should not be considered an end to learning. The teacher should be a visionary in inculcating a passion for life long learning in the learners.

Strategy : Learning Skills

The presence of a sound strategy leads to developing learning skills; otherwise there will be a problem from the very beginning. To achieve the objectives of learning and to have the desired learning outcomes, it is necessary to devise the learning instruction in such a way that learners learn to learn. Developing learning skills are very important not only to accomplish the immediate course or degree requirement but also to imbibe the quality to learn.

Skills. Holistic Approach

Presence of good skills leads to a holistic approach but in the absence of skills there is anxiety. A holistic approach to learning ensures quality in education and makes learning a pleasure and joy. The attachment to learning should be healthy. It requires dedication and commitment to facilitate self-directed learning.

Resources : Maximum Usage of Available Resources and Facilities

The availability of appropriate resources leads to optimum usage of available resources and facilities. The absence of resources leads to frustration among both learners and teachers. Before going in for procuring new resources and facilities for facilitating the process of innovative teaching and practice, the existing resources should be used in an optimum manner. Instead of wasting precious time, money and energy, a teacher should use the available resources.

Rewards : Desired Learning Outcomes

The presence of suitable rewards leads to desired learning outcomes. In the absence of rewards, there is bitterness. Rewards and recognition for innovative teaching lead to the

desired learning outcomes. The following are some of the rewards that can motivate the teachers

- Completion of units of the course in an innovative way.
- Involvement of all learners in the learning process.
- Recognition from learners, colleagues and the head of the institution.
- Benefit from teamwork and learning the art of working as a team.
- Different lrearning environments resulting in development of leadership qualities.
- Co-operative and collaborative learning.
- Recognition and appreciation of peers.
- Appriciation for the learning experience.

Organization : Cooperation of Support Services

For any innovative experiment to be successful, non-teaching staff of the educational institution the co-operation of both the teaching and the are necessary : In the absence of organization, there is no cooperation of support services which hinders organized iearning.

The Pillars of Quality

Total quality management in any organization is supported by four driving forces, or pillars' that move the organization toward the full application of quality service. The four pillars of the House of Quality are customer service, continuous improvement, managing with facts and respect for people. All are distinct, but equal in potentialstrength. A, four must be addressed, minimizing one weakens the others. By not addressing one, the entire House of Quality will fall.

Serving the Coustomer

College and University enrolments have not diminished substantially over the past three deçades, every coldege and university has a mission, but very few fully identify who they serve. Even fewer acknowledge that they serve customers. while viewing the campus as a customer-driven entity may be anathema to many; one .,uth has been proven repeatedly: customer-driven organization are effective because they focus on a full commitment to satisfying, even anticipating, the needs of the customer, while colleges and universities have been successful, their future success will increasingly be determined by customer satisfaction. Those campuses that are successful will be those that most clearly identify their mission and the customer-driven organizations are successful because they have a unified focus on what they do and who they serve.

Continuous Improvement

Countinuous Improvement is both a commitment and a process. The commitment to quality is initiated with a statement of dedication to a shared mission and vision and the empowerment of all participants to incrementarlly move toward the vision. The process of improvement is accomplished through the initiation of small, short-term projects and tasks throughout the organisation, which collectively are driven by the tnt achievement of the long-term vision and mission. Both are necessary; one cannot be done without the other.

Managing with Facts

This requires a substantial shift in many areas of higher education to a process of carrying out continuous improvement and effective process management through the extensive use of a variety of tools designed to gather and analyze data and make decisions based on facts.

Respect for People

The output of colleges and universities is teaching, service, and research. It also encompasses the quality of life of every one who works in, or is affected by, the college or university. Fortunately, quality of output goes hand-in-hand with quality of work. The only way total quality will be attained is through total commitment and participation.

Qualify Development of Teacher Education

Teacher education comes under higher education. Higher education plays a vital role in human capital formation. Economic development of a country is also correlated with the development of higher education, says the World Bank (1998). In any educational programme, the teacher is the most important element. Adequate number of quality teachers can implement the educational process through which the desired development of the students is achieved. The quality of the teacher, to a large extent, depends on the quality of teacher education received by him/her (NCTE, 1998). The following recommendations are made in order to ensure the quality in teacher education Programme:

1. All teacher education institutions should ensure that quality management is implemented at all levels. These institutions should be subjected to periodical assessment and accreditation from the national assessment bodies like NAAC and ISO:

2. Internal and external periodical assessment cells should be formed to monitor and promote quality in teacher education programmes as per the guidelines of national agencies like National Council for Teacher Education (NCTE), NAAC etc:

3. Establishment of teacher education institutions should be according to the demand and supply policy. Quality

of teacher education should be ensured when there is quantitative expansion:

Teachers' Job satisfaction and Linkage with community

The research in this field suggests. that most of the teachers in Government aided institutions and self financing institutions, though they maintained quality in teaching, do not have job satisfaction. As a result, they do not attempt to contribute more to improving the linkage with community. The following strategies should be worked out to enhance the job satisfaction of the teachers and their linkages with community.

1. The management and the head of the institution should have frequent interaction with the teachers to understand their needs.
2. More opportunities for professional development must be provided.
3. Transparent administration would certainly enhance quality improvement.
4. Teachers are to be given assignments to go with the community to conduct extension service activities such as awareness camps, campaigns, parents meet, and social gatherings. Community participation in institutional activities will strengthen the teachers, linkage with community.

Focus on Leadership Quality of the Principal

The research studies indicate that the principal as a leader is stronger area in all types of institutions such as govemment and government aided and self-financing institutions. The following recommendation can further strengthen this area. The leader of the institution, needs to possess important qualities such as leadership, manager, administrator and researcher.

CONCLUSION

Several research studies conducted in the field of education revealed that total quality management has significant implications in education. Very limited numbers are avilable have been conducted on the application of TQM in teacher education.

Innovations in Pedagogy of Science

—Pooja Chopra
Research Scholar J.M.I University

"The status of the teachers reflects the sociocultural ethos of the society; it is said that no people can rise above the level of teachers", avers the National Policy on Education 1986 (revised in 1992). The Education Commission (1964-66) also rigntly emphasized that ' the destiny of the nation is being shaped in the classrooms'. Such exhortations are an expression of the recognition of the important role played by the teachers as transmitters and as inspirers of man's eternal quest for knowledge, of himself, and of his external environment. It this role expectation is not to remainamere she tosic, but is taken as a goal to be constantly striven for, we have to address ourselves afresh to an examinations of the issues related to the preparation of teachers,pedagogy as well as the theory and practice of teacher education, as has been undertaken in the historical post, as it is operative in the living present and as it is likely to emerge in the developing future.

Pedagogy of Science : Issues and challenges

science education at all levels needs to be strengthened at its weakest points, which, are innumerable. The reason is that we lack a frame of reference for teaching science. In its absence, we need teachers in large numbers who can experiment with students goals; better adaptation of teaching learning to individual needs; encouragement of students towards acceptance of responsibility for learning, increased opportunity for cooperative work by students for their improvement; more emphasis on question

answering and problem solving, greater satisfaction of learning by the students. The quality and quantity of learning at schools will go up if the above mentioned deficient situation is set right, but it will be considered as a utopia in the present scene, a dream which is very hard to achieve in today's scenario. The Science Education in India has failed to achieve its objectives. The following key statements regarding the present day states of affairs in science teaching are applicable to the whole country.

(a) Science teaching has been and is still aral in character with demonstration occassionally thrown in. The element of inuestigation, training in the use and practice of the scientific method and even mastery of the research aperations the discovery approach of learning are conspicious by llceir absence, even at thase places where lab facilities and equipment are generous.

(b) The aims and objectives of science education for the various sciences and at various levels, when spelt out in detail look gsoend on paper. Most of them vaparize during implementation. Our science teacher are not all prepared in their teacher training institutes to achievne these objectives.

(c) Science teaching is based strictly on the prescribed text books. A science teacher follow them slavishly. A science teacher does not know that there is a world beyond textbook.

(d) Methods employed for science teaching are dull. They are just short of chanting 'Om Jai Jagdish'

Both teachers and students worship the 'goddess of examination'. The teaching ability of the paper setters are low. These are the reasons that science teaching is not related to the environment at all. Consequently, Training

in scientific melthod, problem salving, creative thinking and develapment of scientific skills, interests, aptitude, atitudes remain in the utter state of neglect. Looking at the complex scenario of science education in india, three issues stand out clearly.

(i) First, science education is still for from achieving the goal of equity enshrined in our consitution.

(ii) Second Science Education doesnot develop scientific temper and doesnot encourage inventiveness and creativity.

(iii) Third science education fails to achieae its objectives and aims.

Present Concerns in Science Teacher Education :

(i) Teacher Education programmes today train teachers to adjust to a system in which education is seen as the transmission of knowledge. Attemps at curricular reforms have not been adequately supposted by teacher education.

(ii) Teacher training is at most a trading license in the limited stock of knowledge. The result that most of the trainees count their days in the training colleges and are neither serious nor sincere about acquiring teaching-learning skills.

(iii) The educational literature relevant to the process of teaching and learning, including teaching profession, is not only foreign but is also full of high sounding impressive and ground objectines which yield little of practical value when translated into action.

(iv) There is general lack of faith in the training college methods. Neither the administrators nor the teachers are fully convinced about the utitity of the teaching methods

hence, they work half heartedly without any comulative offects at the end. As a matter of fact, schools and colleges appear to be living in two mutuolly exclusive worlds where a permanent bridge of mutual understanding and communication between the two continues to be the top most felt need at the moment.

Innovations in Pedagogy : There is, infact, no specialized approach except reorientation of one's finely established methodology of teaching. First we have to investigate the causal factors which eat into the very vitals of our education we can then undertake a major surgery to set the whole situation right so as to release energies of our science teachers, drow them out of their rats and through proper guidance familiarize them with varied approaches to science teaching and realizing the mental development achievement and ambitions of children, realize in the process the purpose of science education which are so essential to live a full life in today knowledge based society. This we can do by using new and innovative pedagogy following are some of the pedagogic innovations:-

(i) **Focus on Skills to Teach Science :** During traing period, the focus should be on the development of skills. They should be taught how to teach Science. This we can be do by first giving them demonstration lessons. Acquaint them with all methods of teaching science and then demonstrate how to teach with each method.

(ii) **Reduce the gap between theory and proctice :** Donot teach theoretically the concept and methodologies of teaching subjects. A teacher Educator must demonstsate to his students how to use this method / Approach practically. Model lessons using that approach should he demonstrated to student teacher.

(iii) Train pupil teachers to maintain, repair and construct

teaching Aids. Focus should be on the development of skill needed for the development of teaching Aids.

(iv) Teach them how to make teaching Aids like science kits, how to improvise them and use them in classroom situation.

Some of the pedagogic techniques are :

1 Integrating ICT in our pedagagy : we can teach pedagogy of science using ICT. When students themselves experience the things virtually, they understand the concept better and more clearly.

2 Role Play : By using Role Play, pupil teachers are able to understand things effectively and clearly.

3 Games : Teach pupil teachers by using games as Instructional methods.

4 Modelling is one of the best pedagogic technique to inculcate skills among pupil teachers.

5 Discussion :- Organizing discussion meeting among pupil science teachers on various topic.

6 Exposing pupil teachers to higher and higher standards of work. This we can do through educational trips to the schools of excellence where new and innovative pedagogic techniques are used.

7 Strengtheining of extension and research. Motivate students to do action research and read the scientific literature regularly.

8 Stress on creative and productive thinking by giving pupil teachers in exploring the immediate neighbourhood / environment.

9 By creating a stress free environment

10 Using Brainstarming technique.

11 Using Community as a resource. Pupil teachers are encouraged to participate in various affairs of community and from these they learn things.

12 By changing the existing Evaluation practices. These paper pencil test for evaluating the teaching skills of pupil teachers are neither valid nor reliable. More practical work should be given to students.

13 Creating a stress free environment, where creative and divergent thinking of students is encouraged and appreciated.

Conclusion : To revamp the Teacher Education system in our country, a major over houling is needed. We can change teacher Education system by using innovative pedagogies. Instead of focusing on the old and rut lecture, we should use new pedagogies which increases the critical thinking of our pupil teachers, which teach them how to think divergently, which encourages them to think critically and be creative in their approach. These innovative pedagogic techniques reduces the gap between theory and practice and make our pupil teachers competent enough to teach in this knowledge based society where skills are valued and by changing there pedagogical techniques, they can make change and make this world a better place to live in.

References

1. Banks, F (2006) Teaching Technology, London : Routledge.
2. Kalam Abdul, A.P.J & Rajan Y.S (1998), India 2020 – A vision for the New millenium, India : Penguin.
3. NCERT. (2006). Position Paper : National focus group on teaching of science New Delhi : NCERT

Issues And Challenges in Teacher Education in The Knowledge Era*

—Amritbir Kaur

"It is the supreme art of the teacher to awaken joy in creative expression and knowledge."

Albert Einstein

Introduction

Every Tom, Dick and Harry cannot be a teacher. Being a teacher is lot more than just a means of dispensing one's own information and opinions. Teaching is an art of preparing a child for life. It is not just about a child being taught; rather it is arousing in a child the desire to learn. Much in the same vein, the process of preparing teachers is of utmost importance. In giving the skills of teaching in would-be teachers, we are vesting in them the power to control our future. The destiny is in their hands by the way of school students. Kothari Commission (1964-66) rightly mentioned, "The destiny is being shaped in her (India) classrooms."

Knowledge Era - an overview

"Knowledge always desires increase; it is like fire, which first must be kindled by some external agent, but which will afterwards propagate itself."

Samuel Johnson, famous English author and Lexicographer

The present age, often referred to as the knowledge era, has come to be associated with the concept of knowledge explosion. The knowledge culture knows no bounds. There are numerous resources that open the gateways to the wide expanse of unlimited knowledge anything is just a click away. The world seems to have shrunk suddenly. Kaur (2003) writes in the article entitled,Brain Drain: India's Loss is World's Gain': "India is never going to be the same again. The IT industry has been advancing by leaps and bounds." This has brought us to an era, where we not only deal with the population explosion but also have to handle efficiently the knowledge explosion, that is, the sudden multiplication of the existing knowledge:

The Knowledge Culture has undergone a sea change since the past few decades especially with beginning of the twenty first century. Revolutionary changes have been there since the advent of the World Wide Web (WWW) or the Internet. Since then there has been no looking back. To use the most appropriate words, there has been an explosion of knowledge.

Teacher Education - Changing Scenario

In 'The Nurture of the Human Spirit', Oats (1990) states: "I take education to mean the sum of all the forces which nourish the growth of the individual self. Much of what passes for education is better described as training. A child is trained to count, to spell, to read, to use a typewriter or a computer. Education, however, is concerned more with awakening the individual's response, so that each wants to learn and so that each knows what he or she wants to do with skills of reading and computing. Education has suffered from the assumption that its meaning is derived from the Latin verb, educere (to lead out), whereas in fact the root Latin verb was educare, to nourish."

Issues and challenges in teacher education in knowledge era

In the knowledge era, we need to look into the issues that will pose a challenge for the teachers in the making. When we talk of the process of teacher preparation, we must keep in mind that this is the first step towards making the would-be teachers so self-sufficient that they can in future handle all problems and pressures being posed by the era dominated by knowledge.

Knowledge Explosion:

A major challenge faced by teacher education is that of managing knowledge explosion. Steen and Sloep (2005) have based their paper entitled 'Philosophy, Education and the Explosion of Knowledge, on the assertion that the value of theoretical knowledge is limited, especially in view of the rapid increase in the information available. What is required is a high-spirited prompt action to keep pace with the changing scenario. This 'knowledge jump' is not everyone's cup of tea. Students will have to be trained for that. Before that it is the teachers, who need preparation for that. Hence, the teacher education needs to be fully equipped to handle this impending crisis that looms large over our heads. Atkin (1999) rightly says, "As knowledge, knowledge creation and knowledge sharing become the key assets in a knowledge based economy, as advances in information and communications technology enable efficient storage of information and rapid access to abundant information and, as advances in technology are continually changing the nature of human work, lifelong learning becomes the key to individual and collective economic prosperity. The emerging learning culture has a number of features:

- lifelong learning
- learner driven learning
- customised learning

- collaborative learning
- contextual learning
- learning to learn
- transformative learning
- just in time learning"

Nature of Teacher Preparation:

We also have a lot many issues regarding the nature of teacher preparation. Most significantly the curriculum prescribed for the course of teacher preparation needs to be in tune with the times pre-service training enables the entry of a novice into the world of teaching, so special attention needs to be paid. In National curriculum Framework (2009) developed by NCTE in, it was clearly mentioned, "The length of academic preparation, the level and quality of subject matter knowledge, the repertoire of pedagogical skills teachers possess to meet the needs of diverse learning situations, the degree of commitment to the profession, sensitivity to contemporary issues and problems and the level of motivation critically influence the quality of curriculum transaction in classrooms and thereby pupil learning and the larger social transformation." All the mentioned ingredients go into the making of a good recipe of a brilliant teacher. For this the focus of the course of teacher preparation needs to be shifted from a theoretical thrust to a practical one. Even at present we can apparently see that still there is a lot of emphasis on historical and theoretical perspectives. Students lack the skills to practically apply what is learnt in the task of teaching later on. The session of teaching practice given to students during the teacher training courses, still harps on a lot of things that the students cannot apply practically in teaching later on. Moreover, the too less duration of the teaching practice is an area that needs immediate concern.

Standards and Accreditation of Institutes:

Next comes the issue involving standards and accreditation of institutes. The growing demand of education has led to mushrooming of teacher training institutes, all of which do not boast of having all the required facilities. Quality has been sacrificed at the altar of quantity. We need to put brabes on this rapid multiplication of teacher-education institutes.

Expectations from Teachers:

Then there are issues regarding expectations from the teachers. Jacques Barzun writes. "Teaching is not a lost art, but the regard for it is a lost tradition." The expectations from the teachers have taken a giant leap. The parents are too demanding these days. It is as if they themselves have washed their hands off from the task of inculcating values among their kids. With the changing global scenario, there is no doubt that the onus of duty and responsibility of the teacher has shifted from that of being an instructor to being a facilitator. But at the same time a balance has to be maintained between the role played by both home and school. Teacher education should imbibe in the student-teachers skills to involve the home and family of the student in the functioning of the school in more and more possible ways. This would ensure a better overall development of the student and also reduce pressure on both home and school. The student-teacher should get the knowledge as well as skills of providing guidance to parents regarding handling problematic children. As mentioned in the position paper on Teacher education given by NCERT:

"Teacher education has to become more sensitive to the emerging demands from the school system. For this it has to prepare teachers for a dual role of

* encouraging, supportive and human efacilitator in teaching-learning situations who enables learners (students)

to discover their talents, to realise their physical and intellectual potentialities to the fullest, to develop character and desirable social and human values to unction as responsible citizens; and,

* an active member of the group of persons who make conscious effort to contribute towards the process of renewal of school curriculum to maintain its relevance to the changing societal needs and personal needs of learners; keeping in view the experience gained in the past and the concerns and imperatives that have emerged in the light of changing national development goals and educational priorities".

These expectations suggest that a teacher has to be much more alert and sensitive towards the demands from the point of view of the social context of education.

Erosion of Values:

Erosion of values is the buzzword that is doing rounds in the society at full speed. Much troubled water has passed beneath ever since we started talking about the value erosion' Very conveniently both parents as well as teachers blame it on the whole lot of negativity being served on a platter by the media. Both the groups have become casual is handling this moral responsibility. Every other day we have striking news about the student community making it to the headlines. While on the one hand we have headlines like:

"Chennai student kills teacher in classroom" (9 February, 2012; Chennai)

"Class XII students stab classmate over girl" (10 February, 2012 Faridabad, Haryana)

"Amritsar Class XII boy stabs girl student" (9August, 2011; Amritsar, Punjab)

"Spurned lover, a class XII student, repeatedly stabs girl before public in west Bengal" (27 November, 201 1 ;Kankinara, West Bengal)

on the other hand we have those of the following type:

"Bengal primary teacher rapes minors in hostel" (23 Febru ary,2012; west Bengal)

"Pune teacher rapes minor" (20 December; 2010; Pune)

"Teacher thrashes special student" (26 August; 2010; Mumbai)

"Drunken teacher thrashes student in Haryana, (1 August, 2010; Karnal, Haryana)

"Kolkata school teacher thrashes six students" (14 August, 2010; Kolkata; west Bengal)

So it is not just the egeneration X' that is to be blamed for this devastating erosion, rather parents and teachers are equal culprits. It is because of the ill-practices and tarnished moral character of teachers these days that the bond of teacher-student has suffered irreparable damage. It is not that the students do not have the respect for their teacher as they used to have in earlier times' Even the instances of crimes committed by the students don't construe that it is the student, who is wholly at fault. Teachers fail to put the psychological principles to practice while handling students. According to a recent survey, students are given electric shocks while being tied to chair, as corporal punishment. For such inhuman members of the teaching community physically punishing the child is the one and only solution to all the problems. They assume that using rod is the only means of taming the child. This damaging thinking needs to be changed and moulded psychologically as it is only the psychological treatment that will be long lasting and prove to be having a permanent way of modifying student's behaviour for the better.

Raising the Quality of Education:

we have often observed that by the time the children leave school their bubbling enthusiastic imagination and overflowing curiosity gives way to demotivation, uninspired and unimaginative thinking, dull enthusiasm and feeble capacity of taking risks. Underwood (2011) is of the view. "It is not a matter of blaming teachers. "It is a systemic problem in the nature of our education systems which try to make education o"teacher proof" and "student proof" by standardising quality control in a one size fits all approach that if we are not careful can kill passion and motivation both for students and teachers and extinguish creativity". It is the duty and also the moral responsibility of the teacher to keep the spark ignited in the child's mind be it that of a child in kindergarten or that of a high school student. And this comes within the purview of teacher education that the subject of psychology that is taught in the teacher preparation courses as compulsory subjects should be more application oriented. Student-teachers should be able to focus more on how to apply to the real student life what is being served to them by the way of this subject. As mentioned earlier also, we need to do away with the over-emphasis on the theoretical approach of the curriculum of teacher education courses' Inspite of a lot of efforts made by the governing bodies, the essence lies in the implementation that is in the hands of the institutes and not the governing bodies like the NCTE that can play a responsible supervisory role.

Conclusion

Ellyard (1998) talks in terms of "a Planetist future in which . transformed and growing individuals and communities can position themselves for success in a world of rapid change, and they can create and market the ways and ware both to create and benefit from the evelopment of a planetist future. The key to success is, therefore, learning. If our society is one which maximizes learning with every step into the future, the chance of future success will be greatly enhanced. Thus the

development of a new culture of learning is necessary for success in the twenty-first century." Let us look forward towards the new emerging horizons with hope and optimism. Let us not leave any stone unturned in making the dream of a healthy and happy 'studenthood', that is bubbling with a never-ending enthusiasm, colourful imagination and ready to take flight with their wings of fancy that are moulded by real knowledge and not just rote-learning.

References:

- Atkin, Julia(l999). Reconceptualising the curriculum for the knowledge era, seminar Series No 86, Incorporated Association of Registered Teachers of Victoria Mercer House, Jolimont
- Ellyard, Peter (1998). Ideas for the New Millennium, Melboume
- Kaur,Amritbir(2003). India'slossls Chandigarh Brain Drain : India's Loss is world's gain. The Tribune, Chandigarh
- Kothari Commission 1964-66)
- National Curriculum Framework for Teacher Education (2009), National Teacher Education, New Delhi
- Oats, William Nicole (1990). The Nurture of the Human Spirit, The Friends School, Tasmania
- Position Paper National Focus Group on Teacher Education for Curriculum Renewal (2005), NCERT, New Delhi
- Steen, Wim J. Van Der and Sloep, Peter B. (2005). Philosophy, education, and the explosion of knowtedge. http : //www. sprin gerlink. com/cont entl 167 v20 6227 7 66621.
- Underwood, Frances (2011). Opening Speech of the Rudolf Steiner Education Foundation Open Day at The Sir Raymond Ferrall Centre Launceston, February 26, 2011.

Utility of Gurukul Education System in Modern Education

—**Dr. Sadan Singh**
Associate professor, S.L.B.S.R.S.Vidyapeetha

Gurukul is a type of school in India, residential in nature, with pupils (shishya) living near the guru, often within the same house. The word gurukula is a contraction of the Sanskrit guru (teacher or master) and Kula (extended family). In a gurukula, shishya live together as equals, irrespective of their social standing, learn from the guru and help the guru in his day-to-day life, including the carrying out of mundane chores such as washing clothes, cooking, etc.

The gurukul education system has been a source of inspiration to all educational systems of the world. The ingredients, which our present system, lacks, and which were the predominant facets of our ancient system relate to admission policies (upnayan), monitorial system, low teacher pupil ratio, healthy teaching surroundings, free schooling and college education, sympathetic treatment, role of punishment in discipline, regulation governing student life.

Developing the wholesome personality: The primary aim of any system of education should be development of a whole some personality. The Brahmanic system of education stood on former grounds of lofty ideals because its primary aim was development of personality and character. Moral strength and moral excellence were developed to the fullest extent, which we lack so utterly. The moral stature of our educated people is

deplorably low. Moral values are at stake. The old values, which held society together are disappearing and as there in no effective programmed to replace them by a new sense of responsibility. Innumerable signs of social disorganization are evident everywhere and are continually on the increase. These include strikes increasing lawlessness, and a disregard for public property corruption in public life. The social moral and spiritual values which our ancient system developed in the educed have been totally lost sight of.

Making formal and Informal Educations Responsible: imparting and receiving of education was as sacred as anything can be, for example, education started and ended with certain prescribed religious rituals like upnayan and samvartan. The disciple was to devote himself whole heartedly to the cause of learning while he remained with his teacher. Not every boy was required to enter studentship it was still a custom to receive education at the hands of his father. How many of the parents look after their children now in this respect. The ancient system gave an equal important to informal education as it did to the formal one.

Starting Academic sessions solemnly: In most cases the boy went to a teacher for studentship. The maximum age of entrance into school was different for different castes. The period of schooling was long, at least 12 years for one Veda. The academic sessions started with a special ceremony — upkarman' on the Guru Purnima (Full month of Shravana) and as solemnly closed on Rohini (Full moon month of pausha) with utsarjan'. The whole session was punctuated with holidays especially on new moon full moon days of the month.

Adjusting School Hours: The school in the Ancient Education System lasted for 7 to 8 hours a day. In fair weather classes were held in the open under shady groves. In the rainy season schools ran in a set of apartment. Temple colleges of

the past had been of great renown for having spacious buildings for classroom, hostels and residential quarters for teachers. Gurukuls and Ashrams were generally situated on the river banks or on the lake. The whole atmosphere was quiet, calm and peaceful. It must be noted that schools and colleges were not kept for away from human habitation.

Close Contact: Never in the history of education you will find such a close contact between the teacher and the taught. The teacher was the spiritual father. he was is to nurse, when the pupil fell sick. he was to feed, clothe and teach his student as he fed, clothed and taught his son. The student also regarded the teachers as he regarded his parents, king & god. Both were united by communion of life. In fact they communed together.

Emphasizing Discipline: The student had to observe strict regulations. Instruction was important, but was even more significant than teaching was discipline - discipline inculcated through strict obedience to laws and regulations of student life, discipline that was rooted in morality and religion A student was required to give up lust, anger, greed, vanity, conceit and over joy. It was ordered to him not to gamble, gossip, lie, backbite, hurt feelings of others, dance, sing, look or talk or touch the other sex and kill animals. It was demanded of every student whether rich of poor that he should lead a simple life in the Gurukul or in the Ashram.

Low - Teacher pupil Ratio: In all schools and colleges the pupil - teacher ratio was too low. Individual attention was maximum. The number of students in a school was kept very small. But when, under certain conditions the enrolment increased, the teacher sought the co-operation of more advanced and senior boys who were appointed as monitors (Pittiacharya). In the absence of teacher entire work was entrusted to them.

Respecting Childs Personality: Punishment had practically no place in the school system. Pupils received very sympathetic, treatment from their teachers. Their personality was respected Teachers were required to use sweet and gentle speech in dealing with pupil.

Providing Free Education: Education was free. It was free because no student was required to pay any fees. It was free also because no outside agency could interfere in the matters of education. There was perfect autonomy. No external authority no external beneficiary, no politics was permittecl to enter the school or college system. A student had to pay nothing in return for education he received in a Gurukul or Ashram. Access to good education depended not on wealth but on talent. The student was expected, if desired but never compelled to offer a field, cow, horse or even vegetables to his teacher according to his financial position in the society. Education could not be bought one could go up the Ladder as his abilities permitted.

Infusion of Spiritual & Religious Values: The primary aim of ancient education was instilling into the minds, of pupils a spirit of being pious and religious for glory of God and good of man. The pursuit of knowledge was a pursuit of religious values. The life of the pupil was full of ritual acts. Prayers were common every pupil was required to perform religious ceremonies duly' He had to participate in all religious festivals. Education without religions instructions was not education at all. It was believed that a keener appreciation of spiritual values could be fostered only through a strict observance if religious rites.

Character Development: In no period of the History of India' was so much stress laid on character building as in the Vedic period Vyas Samhita states, —The result of education is good character and good behavior. A conquest does not make

a hero nor studies a wise - woman' He who has conquered his senses is the real hero. He who practices, virtue in really wise. Wisdom consisted in the practice of moral values. Control of senses and practice of virtues made one a man of character. Moral excellence could come only through plasticizing. Moral values' Example was better than precept. The teacher and the taught were ideals of morality' for both practiced it ail through their lives.

Development of Civic Responsibilities and Social Values: The inculcation of civic virtues and social values was an equally important objective of education in India. The Brahmachari after his education in the Gurukulas went back to the society to serve the rich and the poor, to relieve the diseased and the distressed. He was req be hospitable to the guests and charitable to the needy. After a certain period of studies he was required to become a householder and to perpetuate his race and transmit his culture to his own off springs.

Personality Development: The Guru in the ancient times realized that the development of personality is the sole aim of education. Human personality was regarded as the supreme work of God. The qualities of self-esteem, self confidence, self restraint and self respect were the personality traits that the educator tried to incubate in his pupils through example.

Preserving and Diffusing National culture: Vedic culture was kept intact and transmitted through word of mouth to succeeding generations. Every individual was required to commit to memory at least a portion of the sacred scriptures. Everyone was required to serve as a medium of transmission. The members of the priestly crass learnt the whole of Vedic Literature by heart & passed it on. The ancient Indian education system was also successful in Preferring and spreading its culture and literature even without the help of art of writing it was only because of the destruction of temples and monasteries by

invaders that literature was lost. The cultural unity that exists even today in the vast- sub continent in due to the successful preservation and spread of culture and the credit goes to Ancient Education System.

Acceptable features of Education of Vedic period for modern Education: There is a wide gap of Education between Ancient Indian Education and modern Indian Education Still there are several elements of ancient education which can find room in modern education both in theory and practice.

Idealism: we are living in modern age but we feel proud of the civilization and culture of our ancestors inherited to us. Even now we give importance to religion, god and desire less deeds. We give more preference to character, spiritualism, philosophy rather than wealth, materialism and science. The present world gives reverence to wealth, power violence and diplomacy whereas we rely in truth, non-violence and mortification. We still believe in idealism and wish to lead an ideal life.

Discipline and Teacher - Pupil Relationship: The sense of discipline and the cordial relation between teacher and pupil of Vedic age is well known to the world today we see the educational environment has become so venomous due to indiscipline that is has become an uncountable problem. The sense of discipline can be developed if teacher pupil relationship can be made to adopt the ideal relationship between teacher and pupil.

Subject of studies: The study of Sanskrit language and Sanskrit literature in neglected to a greater, extent. It is this literature which is enriched by the sense of peace, humanity, universal brotherhood which should be vital part of our curriculum.

Teaching Method: In ancient period Shravan or Listening. Manan or meditation and Nididhyaana or realization and experience, question and answers, discourse, lecture discussion and debate methods were prevalent. These methods can be still used in our classrooms faithfully.

Simple Life of Students: In Vedic age students used to lead a simple life and sober life. Nowadays the life style of our young generation has altogether changed they like to lead luxurious and majestic's life, full of fashion and show. They have given up the principle of Simple Living and High Thinking and adopted its reverse principle i.e. High Living and Simple Thinking. The whole balance of the life is disturbed. In order to make their life healthy and smooth they. Should be made to realize the importance of ancient style of life.

A11 Round Development of Child: The main aim was integral and all round development in ancient Indian. The same aim is kept in view in modern education. The ancient education never neglected physical development although the main emphasis was given the intellectual and spiritual development. For this a peaceful" calm, clean, attractive and natural environment far away from town and villages was provided to students. Although, we profess to look after physical, moral spiritual emotional and intellectual development of pupil in modern schools yet it is only bookish knowledge which gets the most of an attention. This idea of all round development of child must be adhered to practically.

Equality of Opportunity: The educator was democratic in his approach in the field of education. All students rich or poor. prince and common were treated alike. In modern Indian too, the constitution has adopted the principle of Equality in the field of education. However, in almost all public schools, and professional institutions this principle is practically ignored and neglected.

Education for Self sufficiency: The ancient schools followed the principle of education for self sufficiency. The school was small integrated community self sufficient in every way. The students used to grow their food products, tended cows, collected firewood's and erected cottages themselves under the guidance of teacher. Modern education also lays stress upon preparing students to prepare themselves for their future life. Vocational subjects have been included in the curriculum in order to vocationalize education but much is needed to the done in this direction in order to achieve the desired aim.

Free and Univeralization of education: Education was free and universal. The fee, if any, was to be paid, after attaining education from the earnings of the young man who got education, in the form of Guru Dakshina. During education the boarding and lodging was free for almost all these students. After independence our constitution framers made it clear that it is the duty of all government to provide free education to every child of 0-14 yrs age group. Many program for this cause has been adopted but still desired objective has not been achieved.

Thus we can say that the education of Vedic age has its significance in Modern age.






15-17 फरवरी
12
आधुनिकज्ञानवि
य:
(शिक्षाशास्त्र-